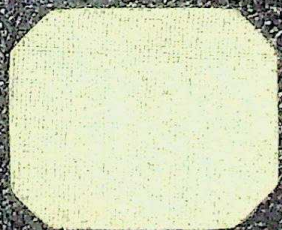


1880



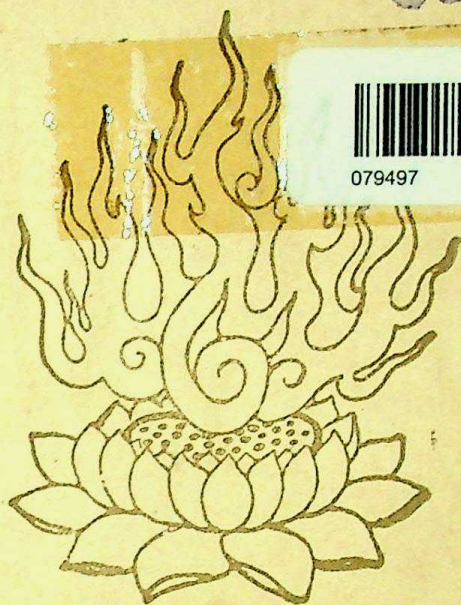
079497

COMPILED

Stock Verification-2021

Stock Verification-2021

COMPILED



079497

078492

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि
अखिल भारतीय पत्रिका

अग्निशिखा

धीमरविद सोत्तायदीकी मासिक पत्रिका

जनवरी १९८०

वर्ष १०, अंक ६, पूर्णांक ११४

विषय-सूची

योगमें कठिनाइयां	१
दैनिक जीवनमें योग	५
‘श्रीमातृवाणी’ से :	
नींद और ऊर्जा	९
सत्यका प्रकाश	१४
जीवनकी दिशा	अंबालाल पुराणी २०
तरुणोंसे	अंबालाल पुराणी २१
दुःस्वप्न पीछे रह जायेंगे	२७
सोसायटी समाचार	आ० ३

कागज और छपाईका खर्च बेतहाशा बढ़ गया है। हम अक्टूबर-से चंदा बढ़ानेके लिये बाधित हो रहे हैं। अक्टूबरसे ‘पुरोधा’का वार्षिक चंदा १०.०० और ‘अग्निशिखा’का ८.०० हो गया है। आजीवन सदस्यताके लिये ‘पुरोधा’के १७५.०० और ‘अग्निशिखा’के १२५.०० ही रहेंगे। जो अधिक देकर पत्रिकाओंकी सहायता कर सकते हों अवश्य करें।

पत्र, चेक, ड्राफ्ट, आदि, भेजनेका पता :

संपादक अग्निशिखा, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

संपादक : रवींद्र

प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-६०५००२

योगमें कठिनाइयां



इस योगके अंदर केवल भगवान्‌का साक्षात्कार ही नहीं बल्कि आंतर और बाह्य जीवनकी समग्र आत्मदान और परिवर्तन भी समाविष्ट है जो तबतक करते जाना होता है जबतक कि यह जीवन भागवत चेतनाको अभिव्यक्त करनेके सर्वथा योग्य न हो जाय और भागवत कर्मका एक अंग न बन जाय। इसका अर्थ है एक ऐसा आंतरिक अनुशासन जो केवल नैतिक और शारीरिक कठोर तपस्याओंसे कहीं अधिक दुष्कर और दुःसाध्य है। किसी व्यक्तिको इस पथपर — जो योगके अधिकतर मार्गोंसे कहीं अधिक विशाल और श्रमसाध्य है — तबतक पैर नहीं रखना चाहिये जबतक उसे यह निश्चय न हो जाय कि उसमें पुकार है और इसका अंततक अनुसरण करनेके लिये उसमें तैयारी है।

*



तैयारीसे मेरा मतलब क्षमतासे नहीं है बल्कि सहर्ष तत्परतासे है। यदि अपने अंदर सब कठिनाइयोंका मुकाबला करने और उनके पार जानेका संकल्प है, चाहे उसमें कितना ही समय क्यों न लगे, तो यह पथ अपनाया जा सकता है।

*



सामान्य जीवनसे केवल बेचैनी-भरा असंतोष इस योगके लिये पर्याप्त तैयारी नहीं है। एक सुनिश्चित आंतरिक पुकार, सुदृढ़ संकल्प और महान् स्थिरता आध्यात्मिक जीवनमें सफल होनेके लिये जरूरी हैं।

*



कोई भी साधनाके लिये पूरी तरह योग्य नहीं होता, अर्थात्, कोई भी इसे केवल अपनी योग्यताके बलबूतेपर नहीं कर सकता। यह तो केवल अपने-आपको तैयार करनेका प्रश्न है जिससे व्यक्ति उस शक्तिको जो — उसकी अपनी नहीं है — पूरी तरह अपनेमें ला सके और वह शक्ति ही व्यक्तिकी सहमति और अभीप्साकी सहायतासे साधनाको संपन्न कर सकती है।

*



योग पाश्चात्य देशवासियोंके लिये, पूर्वके देशवासियोंकी अपेक्षा कोई अधिक खतरनाक नहीं है। सब कुछ इस बातपर निर्भर है कि तुम किस भावसे इसमें प्रवृत्त होते हो। यदि तुम योग अपने ही लिये, किसी व्यक्तिगत स्वार्थके लिये करना चाहते हो, तो अवश्य ही यह खतरनाक हो जाता है। परंतु यदि तुम इसकी पवित्रताकी भावनाको रखते हुए योगमें प्रवृत्त होते हो और सदा यह स्मरण रखते हो कि तुम्हारा लक्ष्य भगवान्को पाना है, तो फिर योगसे किसी बातका खतरा नहीं, बल्कि तब तो यह उल्टे तुम्हें निरापद रखता है और तुम्हारे लिये संरक्षण-रूप हो जाता है।

खतरे और कठिनाइयां तो तब उपस्थित होती हैं जब कोई भगवान्के लिये योगसाधना नहीं करता, बल्कि इसको किसी शक्तिकी प्राप्तिके लिये करता है और योगकी आड़में किसी महत्वाकांक्षाकी पूर्ति करना चाहता है। यदि तुम महत्वाकांक्षाओंसे छुटकारा नहीं पा सकते तो इसका स्पर्श मत करो। यह आग है जो जला देती है।...

प्रश्न केवल तुम्हारे सच्चे होनेका है। यदि तुम सच्चे नहीं हो तो योगसाधनाका आरंभ मत करो।

मानव व्यवहारमें तो धोखाधड़ी चल सकती थी, किंतु भगवान्के

जनवरी १९८०

साथ व्यवहार करनेमें धोखेके लिये कहीं कोई स्थान नहीं है। इस मार्गमें तुम तभी निरापद होकर यात्रा कर सकते हो जब तुम पूरी तरह निष्कपट और अपनी गहराइयोंतकमें उद्घाटित होओ और जब तुम्हारा एकमात्र ध्येय भगवान्का साक्षात्कार करना, उन्हें पाना और उनके द्वारा परिचालित होना हो।

*



अध्यात्म-पथमें प्रवेश करनेवाले सभी व्यक्तियोंको पथकी उन कठिनाइयों और अग्निपरीक्षाओंका सामना करना होता है जो उनकी अपनी प्रकृतिमें से उठती हैं और जो बाहरसे आती हैं। प्रकृतिकी कठिनाइयां सदा ही तबतक बार-बार उठती रहती हैं जबतक तुम उन्हें जीत नहीं लेते। उनका सामना दृढ़ता और धैर्यके साथ करना चाहिये। जब कठिनाइयां और अग्निपरीक्षाएं आती हैं तब हमारा प्राणिक भाग स्वभावतः ही उदास हो जाया करता है। यह कठिनाई विशेष रूपसे तुम्हारी ही नहीं है बल्कि यह सब साधकोंपर आती है — इसका अर्थ यह नहीं कि तुम साधनाके सर्वथा अयोग्य हो या तुम्हारी असमर्थताकी भावना ठीक है। परंतु उदासीकी इस प्रतिक्रियापर विजय पानेका तुम्हें अभ्यास करना चाहिये और इसके लिये तुम्हें अपनी सहाय-तार्थ श्रीमांकी शक्तिको पुकारना चाहिये।

इस पथको जो भी दृढ़तासे पकड़े रहेंगे वे अपनी आध्यात्मिक भवितव्यताके वारेमें निश्चित रूपसे आश्वस्त हो सकते हैं। यदि कोई इसतक पहुंचनेमें असफल रहता है तो उसका इन दोमेंसे कोई एक कारण हो सकता है : या तो वे पथको छोड़ देते हैं या फिर सत्यहृदयतासे भगवान्पर निर्भर रहनेके स्थानपर महत्त्वाकांक्षा, दर्प, कामना आदिके प्रलोभनके कारण भटक जाते हैं।

*



फिर भी, यदि आत्माकी पुकार वहां हो, भले ही वह अभी पूरी मात्रामें न भी हो, तो कठिनाइयां चाहे कितनी भी जबरदस्त और हठीली क्यों न हों, ऐसी कोई असफलता नहीं हो सकती जो अंतिम हो तथा जिसका प्रतिकार न हो सके। यहांतक कि जब सूत्र टूट जाता है तब भी उसे फिरसे हाथमें ले लिया जा सकता है, पुनः जोड़ दिया जा सकता है और उसे पूरे अंततक पहुंचाया जा सकता है। उधर स्वयं प्रकृतिमें भी हमारी आंतरिक आवश्यकताके अनुरूप क्रिया चलती रहती है, वह चाहे कितनी भी धीमी क्यों न हो, अपना परिणाम लाती है।

*



तुम्हारी प्रकृतिमें कोई भी दोष क्यों न हो उसका कुछ महत्त्व नहीं, महत्त्व है केवल शक्तिके प्रति अपने-आपको खुले रखनेका। कोई भी व्यक्ति बिना किसी सहायताके, निरे अपने प्रयत्नोंसे अपने-आपको रूपांतरित नहीं कर सकता, उसे रूपांतरित तो केवल भागवत शक्ति ही कर सकती है। यदि तुम अपने-आपको खोले रखो तो शेष सब तुम्हारे लिये कर दिया जायगा।

*



और न ही हमारा उद्देश्य किसी धर्ममतकी, दर्शन या योग-के किसी संप्रदायकी स्थापना करना है, बल्कि हमारा उद्देश्य है आध्यात्मिक विकास और अनुभवके लिये एक आधारका और ऐसे पथका निर्माण करना जो उस महत्तर सत्यको उतार लाये जो मनसे परे होता हुआ भी मानव आत्मा और मानव चेतनाके लिये अगम्य नहीं है। वे सभी जो उस सत्यकी ओर आकृष्ट हुए हैं, इस पथपर चलनेके योग्य सिद्ध हो सकते हैं, चाहे

जनवरी १९८०

५

वे भारतके हों या और कहींके, पूर्वके हों या पश्चिमके। सभी को ऐसा अनुभव हो सकता है कि उनकी व्यक्तिगत या सर्वसामान्य मानव प्रकृतिमें बड़ी-बड़ी कठिनाइयां हैं, पर उनका भौतिक उत्पत्तिस्थान या जातीय स्वभाव उनकी मुक्तिमें अलंघ्य रूपसे बाधक कभी नहीं हो सकता।

दैनिक जीवनमें योग



प्रकाशकी खोज या योगके अभ्यासके लिये साधारण जीवनको छोड़ना एकदम नितान्त आवश्यक हो ऐसी बात नहीं है। ऐसा साधारणतया वे ही करते हैं जो मार्गको निष्कण्टक बनाना चाहते हैं, जो विशुद्ध रूपसे धार्मिक या अनन्य भावसे आंतरिक और आध्यात्मिक जीवन बिताना, संसारको पूरी तरह छोड़ देना और मानव जन्मका अंत कर तथा किसी उच्चतर भूमिकामें या परात्पर सत्तामें पहुंचकर इस जागतिक जीवनसे ही प्रस्थान कर जाना चाहते हैं। अन्यथा तो यह केवल तभी जरूरी होता है जब आंतरिक प्रेरणाका दबाव इतना अधिक बढ़ जाय कि साधारण जीवनका अनुसरण मुख्य आध्यात्मिक उद्देश्यके अनुसरणके साथ मेल न खा सके। तबतक अपेक्षित है आंतरिक एकांतका अभ्यास करनेकी सामर्थ्य और किसी भी समय अंतर्मुख होने तथा अपने आवश्यक आध्यात्मिक उद्देश्यपर एकाग्र हो सकनेकी सामर्थ्य। साथ ही एक ऐसी क्षमताका होना भी जरूरी है जिससे कि मनुष्य नयी आंतरिक वृत्तिके द्वारा साधारण बाह्य जीवनके साथ निपट सके, और तब वह बाह्य जीवनकी घटनाओंको प्रकृति-के आंतरिक परिवर्तनका एवं आध्यात्मिक अनुभूतिके विकासका एक साधन बना सकता है।

*



लीलामें सभी चीजें ऐसी खिड़कियोंका काम दे सकती हैं जो गुप्त सत्ताकी ओर खुलती हैं। फिर भी जबतक व्यक्ति खिड़कियोंसे ही देखनेमें संतुष्ट रहता है, उसकी प्राप्ति केवल प्रारंभिक ही होती है। पर एक दिन आता है जब उसे यात्रीका दण्ड हाथमें लेकर उस यात्राके लिये निकल पड़ना होता है जहां सत्य सदा अभिव्यक्त रूपसे विद्यमान है। धुंधले प्रतिबिंबोंके घेरेमें आवद्ध रहना तो आध्यात्मिक दृष्टिसे और भी कम संतोषप्रद हो सकता है, हम बलात् उस प्रकाशकी खोजके लिये प्रेरित होते हैं जिसे ये प्रतिबिंब रूप देनेकी चेष्टा करते हैं। और चूंकि यह सत्ता और यह प्रकाश हममें भी उसी तरह विद्यमान है जिस तरह मर्त्य-भूमिकासे ऊपर किसी उच्च प्रदेशमें, इसलिये गुप्त सत्ताकी अपनी खोजमें हम जीवनके बहुत-से रूपों और क्रियाओंका उपयोग कर सकते हैं। जैसे व्यक्ति कोई फूल, प्रार्थना या कर्म भगवान्को अर्पित करता है वैसे ही वह अपनी कोई सुन्दर कला-कृति, गान, कविता, कल्पना या संगीतकी कोई लय भी अर्पित कर सकता है और उसके द्वारा वह किसी पुकारका संपर्क, प्रत्युत्तर या अनुभूति भी प्राप्त कर सकता है। और जब दिव्य चेतना हमारे भीतर प्रवेश कर जाती है या हमारे अंदर विकसित होने लगती है तो भी इन चीजोंके द्वारा जीवनमें उसकी अभिव्यक्ति करना योगसे बाहरकी वस्तु नहीं है। इन रचनात्मक कर्म-प्रवृत्तियोंका स्थान फिर भी बना रह सकता है, यद्यपि यह तत्त्वतः उन दूसरी चीजोंसे बड़ा नहीं होता जो भगवान्के उपयोग और सेवामें अर्पित की जाती हैं। कला, कविता, संगीत, जैसे कि वे अभीतक अपने सामान्य रूपोंमें हैं, मानसिक और प्राणिक मूल्योंका निर्माण करते हैं, न कि आध्यात्मिक मूल्योंका; पर उन्हें उच्चतर उद्देश्योंकी ओर मोड़ा जा सकता है। और तब, उन सब चीजोंके समान, जो हमारी चेतनाको भगवान्के साथ जोड़नेमें समर्थ हैं, ये चीजें भी रूपांतरित होकर आध्यात्मिक बन जाती हैं और यौगिक जीवनके एक अंगके रूपमें

सकती
तबतक
उसकी
जब
पड़ना
धुंधले
भी
लिये
और
न है
गुप्त
ओका
कर्म
कला-
कर
र या
हमारे
लगती
करना
पयोंका
दूसरी
अर्पित
अपने
ते हैं,
मोड़ा
ननाको
होकर
रूपमें

स्वीकार की जा सकती है। सब चीजोंको तब नये मूल्य प्राप्त हो जाते हैं पर अपने-आपसे नहीं, बल्कि उस चेतनासे जो उन्हें उपयोगमें लाती है। कारण, केवल एक ही चीज है जो मुख्य, आवश्यक और अनिवार्य है और वह है भागवत सत्ताके प्रति सचेतन होना, उसीमें निवास करना और उसे जीवनमें चरितार्थ करना।

*



पूर्णयोगकी साधनामें संपूर्ण जीवनका, यहांतक कि छोटी-से-छोटी चीजका भी रूपांतर करना होगा, उसको दिव्य बनाना होगा। इस साधनामें ऐसी कोई चीज नहीं है जो तुच्छ या उपेक्षणीय समझी जाय। तुम यह नहीं कह सकते कि “जब मैं ध्यान करता हूं, दर्शनशास्त्रसंबन्धी पुस्तकें पढ़ता हूं या इन वार्त्तालापोंको सुनता हूं तब तो मैं भागवत ज्योति-की ओर अपने-आपको खोल कर रखूंगा और उसका आवाहन करूंगा, किंतु जब मैं टहलने जाता हूं या किसी मित्रसे मिलता हूं तब यदि उसको बिल्कुल भूल भी जाऊं तो चल सकता हूँ।” इस भावको बनाये रखनेका तो यह अर्थ होगा कि तुम्हारा कभी रूपांतर न हो सकेगा और कभी तुम्हें भगवान्के साथ सच्ची एकता प्राप्त न होगी। सदा तुम्हारे दो भाग बने रहेंगे, अधिक-से-अधिक जो तुम्हें मिल सकेगा वह इस महत्तर जीवनकी कुछ झांकी मात्र होगी। इसका कारण यह है कि इस अवस्थामें, यद्यपि ध्यान-के समय तुम्हारी आंतर चेतनामें कतिपय अनुभूतियां और साक्षात्-कार तुम्हें भले ही हों, पर तुम्हारा स्थूल शरीर और तुम्हारा बाह्य जीवन तो रूपांतरित हुए बिना यों ही पड़ा रह जायगा। जिस आंतर प्रकाशका शरीर और बाह्य जीवनपर कोई असर नहीं होता वह किसी विशेष उपयोगमें नहीं आता। कारण, इससे यह जगत् तो जैसा-का-तैसा ही रह जाता है। और यही है जो अभी तक

लगातार होता आ रहा है। वे लोग भी, जिन्हें अति महान् और शक्तिशाली उपलब्धि हुई थी, जगत्से अलग हट गये, ताकि वे अपनी आंतरिक स्थिरता और शांतिमें अक्षुब्ध रूपसे निवास कर सकें। इन लोगोंने जगत्को अपने ही मार्गपर चलते रहनेके लिये छोड़ दिया; परिणाम यह हुआ कि इस विश्व-सत्ताकी इस भौतिक भूमिकापर दुःख और जड़ता, मृत्यु और अज्ञानका राज्य पूर्ववत् अबाध गतिसे जारी रहा। जो लोग इस प्रकार किनारा खींच लेते हैं उनके लिये इस उपद्रवसे त्राण पाना, इन कठिनाइयोंसे दूर भागना और दूसरे लोकमें अपने लिये एक सुखी अवस्थाका पा लेना भले ही सुखकर हो, किंतु इसमें सन्देह नहीं कि वे इस जगत् और जीवन-को अमार्जित अरूपांतरित अवस्थामें ही छोड़ जाते हैं; यही नहीं, वे अपनी निजी बाह्य चेतनाको भी अपरिवर्तित अवस्थामें और अपने शरीरको सदाकी नाई असंस्कृत अवस्थामें ही छोड़ देते हैं। ये लोग जब भौतिक जगत्में वापस लौटते हैं तब यह संभव है कि इनकी दशा साधारण लोगोंकी अपेक्षा भी बुरी हो, कारण इन लोगोंने स्थूल वस्तुओंपर प्रभुत्व प्राप्त करनेकी शक्तिको गंवा दिया है, और एव यह संभव है कि भौतिक जीवनमें इनका व्यवहार विल्कुल बेढंगा हो और इस जीवनकी धारामें वे अपनेको असहाय अनुभव करें तथा उनका जीवन प्रत्येक गुजरती हुई शक्ति की दयापर निर्भर हो।

इस प्रकारका आदर्श उनके लिये भले ही ठीक हो जो इसे चाहते हैं, किंतु हम लोगोंका योग यह नहीं है। कारण, हम चाहते हैं इस जगत्पर तथा इसकी समस्त गतियोंपर भगवान्की विजय और यहां, इस पार्थिव जगत्में ही भगवान् की उपलब्धि। परंतु यदि हम चाहते हैं कि यहां भगवान्का राज्य हो तो जो कुछ भी हम हैं, जो कुछ भी हमारे पास है, और जो कुछ भी हम यहां करते हैं, उस सबको हमें भगवान्को दे देना चाहिये। इस प्रकार सोचनेसे काम नहीं चलेगा कि अमुक बात गौण है अथवा बाह्य

जन
जीव
नही
सद
इस
ही

‘श्री

सक
एक
रिक्
और
ऐसे
अर्थ
स्वत

एक
जीते
प्रश्न
लोग
चले

जनवरी १९८०

१

जीवन और उसकी आवश्यकताओंसे दिव्य जीवनका कोई संबंध नहीं है। यदि हम ऐसा करेंगे तो वहां ही पड़े रहेंगे जहां हम सदा रहे हैं और इस बाह्य जगत्पर विजय कमी होगी ही नहीं, इस पार्थिव भूमिकापर किसी चिरस्थायी परिणामकी प्राप्ति होगी ही नहीं।

‘श्रीमातृवाणी’ से :

नींद और ऊर्जा

नींद क्या है ?

नींद एकाग्रता और आंतरिक ज्ञानका बहुत सक्रिय साधन हो सकती है। अगर तुम वहां अपना पाठ सीखना जानो, तो नींद एक ऐसा स्कूल है जिसमेंसे तुम्हें गुजरना ही पड़ता है, ताकि आंतरिक सत्ता भौतिक आकारसे स्वतंत्र होकर स्वयंमें सचेतन हो जाये और अपने जीवनपर प्रभुत्व पा ले। सत्ताके कई पूरे-पूरे भाग ऐसे हैं जिन्हें इस निश्चलता और बाहरी सत्ता, अर्थात्, शरीरकी अर्ध-चेतन अवस्थाकी आवश्यकता होती है ताकि वह अपना जीवन स्वतंत्र रूपसे जी सके।

केवल लोग जानते नहीं, वे सोते हैं, क्योंकि वे सोते हैं, जैसे एक तरहकी सहज-वृत्ति, एक अर्ध-चेतन आवेशके द्वारा खाते और जीते हैं। वे अपने-आपसे यह प्रश्न तक नहीं पूछते। तुम अब प्रश्न कर रहे हो : लोग क्यों सोते हैं ? लेकिन हजारों, हजारों लोग स्वयंसे कभी यह पूछे बिना कि वे क्यों सोते हैं, यूं ही सोते चले आये हैं। वे इसलिये सोते हैं, क्योंकि उन्हें नींद आती है,

वे इसलिये खाते हैं, क्योंकि उन्हें भूख लगती है, और बिना सोचे-समझे, बिना तर्क-वितर्क किये मूर्खताएं करते हैं, क्योंकि उनकी सहज-वृत्तियां उन्हें धकेलती हैं; लेकिन जाननेवालोंके लिये नींद एक विद्यालय है, एक उत्तम विद्यालय है, जहां वे जाग्रत अवस्था-के विद्यालयसे भिन्न कुछ और ही सीखते हैं।

यह एक और ही उद्देश्यके लिये, एक और ही विद्यालय है, पर है विद्यालय ही। अगर तुम यथासंभव अधिक-से-अधिक प्रगति करना चाहते हो तो तुम्हें अपनी रातोंका उपयोग करना उसी तरह जानना चाहिये जैसे तुम दिनोंका उपयोग करते हो, वस, सामान्यतः, लोग यह जानते ही नहीं कि कैसे करना चाहिये, वे जागते रहने-की कोशिश करते हैं, और वे वस, प्राण और शरीरका असंतुलन ही पैदा कर पाते हैं, और कभी-कभी, परिणामस्वरूप, मानसिक असंतुलन भी।

भौतिक और अन्नमय भौतिक भागोंको पूरी तरह विश्राममें रहना चाहिये, लेकिन ऐसे विश्राममें जो निश्चेतनामें गिर जाना नहीं है — यह भी एक शर्त है। और प्राणको नीरव विश्राममें होना चाहिये। तो, अगर यह तीनों चीजें विश्राम कर रही हों: आंतरिक सत्ता, जिसका बाह्य जीवनके साथ कभी-कदास ही कोई संबन्ध होता है — क्योंकि उसको अपने-आपको अभिव्यक्त करनेके लिये बाह्य जीवन बहुत अधिक शोरगुलसे भरा, बहुत अधिक निश्चेतन मालूम होता है — तब वह आंतरिक सत्ता अपने-आपसे अवगत हो सकती है और जाग सकती है, सक्रिय हो सकती है और निचले भागोंपर क्रिया कर सकती है, एक सक्रिय संपर्क स्थापित कर सकती है। जीवनकी वर्तमान स्थितिमें सक्रियता और विश्राम, विश्राम और सक्रियताको एकके बाद एक आना चाहिये। इस आवश्यकता-के सिवा यह सचेतन संपर्क ही नींदका वास्तविक कारण है।

शरीरको विश्रामकी आवश्यकता होती है, लेकिन जैसा कि मैंने कहा, बहुत कम लोग ही सोना जानते हैं। वे इस तरह सोते हैं

जनवरी १९८०

११

कि वे ताजादम होकर नहीं उठते, उन्हें मुश्किलसे ही आराम मिल पाता है। यह सीखने लायक एक पूरा विज्ञान है।

माताजी, हमारा भौतिक संचय किसपर निर्भर होता है ?

भौतिक संचय ? तुम्हारा मतलब है ऊर्जाका संचय ?

जी हां।

यह वैश्व प्राणिक शक्तियोंके ग्रहण करनेकी क्षमतापर निर्भर है; क्योंकि वस्तुतः, भोजनके द्वारा भी तुम इन्हीं प्राणिक शक्तियोंको पाते हो, लेकिन पाते हो नीचेसे। लेकिन संचय कर सकनेके लिये तुम्हें सदा वैश्व प्राणिक शक्तियोंका लगातार ग्रहण करते रहना और अपनी सत्तामें एक संतुलन-सा रखना सीखना चाहिये, जो तुम्हें, जितना तुम्हारे पास है उससे ज्यादा खर्च करनेसे रोकता है।

ग्रहण करने और व्यय करनेमें एक अनुपात रखना होता है। सत्तामें एक प्रकारका सामंजस्य है जिसे अपने-आपको स्थापित करना होता है। कुछ लोगोंमें प्राणिक शक्तियोंको अपनी ओर आकर्षित करनेकी या उन्हें आत्मसात् करनेकी लगभग सहज क्षमता होती है—मेरा मतलब वैश्व प्राणिक शक्तियोंसे है—, तो वे जैसे खर्च करते चलते हैं वैसे ही उसकी क्षति-पूर्ति भी करते जाते हैं। यह लोग दूसरोंकी अपेक्षा बहुत ज्यादा प्रस्तुत कर सकते हैं। उनमेंसे कुछ लोग अमुक अवस्थाओंमें, जैसे नींद, एक तरहके विश्राम या शिथिलता में, शक्तियां जुटा सकते हैं, और बादमें उन्हें अपने क्रिया-कलापमें खतम कर डालते हैं, उन्हें फिरसे अपनी बैटरी चार्ज करनी पड़ती है — यह एक बहुत कम अनुकूल अवस्था है।

कुछ लोग शक्तियोंको ग्रहण करना जानते ही नहीं। ये शरीर-में संचित ऊर्जाओंपर ही जीते हैं — क्योंकि शरीरके सभी कोषाणुओं-

में कुछ संचित ऊर्जा रहती है। ये उसीपर जीते हैं, लेकिन कुछ समय बाद, अगर वे फिरसे बल-प्राप्ति करना न जानते हों, तो पूरी तरहसे निचुड़ जाते हैं; जब वे अपने अंदर इकट्ठी की हुई सारी ऊर्जाओंको खतम कर लेते हैं, तो या तो बीमार पड़ जाते हैं या, वे फिरसे स्वास्थ्य-लाभ कभी नहीं कर पाते। लेकिन यह बहुत समयतक नहीं चल सकता; यह सामान्य मनुष्यकी औसत आयुतक चलता है, परंतु फिर, कुछ वर्षोंके बाद वे वैसा ही प्रयास नहीं कर पाते, या फिर, उतनी ऊर्जा उत्पन्न नहीं कर पाते, और इससे भी बढ़कर, किसी भी तरहकी प्रगति नहीं कर पाते।

लेकिन जो वैश्व प्राण-शक्तियोंको सहज रूपसे ग्रहण करना और संचित करना जानते हैं या जिन्होंने यह सीख लिया है उनका संचय लगभग अनंत कालतक चलता है। उनमें घिसाई या टूट-फूट बहुत कम होती है, अगर उन्हें उसका प्रयोग करना आता हो, और अगर वे उसे ज्ञान और विधिपूर्वक करें, तो यह उन्हें पूर्णताकी एक हदतक ले जा सकता है।

जब तुम्हें यह करना आ जाय, तो कभी-कभी कई दिनोंकी खर्च की हुई शक्तियोंको प्राप्त करनेके लिये दो या तीन मिनट ही पर्याप्त होते हैं। केवल इसे करना आना चाहिये।

लेकिन जो लोग अपने अंदर चले जाते हैं, जो अपने-आपमें सिमट जाते हैं, वे इसे नहीं कर सकते। सारे समय तुम्हें एक बहुत विशाल और बहुत विस्तृत चेतनामें रहना चाहिये। (मुझे मालूम नहीं कि तुम इस शब्द — विस्तृत चेतना — को समझ रहे हो या नहीं, इसका अर्थ है कोई ऐसी चीज जो बिलकुल समान रूपसे, बहुत शांतिसे फैल जाती हो, जैसे ज्वारका पानी शिखरपर उठकर जिस शांत भावसे यूं चारों तरफ फैल जाता है, तो यह ऐसा ही भाव है।) प्राणको ऐसा ही होना चाहिये — तब, व्यक्ति वैश्व शक्तियोंके प्रति खुला रहता है। लेकिन, उदाहरणके लिये, अगर व्यक्तिको अपने साथी मनुष्योंके साथ प्राणशक्तियोंके आदान-प्रदानकी बहुत बुरी आदत

जनवरी १९८०

१३

हो, तो वह उस ग्रहणशीलताको पूरी तरह खो बैठता है। तो जबतक वह किसीके संपर्कमें न हो तबतक वह एकदम कुछ नहीं पाता, क्योंकि स्वभावतः, अगर वह दूसरोंके द्वारा शक्ति प्राप्त करे, तो साथ-सी-साथ उस व्यक्तिकी सारी कठिनाइयां भी पाता है, कमी-कमी शायद उसके गुण भी, लेकिन ये कम संक्रामक होते हैं। यह सचमुच एक ऐसी चीज है जो व्यक्तिको सबसे अधिक रुद्ध कर देती है।

कई ऐसे लोग भी होते हैं जो दूसरोंके साथ कम या अधिक सामाजिक संबंध, मैत्रीका संबंध, वातचीत... और फिर, यह और भी आगे बढ़ता है... बनाये बिना शक्तियां प्राप्त नहीं कर सकते, वे शक्तियां इसी तरह प्राप्त करते हैं। लेकिन इससे एक खिचड़ी बन जाती है। व्यक्ति जिन शक्तियोंको प्राप्त करता है वे पहले ही से आधी पची होती हैं, बहरहाल, उनमें उनकी आदिम शुद्धता नहीं रहती, और यह चीज व्यक्तिकी अपनी ग्रहणशीलता बदल देती है।

लेकिन जब तुम्हारी चेतनामें यह ग्रहणशीलता हो : उदाहरणके लिये, तुम कहीं घूमने निकलो और कहीं ऐसे स्थानपर जा पहुंचो जो कुछ-कुछ समुद्र-तटकी तरह विशाल हो, या किसी विस्तृत समतल भूमिकी तरह हो, या किसी पर्वत-शिखरकी भांति हो — ऐसा स्थान जहां क्षितिज काफी विस्तृत हो —, उस समय अगर तुम्हारे अंदर उस तरहकी भौतिक सहज-वृत्ति हो जो तुम्हें हठात् क्षितिजकी तरह विस्तृत बना दे, तो तुम्हारे अंदर अनंतता, विशालताका भाव जागेगा; और जितने अधिक विशाल तुम होगे उतने ही अधिक निश्चल और शांत भी बनोगे...

प्रकृतिके साथ इस तरहका एक संपर्क तुम्हारे लिये काफी है। बहुत-से और भी तरीके हैं, लेकिन यह बहुत सहज है। इसके अलावा... अगर तुम कोई बहुत सुन्दर वस्तु देखो, तो तुम्हारे अंदर वही चीज आ सकती है : एक तरहका आंतरिक आनंद और शक्तियों-

के प्रति खुलाव, और यह तुम्हें विस्तृत कर देता है और साथ-ही-साथ तुम्हें भर देता है। तरीके बहुत-से हैं, लेकिन साधारणतः, हम उनका उपयोग नहीं करते। स्वभावतः, अगर तुम ध्यानमें चले जाओ और उच्च जीवनकी अभीप्सा करो, ऊपरकी शक्तियोंको बुलाओ, तो इससे तुम और किसी भी चीजकी अपेक्षा अधिक शक्ति प्राप्त कर लेते हो। इसे प्राप्त करनेके अनेक तरीके हैं।

बस, इतना काफी है? तो, ठीक है।

अच्छा, वच्चो, फिर मिलेंगे। शुभ रात्रि।

(‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ६, प्रश्न और उत्तर १९५५)

सत्यका प्रकाश

माताजी, यहां कहा गया है कि सत्यका प्रकाश हमेशा हमारे अधिकारमें नहीं होता ...

वह हमेशा रहता है; लेकिन तुम हमेशा उसका उपयोग नहीं कर सकते।

लेकिन अगर

वह हमेशा रहता है; वह सब जगह है; लेकिन वह तुम्हारे अधिकारमें नहीं है, इस अर्थमें कि तुम उसका उपयोग करना नहीं जानते।

लेकिन अगर कोई आपसे पूछे कि यह कैसे किया जाय ?

आहा ! लेकिन यहां व्यक्तिगत प्रश्न न पूछने चाहिये। निश्चय ही, अगर तुम मुझसे पूछो : “मैं क्या करूं” ? — तुममेंसे कोई भी—

जनवरी १९८०

१५

तो मैं तुमसे कहूंगी : “वत्स, यह बहुत आसान है, तुम्हें सिर्फ मुझे बुलाना होगा और जब तुम्हें लगे कि संपर्क हो गया है तो उसे उस भागपर रखो, जबतक कि वह भाग समझ न जाय।”

लेकिन तुम्हें जानना चाहिये कि इसमें भी जरा कष्ट होता है, मैं तुम्हें चेतावनी दे रही हूँ, चूँकि वह चीज कहींपर चिपकी रहती है, इसलिये उसे खींच निकालनेके लिये साहसकी जरूरत होती है : और जब तुम उसपर सत्यका प्रकाश डालते हो, तो वहाँ जलन होती है, कभी-कभी वह टीस मारता है। तुम्हें उसे सहना आना चाहिये। सच्चाई इतनी पर्याप्त होनी चाहिए कि... “उफ, दुखता है,” कहकर अपने-आपको वन्द कर लेनेकी जगह तुम्हें बहुत अधिक खुल जाना चाहिये और उसे पूरी तरह ग्रहण करना चाहिये।

कुछ लोगोंके सिरमें नाना प्रकारकी ऐसी छोटी-छोटी चीजें होती हैं, काली, छोटी-छोटी चीजें। कुछ लोगोंके यहाँ होती हैं (माता-जी हृदयकी ओर इशारा करती हैं), कइयोंमें यह और भी नीचे होती है, हर एकके लिये यह निर्भर है, लेकिन हर एकके लिये चीज एक ही है, यह हमेशा... मैं यह इसलिये कह रही हूँ क्योंकि यह बहुत खास बात है कि अगर कोई काम करे—वह चाहे कोई क्यों न हो—, परिणाम हमेशा एक ही होता है, वह चाहे जहाँ हो, वह सिरमें हो, हृदयमें हो या चेतनाके अन्य केंद्रोंमें हो, अगर तुम अपने अन्वेषणको काफी आगेतक बढ़ाओ, बिना थके एक-एक पग, एक-एक पग बढ़ाओ, तो तुम हमेशा ऐसी चीजतक जा पहुँचोगे जो दूरसे छोटे-से मटर-सी लगती है... छोटे-छोटे मटरों जैसी... एक छोटे-से काले मटर-सी; लेकिन अगर तुम काफी नजदीकसे देखो (यह तुम्हारी एकाग्रतापर निर्भर है), तो तुम देखोगे कि यह छोटे-से... साँप जैसी है, एक छोटे-से कीटाणुके आकारका साँप जो कुंडली मारे बैठा होता है, अपने ही ऊपर, घुं लिपटा होता है। तुम उसे पूँछसे पकड़कर बाहर खींचकर निकालते हो।

मधुर मां, क्या जितनी बुरी क्रियाएं होती हैं उतने ही सांप भी होते हैं ?

हां, ठीक है ! (हंसी) और ये बहुत होते हैं, पूरी एक सेना। जब यह सिरमें होते हैं तो और भी ज्यादा कष्टदायक होते हैं, क्योंकि तब उन्हें खोज पाना और भी कठिन होता है, और आदमी गलत विचारोंसे इतना भरा होता है कि वहां पर उनमें कोई व्यवस्था लाना बहुत कठिन होता है। यही जगह है जहां सबसे आसानीसे उसकी खोज और उसका उपचार किया जा सकता है (माताजी मध्यवक्षकी ओर इशारा करती हैं), लेकिन सबसे ज्यादा दर्द यहां होता है, लेकिन यही जगह है जहां तुम उसे सबसे ज्यादा आसानीके साथ पा सकते हो और उसका आमूल उपचार कर सकते हो। इसके नीचे, प्राणमें, यह ज्यादा अंधकारपूर्ण और उलझा हुआ होता है — वह बहुत घालमेलमें होता है। यह सब कुछ खिचड़ी होता है, और ऐसी बहुत-सी चीजें होती हैं — यह चीजें जब होती हैं तो बहुत-सी होती हैं। उन्हें खोजनेसे पहले तुम्हें वहां कुछ व्यवस्था लानी पड़ती है। उनमेंसे कुछ इस तरह उलझी रहती हैं। उदाहरणके लिये, बहुत-से लोगोंकी यह प्रकृति होती है कि उन्हें बड़े ताव आते हैं—अचानक क्रोध उनपर कब्जा कर लेता है, फट ! और वे भयंकर रूपसे क्रुद्ध हो जाते हैं—, यहां तुम्हें कारण ढूंढना चाहिये; और यहां सब कुछ यूँ उलझा हुआ होता है, सब कुछ मिला-जुला, इसके लिये तुम्हें बहुत गहराईमें और बहुत तेजीसे जाना चाहिये; क्योंकि यह बाढ़की तेजीसे फैलता है; और जब यह फैल जाय तो एक ढेर बन जाता है... मानों काला धुआं हो जो ऊपर उठता हो और चेतनाको बोझिल बना देता हो। इसके अंदर व्यवस्था लाना बहुत, बहुत कठिन है। लेकिन जब तुम्हें लगे कि प्रकोप उठ रहा है, तो अगर तुम तुरंत दौड़कर वहां जाओ, इस तरह तेजीसे प्राणिक केंद्रमें अच्छी प्रकाशमय मशाल लेकर जाओ

जनवरी १९८०

१७

तो तुम्हें वह कोना मिल सकता है। अगर तुम्हें वह कोना मिल जाय, तो झपटकर यूँ करो, उसे पकड़ लो और वह खतम हो जायगा, क्रोध तुरंत, तुम्हें एक भी शब्द बोलनेका समय मिले उससे पहले चला जाता है। मैं एक उदाहरण दे रही हूँ, ऐसे और सैकड़ों हैं। भावनाओंकी सभी चीजें, स्वाभिमान, महत्त्वाकांक्षा, आवेश — आवेश ... हाँ, और केवल भौतिक आवेश नहीं : मेरा मतलब है उससे (मैं उस शब्दका उपयोग तो नहीं करना चाहती, क्योंकि यह उसका दुरुपयोग है, फिर भी) जिसे लोग प्रेम कहते हैं —, वह सब, वहाँ है और वहाँ पाये जाते हैं, सब आसक्तियाँ, सारी भावुकताएँ, यह सब उसमें है।

और सिरमें ?

आह ! सिरमें, विचारोंके समस्त विकृत रूप, सभी विश्वासघात— विश्वासघातोंकी बहुत बड़ी संख्या है : आदमी बहुधा, ऐसे निरंतर रूपमें अपनी अंतरात्माके साथ विश्वासघात करता है जो भयानक है — सभी निर्णय, दृष्टि-विन्दु, अनुकूल व्याख्याएँ, जैसा कि मैं तुमसे कह रही थी, और फिर, आलोचना करनेकी एक प्रकारकी आदत ...। तुम जो चीज नहीं सुनना चाहते, जब कोई उच्चतर चीज तुम्हारा दोष दिखलाती है तो तुम्हारी यह आदत होती है कि तुरंत एक व्याख्या कर दो और उस विचार या भावकी बड़ी समालोचना करो; कुछ लोग उसे मजाककी बात बना लेते हैं; ऐसे लोग हैं जो तुरंत उसके विरोधमें कोई और विचार या घिसी-पिटी धारणा ला खड़ी करते हैं। तुम कल्पना नहीं कर सकते कि सिरमें कैसा बाजार लगा रहता है। यह एक भयानक चीज है। अगर तुम व्यवस्था लाने, स्पष्ट रूपसे देखने और सब कुछ व्यवस्थित करनेसे पहले, यह देखनेसे पहले कि दो विरोधी भाव साथ-साथ नहीं चल सकते, सचमुच तटस्थ होकर अंदर जो हो रहा है उसे देखो, तो वह भयावह दीखेगा।

मैं बड़ी संख्यामें ऐसे लोगोंको जानती हूँ जो अपने मनमें विरोधी भावोंको व्यवस्था या समन्वयके बिना आश्रय देते हैं — उनके लिये समन्वयका प्रश्न ही नहीं होता —, लेकिन यूँ... घातक रूपसे विरोधी चीजोंको, यानी, ऐसे भावोंको जो साथ नहीं रह सकते, उनमें एक भाईचारेका-सा सहवास होता है। तुम उन्हें एक विशाल समन्वयमें व्यवस्थित कर सकते हो। लेकिन यह वस्तुतः एक उच्चतर व्यवस्थाका काम है; फिर भी दो चीजें, दो भाव, जो क्रियामें एकदम विरोधी परिणाम लाती हैं और एक ही तथ्यकी दो परस्पर-विरोधी व्याख्याएं हैं...। ये दोनों चीजें साथ-साथ चलती हैं, कभी-कभी इतनी नजदीक कि तुम्हें लगता है कि वे जुड़ी हुई हैं, वे अपने संग-की उपहासास्पद स्थितिसे जरा भी विचलित हुए बिना एक साथ रहती हैं।

एक दिन मुझे तुमको एक उदाहरण-माला देनी चाहिये। मैंने तुमसे यह बात बहुत बार कही है, पर उदाहरण कभी नहीं दिये; लेकिन एक दिन मैं बहुत-से उदाहरण इकट्ठे करके तुम्हें सुनाऊंगी। तुम यह देखोगे; अगर यह दुःखद नहीं है, तो ऊटपटांग है। अधिकतर लोग, जिनमें यह चीज होती है, इसे कभी देखते तक नहीं, इससे उन्हें कोई परेशानी नहीं होती। अगर तुम्हारे अंदर चीजोंके बारेमें कुछ विचार है — निश्चय ही चीजोंके बारेमें, संसारके बारेमें, जीवनके बारेमें, जीवनके उद्देश्य, जीवनके लक्ष्य, भावी सिद्धि आदिके बारेमें विचार होंगे ही; वस्तुतः, तुम्हारे अंदर बहुत-से विचार होंगे —, हां, तो एक दिन यह छोटा-सा खेल खेल देखो: इन सभी विचारोंको इस तरह अपने सामने रखो और फिर उनको व्यवस्थित करो; तुम देखोगे कि यह कितना आसान है, और शायद तुम्हें बहुत मजा आवे; तुम्हें बहुत-सी आश्चर्यजनक चीजें मिलेंगी।

सिर्फ इतना काम ही, बस, उनको बाहर लानेका यह काम, उन्हें बस, अपने सामने पास-पास रखना, किसी भी विषयपर तुम्हारे अंदर जितने विचार हैं उन सबको लाकर रखना मानों तुम उन्हें एक

जनवरी १९८०

१९

प्रयोगके रूपमें लिख डालनेके लिये बाधित हो — मानों तुम्हें एक निबंध लिखनेके लिये कहा गया हो : “तुम अमुक चीजके, अमुक विषयके बारेमें सोचते हो ?” और तुम उसका खाका बनानेके लिये बाधित हो —, सभी विचारोंको साथ-साथ रखो और तुम देखोगे कि यह मजेदार है। जबतक कि तुम्हें एक केंद्रीय विचार बनानेकी आदत न हो, अगर सम्भव हो तो एक स्थिर केंद्रीय सत्य हो जिसके चारों ओर तुम अपने सब विचारोंको व्यवस्थित कर दो। तुम उन्हें एक युक्तियुक्त क्रममें, हर एकको अपने स्थानपर रखते हुए व्यवस्थित करो और उनसे एक तरहका कीर्तिस्तंभ बनाओ — अगर तुमने यह कभी नहीं किया है, और तुम अपने मनको पढ़नेकी कोशिश करो, तो तुम वहांपर सचमुच कुछ देखोगे। मैं कहती हूं : “अगर वह सचमुच दुःखद न हुआ तो बहुत हास्यास्पद होगा।” तुम कल्पना नहीं कर सकते कि एक घंटेके अंदर तुम किस हदतक परस्पर-विरोधी चीजोंके बारेमें, बिना आश्चर्यके सोच सकते हो।

इसे लिख लेना एक अच्छा प्रयोग है : अच्छा, मैं अब एक छोटा-सा निबंध लिखनेवाला हूं... “जीवन किस उद्देश्यकी ओर मुड़ता है ?” (इसे ले लो, या किसी औरको ले लो, उसमें कोई फर्क नहीं), या फिर “धरतीपर जीवनका उद्देश्य क्या है ?” या “मनुष्य मरनेके लिये क्यों पैदा होते हैं ?” कोई भी चीज, ऐसी ही चीजें लो। मैं यह नहीं कहती कि ऐसे विषय लो : “आज तुम फुट-बाल क्यों खेले थे और कल बास्केट बाल क्यों खेलोगे ?” नहीं, इस तरहकी चीजें नहीं, क्योंकि इन्हें तुम हमेशा समझा सकते हो। मैं कुछ अधिक व्यापक चीजोंकी बात कर रही हूं। उसे अपने सामने रखो और फिर उस विषयपर तुम्हारे अन्दर जितने विचार उठें उन्हें लिख लो। तुम देखोगे कि यह मजेदार है।

(‘श्रीमातृवाणी’, खण्ड ७, प्रश्न और उत्तर १९५५)

जीवनकी दिशा

तुम्हें जीवनमें दुःखद आघातोंका अनुभव हुआ है? जीवन-संवेदनामेंसे कोई प्रश्न बार-बार तुम्हारे आगे आकर खड़ा होता है जिसका हल भी तुम्हें न सूझता हो? “यह क्या है?” “इसका क्या अर्थ है?” “जीवन क्या है?” “मृत्यु क्या है?” इस प्रकारके सनातन प्रश्नोंकी दीवारपर तुमने भी माथा पटका है? और परिणामस्वरूप निरुत्साह, शोक और निराशाकी खाईमें कभी गिरे हो? मानव शक्तिहीन है, पामर है, वह भला जान ही क्या सकता है? इस प्रकारकी शंकाशीलता और अश्रद्धाकी अवधिमेंसे गुजरे हो न?

पर यह न समझ बैठना कि यह अनुभूति ही अन्तिम है। ऐसी मर्म-भेदक सम्वेदनाका भी हल है। अन्तरकी गहरी श्रद्धाकी आवाज सुनो। वह तुम्हें बता रही है कि इसका भी हमारे जीवनमें कुछ-न-कुछ अर्थ तो है ही। पर यह श्रद्धा कब फलीभूत होगी? जबतक मानव जीवनके मूल्यांकनकी पद्धतिमें समूल परिवर्तन नहीं हो जाता तबतक तो इसकी चाबी हाथ आती दिखायी नहीं देती। अंधेरेमें टटोलते हुए, जीवनके नीरस और सूखे मार्गमें भी कोई दिव्य, गाढ़ और अत्यंत सामीप्य रखनेवाला, अत्यधिक परिचित प्रेम समाया हुआ है। कोई दिव्य प्रणयी जीवनकी इस महा दुःखद यात्राके अन्तपर, शायद इसके उद्देश्यरूप बैठा अनन्त कालसे हमारी राह देख रहा है। उसकी एक चितवन ही हमारी अनन्त कालकी पीड़ाओं और मुसीबतोंको भुलाकर आनन्द-विभोर कर देनेके लिये काफी है। वहां मोह कैसा? उसके आगे जीवनका शोक कहां? उसकी एक-एक चितवनमें वह ज्ञान-ज्योति भरी है कि उसे निहारते ही हमें एक बार सोचना पड़ जाता है कि क्या वास्तवमें ऐसे-ऐसे कारण भी हमें दुःखी कर देते थे?

जनवरी १९८०

२१

यह परम प्रेम प्रेरित, ज्ञान ज्योतिपूर्ण, करुणामय दिव्य शक्ति हमारे ऊपर अपना साम्राज्य तभी फैलाती है जब स्वयं हमें उसकी चाह हो। जबतक हम स्वेच्छापूर्वक उसकी ओर नहीं जाते तबतक वह भी अपनी सर्वशक्तिमत्ताके बलपर हमसे आज्ञा-पालन नहीं करवाती। जबतक हम अपने-आप अपना सब कुछ उसके चरणों-पर न्योछावर नहीं कर देते — अपना अन्तर और बाह्य उसे ही साँप नहीं देते — तबतक वह हमारे अन्तरके द्वार खड़ा प्रतीक्षा किये जाता है, हमारी राह देखे जाता है। उसके अटूट वैर्य और अपार करुणामें हमारे भूतकालका कोई लेखा है ही नहीं। उसकी प्रेम-दृष्टिके आगे हमारा विषाद और हमारा क्रोध, हमारा सुख और हमारे दुःख कैसे हेच लगते हैं।

जीवनकी संवेदनाओंमेंसे हम उसकी ओरको चल पड़ें तो कैसा अहो भाग्य ! कोई हंसता-खेलता उस ओर जा रहा है, कोई बिना जाने ही उस ओर चल पड़ा है; कोई निश्चयपूर्वक जा रहा है, तो किसीने व्रत लेकर यात्रा शुरू कर दी है। और हां, कितने सारे रोते-धोते, नयनोंमें नीर लिये उसी राहपर चलते चले जा रहे हैं। सभी मार्ग उसके हैं न ?

— श्री अम्बालाल पुराणी

07.9.49.7

तरुणोंसे

विद्यार्थी-जीवनमें एक बातका खास ख्याल रखना चाहिये, वह यह कि विद्यार्थी एक मशीन नहीं है। बाह्य जीवनके, कुछ नियमों-का पालन कर लेनेसे ही “जीवन” नहीं बन जाता। जीवन तो अन्तरमें विकसित होती हुई चेतनाकी क्रिया है। बाहरी जीवन उसकी एक छाया मात्र है। इसलिये किसी चीजके लिये चटसे

अच्छा या खराब कह देना ठीक नहीं। जीवन बहती नदीकी तरह है। उसमें उन्नति, और अधोगति, अच्छा या बुरा स्थायी नहीं होते, जीवनकी तरह यह भी गतिशील होते हैं। चौखटेके अन्दर बिठाकर जीवनका अमूल्य अनुभव पाना बहुत कठिन है। ऊपरसे लादे गये नियंत्रणसे जीवन सुधर सकता है यह विचार ही गलत है। नियंत्रणका लाभ तभी है जब वह अपने अन्दरसे आये या कम-से-कम अपने-आप चुना गया हो। विशेष रूपसे विद्यार्थी जीवनमें ऊपरी व्यवहारसे प्रगति या अधोगतिको नहीं नापा जा सकता क्योंकि विद्यार्थीमें जीवनकी सब प्रकारकी वृत्तियां अपने-अपने क्षेत्रकी तलाश करती हैं और विद्यार्थी उनकी क्रियाओं तथा उनके परिणामोंसे अपरिचित होनेके कारण इधर-उधर भाग-दौड़ करता है; इसलिये उसकी इस समयकी क्रियाओं अथवा बाहरी व्यवहारको बहुत अधिक महत्त्व देकर उसके बारेमें राय बना लेना ठीक नहीं होता। बहुत बार देखा गया है कि बचपनमें बहुत उद्विग्न, शरीर, स्वार्थी, मनमौजी, लड़ाकू, चोर आदि उपाधियां पानेवाले विद्यार्थी आगे चलकर बहुत अच्छे निकलते हैं जिनके जीवनमें संयम होता है और वे अपने जीवनका अच्छा उपयोग करते हैं; जब कि बहुत-से आज्ञाकारी, शांत, सयाने, सच्चे, ईमानदार कहानेवाले आगे चलकर ठीक उल्टे निकलते हैं। हमारा बाह्य क्रिया-कलाप प्रायः आंतरिक जीवनका प्रतिबिम्ब होता है, इसलिये हम बाह्य आचार-व्यवहार देखकर आंतरिक जीवनके बारेमें राय बना लेते हैं। पर विद्यार्थी-अवस्थामें यह व्यवस्था क्षणिक और गतिशील होती है, इसलिये उसका असर बहुत देरतक नहीं रहता। हर विद्यार्थीके लिये यह जरूरी है कि वह अपने आंतरिक जीवनको ऊपर उठानेकी कोशिश करे। अपने-आपको भली-भांति देखनेकी आदत डालनेसे उसे पता लगेगा कि सौमेंसे अस्सी बार अधोगामी वृत्तियां उसपर काबू पानेकी और उसके व्यवहारमें प्रकट होनेकी कोशिश करती हैं, परन्तु यदि वह सावधानीसे ऊपरकी ओर

जनवरी १९८०

२३

नजर रखेगा तो सीमेंसे अस्सी बार उच्च प्रकारकी वृत्तियोंमें प्रेरणा पाकर अपने व्यवहारमें भी उच्च बनता जायगा।

हर व्यक्तिमें अनिवार्य रूपसे अच्छे-बुरेका मिश्रण होता है। हर एकमें पुण्य-शाली और पापमयी वृत्तियां मौजूद होती हैं और केवल उनकी उपस्थितिके कारण हम किसीकी तारीफ या बुराई नहीं कर सकते। देखनेकी बात तो यह है कि व्यक्ति दोनोंमेंसे किसको चुनता है। विवेकमें कई बार भूल हो सकती है, व्यक्ति-व्यक्तिके लिये अलग मानक हो सकते हैं, इसलिये विद्यार्थीको यह न मान बैठना चाहिये कि केवल उसीकी बात ठीक है, बाकीकी गलत। यानी, विद्यार्थीमें सहिष्णुता होनी चाहिये।

हमारे कहनेका आशय यह है कि विद्यार्थी-जीवनमें अच्छे या बुरे कहानेका बहुत मूल्य नहीं है। हम यह नहीं कहते कि विद्यार्थी-को शरारत न करनी चाहिये। हमारे कहनेका आशय यह है कि शरारत करते हुए भी अपनी अन्तर-वृत्तिपर नजर रखो। विद्यार्थी-में जीवन छलकता है, यदि वह उसका उपयोग करे तो इसमें क्या बुराई है? जीवनहीन, भला और सयाना विद्यार्थी होनेकी जगह प्राणवान् शरीर या पागल होना अधिक अच्छा है। हमने उन्नीस-वीस वर्षके वृद्ध देखे हैं और उन्हें देखकर हमेशा खेद हुआ है। उनकी गंभीरता, गंभीरता न होकर प्राणहीनता होती है। वे अच्छी बातें करते हैं क्योंकि उनमें शैतानी करनेके लिये दम नहीं होता? इसका आशय यह नहीं है कि विद्यार्थीको बुरी बातें करनेकी खुली छूट है; नहीं, हम केवल इस बातपर जोर देते रहे हैं कि उनके अन्दर प्राण-शक्तिको ऊर्ध्वगामी न बनाया जाय तो यह अवश्यमेव नीचेकी ओर जायगी। कई बार "भले" विद्यार्थीकी भलाई उसके अन्दर ओजकी कमीके कारण होती है। हमारी दृष्टिमें विद्यार्थी-जीवनमें सबसे अधिक आवश्यकता इस बातकी है कि विद्यार्थीके अंदर यह भाव रहे कि मुझे कोई नहीं हरा सकता, मेरे लिये कुछ भी असाध्य नहीं है, मैं अपने जीवनको जैसा चाहूँ

मोड़ दे सकता हूँ। अभीतक हमने तीन चीजोंपर बल दिया है : सहिष्णुता, प्राणशक्ति और आत्मविश्वास।

अब हम वर्तमान भारतके विद्यार्थियोंकी विशेष आवश्यकताओंपर ध्यान देंगे। आजकल भारती प्रजामें विचारशक्तिका एकदम अभाव है। हमारे पास कोई भी विचार आये हम उसे मान लेते हैं, किसी भी पुस्तक, किसी भी आचार्यका कोई भी वाक्य हमारे लिये प्रामाणिक हो सकता है; इसलिये हम नाना प्रकारके अंध-विश्वासोंमें पड़े रहते हैं। इसी कारण हमारे जीवनमें, हमारे समाजमें रूढ़ियोंका राज्य है। हमें पश्चिमकी सलाह मानकर एक अंधविश्वासकी जगह दूसरे अंधविश्वासको प्रतिष्ठित नहीं करना चाहिये, बल्कि स्वतंत्र विचारशक्तिका उपयोग करके सत्यासत्यको जाननेका प्रयास तो करना चाहिये। हमारा सामाजिक जीवन और राजनीतिक जीवन बंधे तलावकी तरह है और सदियोंसे ऐसा ही चला आ रहा है। इसके परिणामस्वरूप, हमारी विचारशक्ति ही खो गयी है; हर एकको अपने व्यक्तिगत, सामाजिक, सार्वजनिक, राजनीतिक, धार्मिक प्रश्नोंपर स्वतंत्र रूपसे विचार करनेकी आदत डालनी चाहिये।

इसका यह आशय नहीं है कि विद्यार्थीको स्वच्छंद विचारोंवाला होना चाहिये। विद्यार्थीको अपने विचारोंको जंजीरोंमें न जकड़ देना चाहिये। उसे अपने मनके दरवाजे सत्यका स्वागत करनेके लिये खुले रखने चाहिये। यहां विद्यार्थीको यह भी न मान बैठना चाहिये कि उसीके विचार सत्य हैं! उसे मालूम होना चाहिये कि अभी उसकी बुद्धि कच्ची है, उसे अभी बहुत कुछ सीखना है, अधिक ज्ञान पानेपर उसे अपने माने हुए प्रिय विचारोंको छोड़नेके लिये तैयार रहना चाहिये। और अपनेसे बड़े और अधिक अनुभवी लोगोंके साथ मतभेद होनेपर भी, अपने मतको बनाये रखते हुए भी उनके प्रति पूज्य भावमें कमी न आने देनी चाहिये।

किसीकी बातोंका अंधा अनुकरण न करना चाहिये परंतु किसी-

जनवरी १९८०

की भी बतायी हुई सच्ची बातको स्वीकार करनेमें हिचकिचाहट न होनी चाहिये। हीरा मिट्टीमेंसे मिले तो भी हीरा है। इसी तरह सत्य जहां कहींसे मिले उसे सहर्ष स्वीकार करना चाहिये।

यहां यह प्रश्न उठता है कि यदि सत्य बुद्धिके द्वारा पाया जा सकता है तो संसारमें इतने मतभेद क्यों हैं? इस प्रश्नपर अच्छी तरह विचार करनेके लिये तो एक पोथीकी जरूरत होगी। यहां इतना ही कहा जा सकता है कि अभीतक हमारे पास जितने उपकरण हैं, उनमें बुद्धि सबसे ऊंची है, फिर भी वह सत्यको पानेमें असमर्थ है। यदि मनुष्य सत्यकी प्राप्तिके लिये अपनी समस्त इच्छाओं, कामनाओं, भावनाओंको छोड़कर पूरी तरह सत्यके लिये अभीप्सा करे तो उसे सत्यका मार्ग अवश्य मिल सकता है, परंतु जबतक बुद्धिका विकास ही न हुआ हो तबतक उसके पास जाना आसान नहीं है। इसलिये यह जानते हुए कि बुद्धि अंतिम उपकरण नहीं है, हमें उसके पार जाना है, हमें बुद्धिको विकसित करना चाहिये।

हमारे विद्यार्थी-वर्गमें व्यक्तित्वके विकासकी बहुत कमी है। हजारों वर्ष पहले शंकराचार्य हो गये हैं; आज भी उनके अनुयायी उनकी प्रतिकृति बनना चाहते हैं—गांधीजीके अनुयायी छोटे गांधी बननेकी कोशिश करते हैं। परंतु प्रकृतिने दो मनुष्य एक जैसे नहीं बनाये। हर एक अपने-आपमें अद्वितीय है। जैसे एक पेड़का हर पत्ता अलग होता है उसी तरह मनुष्य भी एकसे होते हुए भी अलग हैं; परंतु हमारे समाजमें मनुष्यको अपने विशेष तत्त्वोंको विकसित करनेका अवसर नहीं मिलता। एक लुहार सारे जीवन लोहेका काम करता है परंतु अपने काममें अपनी विशेष कारीगरीकी छाप नहीं लगा पाता।

एक और बड़ी जरूरत है—स्वप्न देखनेकी। यह सुनकर बहुतोंको आश्चर्य होगा। मैं यहां व्यावहारिक बननेकी सलाह नहीं दे रहा, शेखचिल्ली बननेको कह रहा हूं। तुम अपना भविष्य अपने साथ लेकर आते हो; मेरे युवा मित्रो, तुम्हारे वर्तमानकी सार्थकता

इसीमें है कि भूतकालकी झंकार सुनते हुए भविष्यके स्वप्न देखो। इसलिये मैं बार-बार आग्रह करके कहता हूँ: स्वप्न देखो, सुनहरे स्वप्न देखो। स्वप्न देख सकना अपने-आपमें बड़ी दौलत है। रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवत आदि पढ़ो, गौतम बुद्धके कालकी कल्पना करो, देवानां प्रियः अशोकके स्तंभ देखो, ये सब भारतके भव्य भूतकालकी ध्वनि सुनायेंगे, पूर्वजोंके स्वप्नोंका मूर्त रूप दिखायेंगे। तुम भी इनसे स्वप्न देखना सीखो परंतु भूतकालके नहीं, भविष्यके स्वप्न देखो।

हां, केवल स्वप्न देखना ही काफी नहीं है। द्रष्टाकी शक्ति स्वप्नकी सार्थकताका आधार है। हमें केवल प्रभु-सेवामें ही संतोष न मान लेना चाहिये। स्वयं मानव जीवनको ईश्वरीय जीवन बनाना होगा। हमारा व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन ईश्वरके आविर्भावका रूप लेगा। धन-धान्य, पुत्र-कलत्र, साहित्य, कला आदि सुख हमारे लिये काफी नहीं हैं। हम क्षुद्र कीट-पतंग नहीं हैं। मनुष्य ईश्वरका अंश है और प्रयास करके इस धरतीपर ईश्वरको अवतरित कर सकता है।

आज भारत एक नये प्रभातकी उषाको देख रहा है। उसके बालक विविध प्रकारके स्वप्न देख रहे हैं। अति प्राचीन कालसे चली आती भविष्यवाणियां सच्ची होनेको हैं। मनकी परिमितताको लांघकर उसके पार जानेका मंत्र सुनायी दे रहा है। सत्यका साम्राज्य प्रकट होनेको है। जो इस आह्वानको सुन सकते हैं उन्हें उसकी पुकारपर आगे बढ़ना है, जो नहीं सुन पाते उनके लिये स्वप्नोंका भंडार भरा हुआ है।

नित्य जीवनमें ऊर्ध्वगामी बननेका संकल्प करके निःस्वार्थ, निष्काम सेवाभावको अपने जीवनमें उतारनेके प्रयासमें ही स्वप्न देखनेकी सार्थकता है। इसका फल न मिले तो भी स्वप्नहीन जीवनकी अपेक्षा स्वर्णमय स्वप्नभरा यौवन हजार गुना अच्छा। इसलिये मेरे नौजवान मित्रों, अपने दैनिक जीवनको ही एक ऊपर उठने-

जनवरी १९८०

वाला स्वप्न बनानेकी कोशिश करो; उसमें क्षुद्रता, अहंभाव, कामना, वासना आदिके धब्बे न लगने पायें। जो तुम्हारे संपर्कमें आये उसे तुम्हारे स्वप्न प्रभावित करके अपना सकें। तुम्हारा एक सच्चा स्वप्न हो और तुम सामान्य जीवनकी क्षुद्रता और असत्यता-का अनुभव कर सको। आजकी कठोर वास्तविकता दुःस्वप्न बन-कर उड़ जायगी और आदिकालसे चले आते स्वप्नोंका भविष्य अवश्य मूर्तरूप लेगा।

— अम्बालाल पुराणी

दुःस्वप्न पीछे रह जायेंगे

हम भूले हुए हैं और यह है भी स्वाभाविक। रंगमंचपर जा-कर हमें यह भूल जाना पड़ता है कि हम वास्तवमें कौन हैं। वहां तो यही याद रहना चाहिये कि कौन-सी भूमिकामें काम कर रहे हैं। आनन्द, इन्द्र, मारिया, अपने-अपने व्यक्तित्वको भूलकर, प्रताप, रणजीतसिंह और लक्ष्मीबाई बननेमें ही अपनी सार्थकता समझते हैं। वे अपने-आपको पूरी तरह भूलकर वह पात्र बन जायें तभी नाटक सफल हो सकता है। इसी तरह हम सब भी भगवान्‌के ही रूप हैं और जगतीके रंगमंचपर मनुष्य, हाथी, घोड़ा, कुत्ता आदि बने हुए हैं। हमें अगर यह याद रहता कि हम भगवान्‌के अंश हैं, भग-वान् ही हैं तो सृष्टिकी रचना ही न होती। शायद सर्वशक्ति-मानकी इच्छा हुई कि अपने-आपको, अपनी नानाविध क्षमताओंको देखे; उसने अपने अन्दरसे अपने अनेकानेक रूप बनाये और उनमें अपने-आपको देखा। अब उनमेंसे प्रत्येकको सचेतन बनाकर उन-की अनेकतामें एकता देखनेका खेल शुरू हो रहा है। जैसे समुद्र अपने-आपको प्रत्येक बूंदमें देखे और प्रत्येक बूंद अपने-आपको पूरे समुद्रके रूपमें भी देखे।

प्रत्येक जड़-भौतिक पदार्थका मूल प्राणमें और प्राणका मूल मनमें है। इसी प्रकार निचले स्तरकी हर चीजका मूल उससे ऊपरके स्तरमें है। हर निचला स्तर अपनेसे ऊपरके स्तरसे पोषण और जीवन पाता है और इसीलिये उसका जीवन-स्रोत सूखने नहीं पाता। प्रथम भागवत इच्छा-शक्तिने जब बहुत-से रूप बनाये तो प्रत्येक रूप अपने-आपको अपने मूलसे अलग अनुभव करने लगा। अलग होनेका भाव पैदा होते ही उनका अपने मूलके साथ संबन्ध न रहा। सचमुच सम्बन्ध कट जाना तो असंभव है, हां, प्रतीति ऐसी हुई, और चेतना अचेतनामें बदल गयी। यह अचेतना नाटकके लिये बहुत जरूरी थी। इसीके कारण अलग-अलग व्यक्तित्व बने, इसीके कारण नाना प्रकारके द्वन्द्व पैदा हुए। अविद्या, अंधकारमें जाकर उसे नया रूप देनेके लिये यह खेल शुरू हुआ था, वरना भगवान् चाहें तो क्षण-भरमें मकड़ीकी तरह अपने बनाये हुए जालको अपने अन्दर गुम कर सकते हैं। पर नहीं, सुख-दुःख, राग-द्वेष, पाप-पुण्य, भोग और त्याग आदिके विरोधी तत्त्वोंको उत्पन्न किया।

पृथ्वीपर उसने नाना प्रकारके देशोंकी सृष्टि की। हर देशको अलग-अलग काम सौंपा। किसीको बुद्धिप्रधान बनाकर उसके द्वारा बुद्धिके उच्चतम शिखरोंको नापा तो किसीको सौंदर्य-प्रिय बनाकर उसके द्वारा सौंदर्यके नये-नये क्षेत्रोंका उद्घाटन किया। सिर्फ यही नहीं, किन्हीं देशोंको शक्ति और पाशविक बल-प्रदर्शन करनेके लिये चुना गया और कुछको वर्वरता दिखानेके लिये। लेकिन यह सब चीजें बिना अपवादके उसी नाटकके दृश्य हैं और सब मिलकर पूर्ण काई बनाते हैं। इनमें न कोई छोटा है, न बड़ा, अच्छा और बुरा भी कोई नहीं है क्योंकि हर एक अपना काम पूरा कर रहा है।

इस लीलामें भारतवर्षको एक विशेष भूमिका दी गयी है। जब सारे मंचपर अंधेरा होता है तब भी यहां ज्योति जागृत रहती है, भले वह गिने-चुने लोगोंमें ही क्यों न हो। मंचकी रोशनीको घटाना-बढ़ाना या एकदम गुल कर देना इसी नियंत्रणगृहके हाथमें है।

जनवरी १९८०

मगवान् जब घोर कलिकालका दृश्य, अर्थात्, तामसिक और राज-
सिक तत्त्वोंका खेल देखना चाहते हैं तो वे भारतके आलोकको
नीचा कर देते हैं। यहांके योगी यहांके आध्यात्मिक पुरुष संसारको
उसीके भाग्यपर छोड़कर अलग हो जाते हैं और एकांतमें अपने
तथा अपने शिष्योंके कल्याणके लिये तपस्या करते हैं। इसके विप-
रीत, जब धरतीपर आलोकका खेल करना हो तो भारतको फिरसे
उठाया जाता है, उसमें नवीन ज्ञान उंडेला जाता है ताकि वह उसे
सारे संसारको दे सके और हर जगह रात दिवस बरसें अमी। तब जनक
और अजातशत्रु जैसे लोग सिंहासनपर आते हैं और धारा बदल जाती है।

सत्य-युगमें अपनी सीमाओंमें रहते हुए समस्वरता और सामं-
जस्यका राज होता है और मनुष्य अपनी पूर्णताकी अनुभूति प्राप्त
कर सकता और भविष्यकी उज्ज्वल संभावनाओंकी झलक पाता
है। उसके बाद इसका टूटना शुरू होता है और मनुष्य अपनी
इच्छा-शक्तिके द्वारा, सामूहिक संकल्पके द्वारा अपनी पूर्णताको बनाये
रखनेका प्रयास करता है। यह त्रेताकी बात है, इसके बाद आता
है द्वापर जब और अधिक विघटन होता है; वहां बुद्धि प्रधान होती है
और समझौतेसे काम चल जाता है और फिर आता है कलि जो
गिरती-पड़ती दीवारोंको पूरी तरह ढा देता है, एक भूकम्प-सा ला-
कर सब कुछ नष्ट-भ्रष्ट कर देता है, स्थिति बुरे-से-बुरी और उससे भी
बुरी हो जाती है। समयका चक्र चलता रहता है, हर कलि-
कालके बाद सत्यका आना अवश्यम्भावी है। हर कलि अपने बाद
आनेवाले सत्यके लिये मैदान साफ करता है, झाड़-झंखाड़को दूर
करके नयी खेतीके लिये जमीन तैयार कर जाता है।

हम लोग भाग्यवान् हैं। कलि समाप्त हो चुका है और भावी
सत्य-युगकी किरणें बरसनी शुरू हो चुकी हैं। आज हमें फिरसे
पूर्णताकी चाह है, अहंकारकी उस पूर्णताकी नहीं जो वास्तविक
प्रगतिमें बाधा देती है, बल्कि उस पूर्णताकी जो धरतीपर सत्यकी
स्थापना करेगी और इस मार्गमें जो बाधाएं आती हैं वे भी मानों

भगवान्का आशीर्वाद बनकर हमें दृढ़ बनाती जाती हैं। स्वयं भगवान् हमारे गुरु हैं। सर्वसमर्थ, प्रेम और ज्ञान हमारे उत्थान-के लिये तैयारी कर रहे हैं। ईसाने हमारे लिये पवित्रता और मानव पूर्णताका मार्ग खोला; मुहम्मदने भगवान्के प्रति आत्म-समर्पण, उत्सर्ग और सेवा-भावको जगाया; चैतन्यने मानव शरीरमें भागवत प्रेम और आनन्दकी अनुभूति दी और रामकृष्णने तत्त्वतः सभी धर्मोंकी एकता दिखायी। सभी नदियां अपने-अपने मार्गपर जा रही हैं। मनुष्यने सभीमें अपना कूड़ा-कचरा डाला है। अब हमारा उद्देश्य है इन सबके जलको, इनकी पवित्रताको इकट्ठा करके भागी-रथीकी एक नयी धार लाना जो मानव मात्रका उद्धार कर सके और उसे नया जीवन दे सके।

मंचपर हर पात्र यदि बहस करने लग जाय, अपने शब्दोंके बारेमें ऊहापोह करे, अपने अभिनयके बारेमें त्रुटियां निकालता रहे तो सारा नाटक ही चौपट हो जायगा। वहां तर्क-कुतर्कके लिये जगह नहीं होती। नाटक जब पूरा रूप ले ले तभी एक-एक शब्द और एक-एक क्रियाका अर्थ जाना जा सकता है। इसी भांति सत्यका अनु-संधान करनेवाले साधकको सूखे तर्क-वितर्कमें समय नष्ट करनेकी जरूरत नहीं है। साधारण बुद्धि आध्यात्मिक सत्यके पास नहीं फटक सकती, मनुष्यकी बुद्धि अपनी पसन्दके पूर्वाग्रहोंको ही तर्क-संगत मानती है और यदि बहुत आगे बढ़ी तो रहस्यवादका गज लेकर आध्यात्मिक समुद्रकी गहराई नापने लगती है। ये सब व्यर्थ प्रयास हैं। शुष्क पाण्डित्य किसी प्रकारकी सहायता नहीं करता। भगवान् गुरुके बताये मार्गपर चलते-चलते एक दिन अचानक हम आलोकमें जा पहुँचेंगे और वहाँपर हर चीज स्पष्ट हो जायगी, सब प्रकारके संशय शांत हो जायेंगे और वहाँ हमारे वर्तमान नाटकका एक अंक समाप्त होगा। उसके बाद भी नाटक तो चलता रहेगा पर उसमें हमारी गति आलोकसे अधिक आलोककी ओर होगी और अंधकारके दृश्य दुःस्वप्नकी तरह पीछे रह जायेंगे।

बच्चे तभी जब आप चाहें

अनचाहे गर्भ से सोच विचारकर बनाई गई आपकी सारी योजनाएं व्यर्थ हो सकती हैं।

कई लोगों के साथ ऐसा हुआ है — आप इस गलती को न दोहराएं।

याद रखिए, उपचार से परहेज बेहतर है।

बच्चों का जन्म संयोग पर न छोड़िए !

निरोध इस्तेमाल कीजिए

यह पुरुषोंके लिये आसान और सरल तरीका है। यह आपको पास के किसी कैमिस्ट या परिवार कल्याण केंद्रसे मिल सकता है।

निरोध

सुखी जीवन का उपाय

सुखी जीवन के लिए पति पत्नी के
वास्ते एक भरोसेमंद साधन

davp 79/107



Courage and love are the only indispensable virtues; even if all the others are eclipsed or fall asleep, these two will save the soul alive.

Sri Aurobindo



INDIAN TEA STORAGE AGENCY

24, Ganesh Chandra Avenue, Calcutta-700 013



प्रिय

अ

शुरुसे

दस

अ

इसी

यटीव

१९८

(कुल

'अग्नि

अ

के प्र

१

अगस्त

परिशिष्ट

प्रिय सदस्य-बंधु,

आप श्रीअरविंद सोसायटीके सदस्य हैं। आप जानते हैं कि शुरूसे ही सोसायटीका वार्षिक चंदा १२.०० रु. रहा है। पिछले दस वर्षोंसे इसी चंदेमें आपको 'अग्निशिखा' भी मिलती रही है।

आप जानते ही हैं कि अब हर चीजका दाम बहुत बढ़ गया है, इसीलिये १२.०० में काम चलाना कठिन हो गया है। हम सोसायटीका चंदा नहीं बढ़ा रहे, परंतु आपसे निवेदन है कि जनवरी १९८० से सोसायटीके चंदेके साथ-साथ 'अग्निशिखा' का चंदा ८.०० (कुल २०.००) भेज दिया करें। वर्तमान परिस्थितिमें निःशुल्क 'अग्निशिखा' भेजना असंभव होगा।

आप अपने यहां सोसायटीके केंद्र या चक्र खोलने तथा 'अग्निशिखा' के ग्राहक बढ़ानेकी कोशिश अवश्य करें।

१९८० की फरवरीमें स्वाध्याय शिविर, मईमें शिक्षा शिविर और अगस्तमें कार्यकर्ता शिविरकी व्यवस्था होगी।

कृते : श्रीअरविंद सोसायटी

‘सो
करेगी
१९८०
कंसेशन
अधिवे
२३
होगी।
सकेगी
स्वाध्य
के लि
अवसर
१९८०
६०५०
हम
इसके
सहायत
करें।
आपके
‘श्री
१४ ३
महेश्वर
बल्ल
श्रीअर
सोसाय

सोसायटी समाचार

‘सोसायटी’ पांडिचेरीमें हर वर्ष तीन साधना-शिविरोकी व्यवस्था करेगी ताकि सदस्य आकर साधना और अध्ययनका लाभ उठा सकें। १९८० में फरवरी, मई और अगस्तमें शिविर होंगे। अगस्तमें रेलवे कंसेशनकी सुविधा भी होगी, उस अवसरपर सोसायटीका वार्षिक अधिवेशन भी होता है।

२३ फरवरीसे ३ मार्च तक पांडिचेरीमें स्वाध्याय शिविरकी व्यवस्था होगी। उचित खर्चपर उनके खाने-पीने और रहनेकी व्यवस्था हो सकेगी। इस शिविरमें श्रीअरविंदकी किसी पुस्तकपर सामूहिक स्वाध्याय, वातचीत, प्रश्नोत्तर, आदि, होंगे। सदस्योंको स्वाध्याय-के लिये पुस्तकालयकी सुविधा और आश्रमके वातावरणमें रहनेका अवसर मिलेंगे। जिनको इसमें रस हो वे कृपया ३१ जनवरी १९८० से पहले डा० महेश्वरी, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी — ६०५००२ से पत्र-व्यवहार करें।

हम अपने अतिथि-गृहोंमें स्थान बढ़ानेकी कोशिश कर रहे हैं। इसके लिये अनुदान और ‘ऑल इंडिया मैगजीन’ में विज्ञापनोंके द्वारा सहायता की जा सकती है। आप जिस तरह हो सके सहायता करें। इसके लिये चेक श्रीअरविंद सोसायटीके नाम भेजे जायें। आपके पास कुछ सुझाव हों तो उनका भी स्वागत होगा।

‘श्रीअरविंद सोसायटी उत्तर प्रदेश’ का वार्षिक सम्मेलन १३ और १४ अक्तूबरको मेरठमें संपन्न हुआ। आश्रमके सर्वश्री नवजात, महेश्वरी और छोटे नारायणने इसमें भाग लिया।

वल्लभ विद्यानगर (गुजरात) में डाक्टर महेश्वरीने माताजी और श्रीअरविंदकी शिक्षापर ‘सरदार पटेल विश्व विद्यालय’ और ‘श्रीअरविंद सोसायटी’ के तत्त्वावधानमें आठ भाषण दिये।

बड़ौदामें 'सोसायटी' के तत्त्वावधानमें २४ अक्टूबरसे १० नवंबर तक नेत्र-सुधार शिविरकी व्यवस्था की गयी थी जिसके लिये आश्रममें 'स्कूल ऑफ पर्फेक्ट आई साइट' के डा० दीक्षित आये थे। उन्होंने नेत्र-सुधारके उपाय बतलाये और रोगियोंकी चिकित्सा की। अठारह दिनोंके इस शिविरमें लोगोंको बतलाया गया कि आंखोंका ठीक उपयोग कैसे करना चाहिये। लगभग दो हजार व्यक्तियोंने शिविर का लाभ उठाया।

इन्दौरमें डा० महेश्वरीने 'श्रीअरविद योगकी साधना', 'माताजी 'सत्ताके भाग', 'मृत्यु', आदि विषयोंपर पच्चीस भाषण दिये।

निम्बाहेड़ा और चित्तौड़गढ़में डा० महेश्वरने स्थानीय विद्यालयोंमें दो भाषण दिये। उज्जैनमें भी स्वाध्याय शिविरका निदेशन किया। जोधपुरमें प्रोफेसर शिशिर घोषने श्रीअरविदके बारेमें एक भाषण दिया।

पांडिचेरी 'आकाशवाणी' ने श्रीनिवास आयंगरका 'माताजी और शिक्षा' विषयक भाषण १७ नवंबरको प्रसारित किया।

माताजीके चित्रोंके साथ नये वर्षके कैलेंडर और माताजीके वाक्यों के साथ दैनन्दिनियां 'शब्द', श्रीअरविदाश्रम, पांडिचेरी-६०५००२ में उपलब्ध हैं।

कैलेंडर — एकका दाम ४.००; दो के ७.००; तीन के ११.००

अंगरेजी दैनन्दिनी — एकका १२.५०; दो के २५.००; तीन के ३७.०० (इनमें डाकव्यय शामिल है। रजिस्ट्रीसे चाहें तो २.५० अतिरिक्त)

हिन्दी दैनन्दिनी — एक प्रतिके ५.०० (डाक-व्यय अलग)।



उद्बुध्यस्वाम्ने प्रति जागृहि
अखिल भारतीय पत्रिका

अग्निशिखा

श्रीगुरुदेव सोसायटीकी मासिक पत्रिका

समर्पण और कृपा विशेषांक

जून १९८०

वर्ष १०, अंक ११, पूर्णांक ११९

विषय-सूची

समर्पण और कृपा अंक

समर्पण और कृपा	
समर्पण — स्वरूप और महत्त्व	
पूर्ण समर्पण	१०
सक्रिय समर्पण	१२
समर्पण और बलिदान	१४
कृपा	२०
कृपाको प्राप्त करनेकी शर्तें	२६

	१०	वतीकी
	१२	श्रद्धा,
	१४	छल ३
	२०	भरी
	२६	प्राणकी
		तृप्तियों
		शिखावे
		जीवन
		भगवान
		किसी
		विशुद्ध
		उसका
		तरित
		और
		अपने
		गये हैं
		आवश्यक
		तुम्हारे
		जब अ
		बिना
		जो कु
		या अन
		*

कागज और छपाईका खर्च बेतहाशा बढ़ गया है। हम पिछले अक्तूबरसे चंदा बढ़ानेके लिये बाधित हो गये हैं। अब 'पुरोधा'का वार्षिक चंदा १०.०० और 'अग्निशिखा'का ८.०० हो गया है। भाजीवन सदस्यताके लिये 'पुरोधा'के १७५.०० और 'अग्निशिखा'के १२५.०० ही रहेंगे। जो अधिक देकर पत्रिकाओंकी सहायता कर सकते हों अवश्य करें।

पत्र, चेक, ड्राफ्ट, आदि, भेजनेका पता :

संपादक अग्निशिखा, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

संपादक : रवींद्र

प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-६०५००२

समर्पण और कृपा



जीवनमें सब प्रकारके भय, संकट और विनाशसे बच-
कर चलनेके लिये दो ही चीजोंकी आवश्यकता है,
दो चीजें जो सदा साथ रहती हैं — एक तो मां भग-
वतीकी कृपा और दूसरी तुम्हारी ओरसे एक ऐसी अन्तःस्थिति जो
श्रद्धा, निष्ठा और समर्पणसे पूर्ण हो। तुम्हारी श्रद्धा विशुद्ध, निश्-
छल और पूर्ण होनी चाहिये। मन और प्राणकी ऐसी अहंकार-
मरी श्रद्धा जो महत्वाकांक्षा, अभिमान, दंभ, मानसिक अहंकार,
प्राणकी स्वेच्छाचारिता, वैयक्तिक मांग और निम्न प्रकृतिकी क्षुद्र
तृप्तियोंकी इच्छासे कलुषित हो, एक मंद और धुंएसे ढकी अग्नि-
शिखाके समान है जो स्वर्गकी ओर नहीं जल सकती। अपने
जीवनको ऐसा समझो कि वह तुम्हें केवल भागवत कर्मके लिये और
भगवान्की अभिव्यक्तिमें सहायता देनेके लिये मिला है। और
किसी चीजकी इच्छा मत करो, चाहो केवल भागवत चैतन्यकी
विशुद्धता, शक्ति, ज्योति, विशालता, स्थिरता और आनन्द, और
उसका यह तकाजा कि उसके द्वारा तुम्हारा मन, प्राण, शरीर रूपां-
तरित हो। और कुछ न चाहो, चाहो केवल दिव्य आध्यात्मिक
और अतिमानसिक 'सत्य', चाहो उस सत्यकी सिद्धि पृथ्वीपर और
अपने अंदर और उन सबके अंदर जो इसके लिये बुलाये और चुने
गये हैं। उन परिस्थितियोंको चाहो जो इस 'सत्य'की सृष्टिके लिये
आवश्यक हैं और चाहो सारी विरोधी शक्तियोंपर 'सत्य'की विजय।

तुम्हारी निष्ठा और तुम्हारा समर्पण सच्चे और संपूर्ण हों।
जब अपने-आपको दे रहे हो तो पूरी तरह दो बिना किसी मांगके,
बिना किसी शर्तके, बिना किसी संकोचके दो, ताकि तुम्हारे अन्दर
जो कुछ है, वह सब मां भगवतीका हो और कुछ भी अहंके लिये
या अन्य किसी भी शक्तिको देनेके लिये शेष न रह जाय।

*

तुम्हारी श्रद्धा, निष्ठा और समर्पण जितने अधिक पूर्ण होंगे भगवती माताकी कृपा और अभय भी उतने ही अधिक तुम्हारे साथ होंगे। और जब भगवती माताकी कृपा और अभयहस्त तुमपर है तो फिर कौन-सी चीज है जो तुम्हें स्पर्श कर सके और जिसका तुम्हें भय हो? इसकी एक छोटी-सी मात्रा भी तुम्हें सब कठिनाइयों, बाधाओं और संकटोंके पार ले जायगी, इसकी पूर्ण उपस्थितिसे घिरकर तुम अपने रास्तेपर सुरक्षित आगे बढ़ सकते हो। क्योंकि यह मार्ग मांका है, किसी भी संकटकी परवाह किये बिना, किसी भी शत्रुतासे प्रभावित हुए बिना, चाहे वह कितनी ही शक्तिशाली क्यों न हो, चाहे वह इस जगत्की हो या अन्य अदृश्य जगत्की। इसका कृपा-स्पर्श कठिनाईको सुअवसरमें, हारको जीतमें और दुर्बलताको अडिग शक्तिमें परिणत कर देता है। क्योंकि, मां भगवतीकी कृपा परमेश्वरकी अनुमति है और आज हो या कल उसका प्रभाव निश्चित है, पूर्वनिर्दिष्ट है, अवश्यभावी है और अनिवार्य है।

*



दो शक्तियां हैं जिनके संयोगसे ही वह महान् और कठिन कार्य पूरा हो सकता है जो हमारी साधनाका लक्ष्य है। एक है नीचेसे पुकारनेवाली दृढ़ और अटूट अभीप्सा और दूसरी है ऊपरसे उसका उत्तर देनेवाली परम 'कृपा'। किंतु परम 'कृपा' केवल 'प्रकाश' और 'सत्य' की अवस्थाओंमें ही कार्य करेगी; 'असत्य' और 'अज्ञान' द्वारा लादी हुई अवस्थाओंमें नहीं। क्योंकि यदि वह असत्यकी मांगोंके सामने झुक जाये तो वह अपने उद्देश्यको ही पराजित कर देगी।

ये हैं 'प्रकाश' और 'सत्य' की अवस्थाएं व शर्तें, एकमात्र वे अवस्थाएं जिनमें उच्चतम 'शक्ति' नीचे उतरेगी; और केवल वह उच्चतम अतिमानसिक 'शक्ति' ही, ऊपरसे उतरकर और नीचेसे

भगवतुलकर इस भौतिक प्रकृतिकी कठिनाइयोंको नष्ट कर सकती है, उसे जीतकर अपने हाथोंमें ले सकती है...। होना चाहिये पूरा, और सच्चा समर्पण, होना चाहिये भगवान्की 'शक्ति' की ओर अपने-अपने अनन्य रूपसे खोलना; जो 'सत्य' ऊपरसे उतर रहा है उसे हर क्षण पूरी तरह अपनाना चाहिये, पार्थिव प्रकृतिपर मन, प्राण और देहकी जिन 'शक्तियों' और 'रूपों' का शासन चल रहा है उनके मिथ्यापनको हर क्षण पूरी तरह बरजना चाहिये।

यह समर्पण संपूर्ण और सत्ताके अंग-प्रत्यंगको लिये हुए होना चाहिये। इतना ही काफी नहीं है कि हृत्पुरुष स्वीकार कर ले, उसके साथ मनका उच्चतर भाग मान ले, अन्तःप्राण अधीन हो जाय और देहकी अंदरकी चेतना भी उसका प्रभाव अनुभव करे, मान सत्ताके किसी हिस्सेमें, यहांतक कि बाहरी-से-बाहरी अंगमें भी कोई ऐसी चीज नहीं होनी चाहिये जिसे किसी प्रकारका कोई संकोच न हो, जो किसी संशय, अस्पष्टता और छल-कपटके पीछे छिपी हो, तो विद्रोह करती हो, या इंकार करती हो।

यदि सत्ताका एक भाग तो समर्पण करे लेकिन दूसरा अपनेको छिप ले, अपने ही रास्ते चले या अपनी ही शर्तें रखे, तो समझ लो कि, जब-जब ऐसा होता है तब-तब तुम अपने-आप ही भागवत 'कृपा' को अपने पाससे दूर हटा रहे हो।

यदि तुम अपनी भक्ति और समर्पणके पीछे अपनी इच्छाओंको, अहंकारकी मांगोंको, प्राणके हठोंको छिपाओ, यदि तुम इन चीजोंको अपने ही नक्की अभीप्साके स्थानपर ला बिठाओ या इन्हें सच्ची अभीप्साके साथ मिला दो और इन्हें भगवती 'शक्ति' पर लादना चाहो तो तोपांतर करनेके लिये तुम्हारा भागवत 'कृपा' का अवाहन करना आवश्यक है।

यदि एक ओरसे या एक भागमें तुम अपने-आपको 'सत्य'के लिये खोलते हो और दूसरी ओरके दरवाजे लगातार विरोधी शक्तियों-के लिये, खोलते जाते हो तो यह आशा व्यर्थ है कि भागवत

‘कृपा’ तुम्हारा साथ देगी। तुम्हें अपना मन्दिर स्वच्छ रखतुम हर होगा, यदि तुम उसमें भगवान्की सजीव रूपसे प्रतिष्ठा करना चाहेतुम भगवान्को हो।

यदि जब-जब ‘शक्ति’ आये और ‘सत्य’ को अपने अंदर लाओ, तब-तब तुम उसकी ओरसे पीठ फेर लो, और फिरसे, निकालो अपनी असत्यको बुला लो, तो तुम भागवत ‘कृपा’ को सहायता न देनेसत्ताका दोष नहीं दे सकते। इसमें दोष है तुम्हारे अपने संकल्पके मिथ्याका नहीं चारका, तुम्हारे अपने समर्पणकी कमियोंका।

यदि तुम ‘सत्य’ के लिये पुकार करते हो और फिर भी तुम्हें ही अन्दर कोई चीज असत्य, अज्ञान और अभागवतका वरण करसशक्त है या जो इन्हें पूरी तरह छोड़ना नहीं चाहती, तो सदा तुम्हें तामसिक ऊपर आक्रमणका मार्ग खुला रहेगा और भागवत ‘कृपा’ तुमसे पीछा शिव हट जायगी। पहले यह ढूँढ निकालो कि तुम्हारे अन्दर क्या मिथ्यासत्त, है, क्या अंधकारमय है, फिर दृढ़तासे उसे निकाल फेंको। केवल अनुयायी तभी तुम रूपांतरके लिये भगवान्की ‘शक्ति’ को पुकारनेके अधिकारी बनोगे।

यह कल्पना न करो कि भगवान्को निवेदित किये गये घरा सत्य और असत्य, प्रकाश और अंधकार समर्पण और स्वार्थ साथ रहने दिये जायेंगे। रूपांतर सर्वांगीण होना चाहिये, उसके मार्गमें आनेवाली बाधाओंका त्याग भी सर्वांगीण होना चाहिये।

यह मिथ्या धारणा त्याग दो कि तुम चाहे भगवान्की शतों पालन न भी करो तो भी भागवती ‘शक्ति’ तुम्हारे लिये, तुम्हारे मांगके अनुसार सब कुछ करनेके लिये बाधित है। अपने समर्पण को सच्चा और संपूर्ण करो तभी तुम्हारे लिये बाकी सब कुछ किया जायगा।

यह मिथ्या और आलस्य-भरी आशा भी त्याग दो कि भागवत ‘शक्ति’ ही तुम्हारे लिये समर्पण भी कर देगी। भगवान् भागवत है, मेरे ‘शक्ति’ के प्रति तुम्हारा समर्पण मांगते हैं, उसे तुमपर लादते नहीं तो केवल



तुम हर पल स्वतंत्र हो, जबतक अटल रूपांतर न हो जाय तबतक चाहे तुम भगवान्‌को स्वीकार करने, उनका त्याग करने और अपने आत्म-दानको वापस ले लेनेके लिये स्वतंत्र हो — बशर्ते कि तुम उसका लोआध्यात्मिक फल भोगनेके लिये भी तैयार हो। तुम्हारा समर्पण गले अपनी इच्छासे और मुक्त भावसे होना चाहिये; वह एक जीवित देनेसत्ताका समर्पण होना चाहिये, निर्जीव कठपुतली या पराधीन यंत्र-मिथका नहीं।

तामसिक निश्चेष्टताको ही सच्चा समर्पण मान लेनेकी भूल हमेशा तुम्हारी हुआ करती है, किंतु तामसिक निश्चेष्टतासे किसी सत्य और कसकशक्त वस्तुका उद्भव नहीं हो सकता। भौतिक प्रकृति अपनी तुम्हारे तामसिक निश्चेष्टताके कारण ही हर अंधकारपूर्ण या अदिव्य प्रभाव-से पीका शिकार बना करती है। 'भागवती शक्ति' की क्रियाके प्रति मिश्रप्रसन्न, सशक्त और सहायक अधीनता चाहिये, 'सत्य' के ज्ञानसे दीप्त केवलानुयायीकी, अंधकार और असत्यसे लड़नेवाले आन्तर 'योद्धा' की अधिऔर भगवान्‌के सच्चे सेवककी आज्ञाकारिता चाहिये।

समर्पण—स्वरूप और महत्व



योगका अर्थ है भगवान्‌से एकता, और यह एकता होती है आत्मोत्सर्गके द्वारा — इसका आधार है अपने-आपको भगवान्‌के हाथोंमें दे देना। आरंभमें तुम साधारण रूपमें अपने-आपको देते हो और समझते हो मानों सदाके लिये तुम्हारा यह काम पूरा हो गया; तुम कहते हो: "मैं भगवान्‌का सेवक हूँ, मेरा जीवन पूर्ण रूपसे भगवान्‌को दिया गया है, मेरे सब प्रयत्न दिव्य जीवनकी प्राप्तिके लिये हैं।" पर यह तो केवल पहली सीढ़ी है; केवल इतना ही पर्याप्त नहीं है। संकल्प-

के बाद भी, तुम्हारे इस निश्चयके बाद भी कि तुम अपने स जीवनको भगवान्‌के अर्पण कर दोगे, तुम्हें इस बातको अपने जीव में प्रत्येक क्षण याद रखना होगा और इसे अपने प्रत्येक व्यो चरितार्थ करना होगा। प्रत्येक पगपर तुम्हें यह अनुभव हो चाहिये कि तुम भगवान्‌के हो; तुमको यह सतत अनुभूति हो चाहिये कि जो कुछ भी तुम सोचते या करते हो, उसमें सर्व भागवत 'चेतना' ही तुम्हारे द्वारा कार्य कर रही है। तुम्हारे पास अब ऐसी कोई चीज न रह जानी चाहिये जिसे तुम अपनी सको; जो कुछ भी तुम्हारे पास आये उसको तुम्हें भगवान्‌के पास से आया हुआ अनुभव करना चाहिये, और उसे उसके मूल स्रो की भेंट कर देना चाहिये। इस अनुभूतिको जब तुम प्राप्त सकोगे तब देखोगे कि अत्यंत सामान्य-से-सामान्य बातें, जिन पर अभीतक तुम बहुत ध्यान नहीं देते थे या जिनकी अभी परवा न करते थे, वे भी अब अकिंचन या तुच्छ नहीं रह गयी हैं; वे अब पूर्ण हो गयी हैं और उन्होंने तुम्हारे सामने सामान्य दृष्टिसे विशाल क्षितिजोंको खोल दिया है।

सामान्य अर्पणको व्योरेवार अर्पणका रूप देनेके लिये तुम्हें करना है। भगवान्‌की उपस्थितिमें ही निरंतर निवास करो; तुम अनुभव करो कि वह उपस्थिति ही तुम्हें परिचालित कर रही और जो कुछ तुम करते हो उसे वही कर रही है। अपनी सम गतिविधिको तुम इसीके प्रति अर्पण करो, केवल प्रत्येक मानस क्रिया, प्रत्येक विचार और भाव ही नहीं, बल्कि अत्यंत साधार और बाह्य क्रियाओंको भी जैसे कि भोजन करना; जब तुम भोजन करो तो तुम्हें यह अनुभव होना चाहिये कि ये भगवान् ही हैं जो तुम्हारे द्वारा भोग लगा रहे हैं। इस प्रकार जब तुम अपनी सम प्रवृत्तियोंको 'एक जीवन' में पिरो लोगे, तो तुम्हारे अन्दर विभाज के स्थानपर अखण्ड एकता स्थापित हो जायगी। तब यह अवस नहीं रहेगी कि तुम्हारी प्रकृतिका एक भाग तो भगवान्‌के अर्प

हो औ
रण
वान्
क्रमश



समर्प
स्वभा
ही श
या वि
है वि
कित
या त
मात्र
इच्छ
अपन
आत
अप्रव
आप
सब
करो
काल
करन
प्रकृति

हो और बाकी भाग अपनी साधारण वृत्तियोंमें पड़े रहें और साधारण चीजोंमें लिप्त रहें; बल्कि तब तुम्हारे संपूर्ण जीवनको भगवान् अपने हाथमें ले लेंगे और तुम्हारी प्रकृतिका संपूर्ण रूपांतर क्रमशः साधित होता रहेगा।

*



समर्पण एक निर्णय है जो अपने जीवनका दायित्व भगवान्‌के हाथोंमें सौंपनेके लिये किया जाता है। इस निर्णयके बिना कुछ भी संभव नहीं। यदि तुम समर्पण नहीं करते तो योगका प्रश्न ही नहीं उठता, बाकी सब चीजें स्वभावतः ही इसके बाद आती हैं, क्योंकि सारी प्रक्रिया समर्पणसे ही शुरू होती है। तुम अपना समर्पण ज्ञानके द्वारा कर सकते हो या फिर भक्तिके द्वारा। तुम्हें एक ऐसा प्रबल अंतर्ज्ञान हो सकता है कि भगवान् ही एकमात्र सत्य हैं और साथ ही एक ऐसा आलोकित विश्वास कि भगवान्‌के बिना तुम काम नहीं चला सकते। या तुम्हें सहज-बोध हो सकता है कि यह पथ ही सुखी होनेका एक मात्र पथ है, पूरी तरह भगवान्‌का बननेकी एक प्रबल आंतरात्मिक इच्छा हो सकती है। तुम कहते हो: “मैं अपना नहीं हूँ,” और अपनी सत्ताका दायित्व परम सत्यपर छोड़ देते हो। इसके बाद आता है आत्मदान: “यह रहा मैं, अच्छे और बुरे, प्रकाशित और अप्रकाशित अनेकविध गुणोंवाला प्राणी। मैं जैसा भी हूँ अपने-आपको तुम्हारे हवाले करता हूँ। मेरे सब ऊँच-नीचके साथ, मेरी सब परस्पर-विरोधी प्रेरणाओं और प्रवृत्तियोंके साथ मुझे स्वीकार करो—मेरे साथ जैसा चाहो करो।” तुम अपने आत्मदानके कालमें अपने-आपको उस केंद्रीय चैत्य संकल्पके चारों ओर संगठित करना शुरू करते हो जिसने पहला निर्णय लिया था। तुम्हें अपनी प्रकृतिके सभी विसंवादी तत्त्वोंमें सामंजस्य स्थापित करना है, उन्हें

एक-एक करके लेना और केंद्रीय सत्ताके साथ एकरूप करना है। तुम एक सहज-स्वाभाविक गतिमें अपने-आपको भगवान्‌को दे सकते हो पर इस एकीकरणके बिना उन्हें अपने-आपको प्रभावकारी ढंगसे दे सकना संभव नहीं। तुम जितने अधिक एकीभूत हो सको, आत्म-दानको चरितार्थ करनेके लिये उतने ही अधिक योग्य हो सकोगे। और जब एक बार आत्म-दान पूर्ण हो जाता है तो आत्म-निवेदनकी बारी आती है: यह चरितार्थताकी सारी प्रक्रियाका मुकुट है, जीनेकी अंतिम सीढ़ी है, इसके बाद कोई कठिनाई शेष नहीं रह जाती, सब आसानीसे चलता है। पर तुम्हें यह नहीं भूलना चाहिये कि तुम एक बारमें ही समग्र भावसे समर्पित नहीं हो सकते। तुम प्रायः ऐसे विश्वासमें तब भरमा जाते हो जब तुम्हारे अन्दर दो-एक दिनके लिये कोई विशेष प्रकारकी तीव्र गति होती है। तुम्हें आशा बन जाती है कि बाकी सब चीजें भी अपने समयसे अपने-आप होने लगेंगी; पर तथ्य यह है कि यदि तुम थोड़े भी आत्मतोषी बन जाते हो तो तुम अपनी उन्नतिको पीछे धकेल देते हो। तुम्हारी सत्ता असंख्य प्रवृत्तियोंसे भरी पड़ी है जो एक-दूसरेसे संघर्ष करती हैं जिन्हें हम लगभग विभिन्न व्यक्तित्व कह सकते हैं। उनमेंसे जब एक अपने-आपको भगवान्‌को देती है तो दूसरी अनेक ऊपर उठ आती हैं और अपनी एकनिष्ठासे इंकार करती हैं। वे चिल्लाती हैं: “हमने अपने-आपको भगवान्‌को नहीं दिया है,” और अपनी स्वतंत्रता तथा चरितार्थताके लिये शोर मचाने लगती हैं। तब तुम उन्हें शांत रहनेका आदेश देते हो और उन्हें सत्य दशति हो। धैर्यके साथ तुम्हें अपनी सारी सत्ताका चक्कर लगाना होता है, कोने-कोनेको छानना होता है, अपने अन्दरके उन विद्रोही तत्त्वोंका मुकाबला करना होता है जो आकस्मिक आक्रमणके सुअवसरकी घातमें रहते हैं। और जब तुम अपनी मानसिक, प्राणिक और शारीरिक प्रकृतिका सारा चक्कर लगा लेते हो, सबको अपने-आपको देनेके लिये भगवान्‌को राजी कर लेते हो, और

इस प्र
तभी त
ही रूप
अज्ञान
प्रकाश
निवेदन
अपने-
तो इस
वत कृ
तब म
और
काफी
व्यक्ति
सकता
ही व
कुंजिये



बिना
की चे
सब कु
गीण,
जाता
तुम्हारे

इस प्रकार पूर्ण एकीकृत आत्म-निवेदन प्राप्त कर लेते हो, केवल तभी तुम अपनी कठिनाइयोंसे छुटकारा पा जाते हो। तब निश्चय ही रूपांतरकी ओर तुम्हारे कदम शानदार होते हैं, क्योंकि तब तुम अज्ञानसे ज्ञानकी ओर नहीं, बल्कि ज्ञानसे ज्ञानकी ओर, प्रकाशसे प्रकाशकी ओर सुखसे सुखकी ओर, बढ़ते हो...। पूर्ण आत्म-निवेदन निःसंदेह सरल चीज नहीं है और यदि इस सारेको तुम्हें अपने-आप ही, अपने ही स्वतंत्र व्यक्तिगत प्रयत्नके द्वारा करना होता तो इसमें अनिश्चित रूपसे लम्बा समय लग जाता। पर जब भागवत कृपा तुम्हारे साथ होती है तो ठीक ऐसा नहीं होता। जब-तब भगवान्की ओरसे जरा-सा दबाव पड़नेपर, कभी इस दिशामें और कभी उस दिशामें जरा-सा वेग मिल जानेपर काम अपेक्षया काफी सरल हो जाता है। निश्चय ही समयकी लम्बाई व्यक्ति-व्यक्तिपर निर्भर करती है, फिर भी इसे बहुत ही छोटा किया जा सकता है यदि तुम सचमुच एक दृढ़ संकल्प कर लो। संकल्प ही वह चीज है जिसकी सर्वाधिक जरूरत है — संकल्प ही सब कुजियोंकी कुंजी है।

*



सच्चा पथ है समर्पण, भगवान्के प्रति पूर्ण, निरपेक्ष, बिना शर्त समर्पण।

यदि तुम अपने-आपको समग्र भावसे और बदलेमें बिना कुछ मांगे भगवान्को दे देते हो, अपनी चेतनाको भगवान्की चेतनामें पूरी तरह निमज्जित कर देते हो तो इससे तुम्हारे सब दुःखोंका अन्त हो जायेगा — परन्तु समर्पण होना चाहिये सर्वांगीण, बिना शर्तके, बिना सौदेके, एकदम पूर्ण, इसमें सभी कुछ आ जाता है — सब कामनाएं, तुम्हारी आवश्यकताएं, तुम्हारी इच्छाएं, तुम्हारी पसन्दगियां, तुम्हारी नापसन्दगियां, तुम्हारी मांगें, तुम्हारे

संकल्प, सभी कुछ, सभी कुछ जो तुम्हारे इस छोटे-से व्यक्तित्वका निर्माण करता है और तब तुम शान्ति पा लोगे और तुम्हारे दुःख-दर्दोंका अन्त हो जायेगा।

पूर्ण समर्पण



भगवान्‌के प्रति पूर्ण आत्म-समर्पणके तीन विशिष्ट ढंग :

(१) अपना सब गर्व तजकर, पूर्ण विनम्रताके साथ उनके चरणोंमें दण्डवत् हो जाना।

(२) अपनी सत्ताको उनके सामने रखना, सिरसे पैरतक अपने शरीरको पूरी तरह खोलना, जैसे कोई पुस्तक खोलता हो, केन्द्रोंको इस प्रकार खोलना कि उनकी गतिविधियां ऐसी पूर्ण सच्चाईके साथ प्रकाशमें लायी जायं जो किसी चीजको छिपा नहीं रहने देती।

(३) उनकी भुजाओंमें आश्रय लेना, प्रेमपणे पूर्ण विश्वासके साथ उनके साथ घुल जाना।

इन तीनों क्रियाओंके साथ तीन सूत्र भी हो सकते हैं या स्थिति के अनुसार इनमेंसे कोई भी एक हो सकता है :

(१) तेरी इच्छा पूर्ण हो, मेरी नहीं।

(२) जो तू चाहे, जो तू चाहे।

(३) मैं हमेशाके लिये तेरा हूँ।

सामान्यतया, जब ये क्रियाएं सच्चे ढंगसे की जाती हैं तो परि-

तात्त्विक दुःख-
नामस्वरूप एक पूर्ण तादात्मता स्थापित हो जाती है और अहंभाव-
का नशा अपने साथ एक उत्कृष्ट आनन्द लाता है।

*

वैशिष्ट्य
उनके
अपने
केन्द्रोंको
के साथ
में।
के साथ
स्थिति
परि-
भगवान् सब कुछ कर सकते हैं, — हृदय और प्रकृति-
को शुद्ध कर सकते हैं, आन्तर चेतनाको जगा सकते
हैं, पर्दोंको हटा सकते हैं, — यदि व्यक्ति विश्वास
और भरोसेके साथ अपने-आपको भगवान्के हाथोंमें सौंप दे और यदि
वह ऐसा एकदम पूरी तरह न भी कर सके, तो भी वह जितना
अधिक करेगा उतनी अधिक उसे आंतरिक सहायता मिलेगी और
पथ-प्रदर्शन प्राप्त होगा तथा अन्तरमें भगवान्की अनुभूति बढ़ती
जायगी। यदि शंकाशील मन अपनी क्रिया कम कर दे और नम्रता
तथा समर्पण-वृत्ति बढ़ती जाय तो यह पूरी तरह संभव होना चाहिये
और तब इसके अतिरिक्त किसी और बल या तपस्याकी जरूरत
नहीं रहती, बस यही पर्याप्त होता है।...

*

भगवान् अपने-आपको उन्हींको देते हैं जो बिना कुछ
बचाये और अपने सब भागों समेत अपने-आपको
भगवान्को अर्पित करते हैं। उन्हींके लिये है स्थिर
शांति, प्रकाश, शक्ति, सुख, स्वतंत्रता, ज्ञानके शिखर और आनन्द-
का पारावार।

सक्रिय समर्पण



साधनाकी प्रारंभिक अवस्थामें — और प्रारंभिकसे मेरा मतलब थोड़े-से भागसे नहीं है — प्रयत्न अपरिहार्य है। समर्पणकी बात निश्चय ही ठीक है, पर समर्पण ऐसी चीज नहीं जो एक दिनमें हो जाय। मनकी अपनी धारणाएं होती हैं और वह उनसे चिपटा रहता है; मनुष्यका प्राण समर्पणका प्रतिरोध करता है, क्योंकि प्रारंभिक अवस्थाओंमें वह जिसे समर्पण कहता है वह एक प्रकारका संदेहपूर्ण मांगोंसे भरा आत्म-दान होता है; भौतिक चेतना पत्थरके समान है और वह जिसे समर्पण कहती है वह अक्सर तामसिकतासे अधिक कुछ नहीं होता। केवल चैत्य पुरुष ही समर्पण करना जानता है और चैत्य पुरुष सामान्यतया प्रारंभमें बहुत अधिक ढका होता है। जब चैत्य पुरुष जाग उठता है तो वह एकाएक सारी सत्ताका सच्चा समर्पण करा सकता है क्योंकि तब शेष कठिनाईके साथ तेजीसे निबटा जा सकता है और वह शीघ्र ही दूर हो जाती है। पर तबतक प्रयत्न अपरिहार्य है या फिर यह तबतक जरूरी होता है जबतक नीचेकी सत्ता में ऊपरसे शक्तिकी बाढ़ आकर साधनाको अपने हाथमें नहीं ले लेती, वह अपने-आप अधिकाधिक कार्य करके व्यक्तिगत प्रयासके लिये कम-से-कम क्षेत्र छोड़ती है — पर उस हालतमें भी, यदि प्रयत्न नहीं, तो कम-से-कम अभीप्सा और जागरूकताकी जरूरत रहती ही है जबतक कि मन, संकल्प, प्राण और शरीरपर भागवत 'शक्ति' का प्रभुत्व पूर्ण नहीं हो जाता।

*


 सक्रिय समर्पण तब होता है जब तुम अपने संकल्पको भागवत 'संकल्प' के साथ जोड़ देते हो, जो भागवत नहीं है उसका त्याग करते हो और जो भागवत है उसे स्वीकृति देते हो। निष्क्रिय समर्पण तब होता है जब प्रत्येक वस्तुको पूरी तरह भगवान्पर छोड़ दिया जाता है — जिसे शायद ही कोई सच्चाईके साथ कर सकता है, क्योंकि तब क्रियात्मक रूप-में तुम भगवान्के प्रति समर्पणके वहाने निम्न प्रकृतिको समर्पण करते हो।

*


 तुम चाहे जिस पथका अनुसरण करो, एकात्मताके क्षणतक वैयक्तिक प्रयत्नकी आवश्यकता बनी ही रहती है। उस क्षण सारे प्रयत्न फटे-पुराने कपड़ेकी तरह तुमसे छूट जाते हैं। तुम दूसरे ही व्यक्ति बन जाते हो; तुम्हारे लिये जो असंभव था वह न केवल संभव हो जाता है, बल्कि परम आवश्यक हो उठता है, तुम और ढंगसे कर ही नहीं सकते। तुम्हें सतर्क और शांत बने रहना चाहिये, आंतरिक स्फुरणाके लिये प्रतीक्षा करनी चाहिये, बाह्य प्रतिक्रियाओंसे प्रेरित होकर कुछ भी न करना चाहिये, ऊपरसे आते प्रकाशद्वारा परिचालित होना चाहिये और कुछ नहीं। न कुछ सोचो, न प्रश्न करो, न पूछो : "मुझे यह करना चाहिये या वह," बल्कि उस आंतर निश्चयतासे जानना, देखना, सुनना, कार्य करना चाहिये, जो न कभी प्रश्न करती है, न संदेह करती है, क्योंकि निश्चय तुम्हारे अन्दरसे नहीं, बल्कि ऊपरसे आता है। हां तो, यह बहुत जल्दी आ सकता है या किसी को शायद देरतक प्रतीक्षा भी करनी पड़ सकती है, यह व्यक्तिकी पहलेकी तैयारीपर तथा अन्य बहुत-सी बातोंपर निर्भर है। तब-तक तुम्हें संकल्प बनाये रखना चाहिये, इसमें अध्यवसायके साथ संकल्प बनाये रखना चाहिये, और सबसे मुख्य बात है कि धैर्य

और साहस कभी न छोड़ना चाहिये। यदि आवश्यक हो तो एक ही चीजको हजार बार दुहराओ यह जानते हुए कि शायद हजारवीं बार परिणाम प्राप्त हो सकता है।

*



प्रारंभमें सब पसन्दगियोंसे मुक्त होना और भागवत 'इच्छा' से जो आता है उसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करना किसी भी मानव प्राणीके लिये संभव नहीं। सबसे पहले जिस चीजकी जरूरत है वह है यह निरंतर विचार कि भगवान् जो भी संकल्प करते हैं—मन भले यह न समझ पाये कि यह कैसे है—वह हमेशा अच्छे-से-अच्छेके लिये होता है। जिन बातोंको मन प्रसन्नतासे स्वीकार नहीं कर सकता उन्हें भी मौन भावके साथ स्वीकार कर ले और ऐसी शांत समता प्राप्त कर ले जो बाहरी घटनाओंके प्रति ऊपरी सतहपर होनेवाली क्षणिक प्रतिक्रियाओंसे न डिगे। एक बार यह दृढ़तासे स्थापित हो जाय, तो बाकी चीजें आ सकती हैं।

*



भगवान् पथ-प्रदर्शन कर सकते हैं, वे हांकते नहीं। "मनुष्य" कहलानेवाले प्रत्येक मनोमय प्राणीको यह आंतरिक स्वतंत्रता दी गयी है कि वह भगवान्के नेतृत्वको स्वीकार करे या अस्वीकार कर दे; वरना कोई सच्चा आत्म-विकास हो ही कैसे सकता है?

*



संयमको हटानेका मतलब होगा प्राणको खुल खेलने-
की छूट दे देना और इसका मतलब होगा सब प्रकार
की शक्तियोंको अन्दर घुसनेकी छूट देना। जब-
तक अतिमानसिक चेतना सबपर, अधिमानसे लेकर नीचेतक सारी
सत्तामें नियंत्रण और प्रवेश नहीं कर लेती तबतक शक्तियोंका
अनिश्चित खेल चलता रहता है और प्रत्येक शक्ति, अपने मूल स्रोत-
में कितनी भी दिव्य क्यों न हो, प्रकाशकी 'शक्तियों' द्वारा प्रयुक्त
की जा सकती है और जब वह मन और प्राणसे गुजर रही हो तब
अंधकारकी 'शक्तियों' द्वारा भी हड़प ली जा सकती है। जागरूकता
विवेक, और नियंत्रणको तबतक नहीं छोड़ा जा सकता जबतक कि
पूर्ण विजय प्राप्त नहीं हो जाती और चेतनाका रूपांतर नहीं हो
जाता।

*



अपनी सत्ताके हठी भागोंको समर्पणके लिये कैसे
मनाया जाय ?

जैसे एक नासमझ बच्चेको समझानेकी कोशिश करते हैं वैसे
उन्हें कल्पना, व्याख्या, प्रतीक आदि सब प्रकारके उपायों से समझानेकी
कोशिश करो। उन्हें सत्ताके दूसरे भागोंके साथ एकता और
समस्वरता स्थापित करनेकी आवश्यकताको समझाओ। उनसे समझ-
दारीके साथ बात करो। उन्हें उनके कार्यों और कार्य-परिणामोंके
प्रति सचेतन बनानेकी कोशिश करो। सबसे-बड़ी बात है धैर्य
रखो, एक ही वस्तुको बार-बार दुहरानेसे थक मत जाओ।

इस कार्यमें क्या मन सहायता दे सकता है ?

हां; यदि मनका एक भाग पूर्णतया आलोकित हो; यदि वह

आंतरात्मिक प्रकाशके प्रति समर्पित हो और उसमें सत्यका सहज बोध हो तो मन बहुत बड़ी सहायता कर सकता है, वह वस्तुओं की सही रूपमें व्याख्या कर सकता है।

*



कठिन? समर्पण दिव्य चरितार्थताका साधन है यह हमारी साधनाका पहला सिद्धांत है और जबतक अंतःकारको या प्राणिक मांग और कामनाको पोसा जात है, पूर्ण समर्पण असंभव है — आत्मनिवेदन अधूरा है। हमने इसे कभी नहीं छिपाया। यह कठिन हो सकता है और है ही; परन्तु यही साधनाका मूल सिद्धांत है। चूंकि यह कठिन है इसलिये जबतक कार्य पूरा न हो जाय तबतक दृढ़ अध्यवसाय और धैर्य साथ इसे करनेकी जरूरत है।

*



जाओगे।

जबतक तुम्हारा कोई भी भाग संसारसे संबंधित रहेगा, संसार तुम्हें दुःख देता रहेगा। तुम केवल तभी मुक्त हो सकोगे जब पूरी तरह भगवान्‌के



परंतु
अर्थ
पवित्र
इसके
अपने
बलिव
स
है, उ
देना
करेगा
नहीं,
को स
के पू
बलिव
होता
रहता
वचार
और
नहीं
जब
तुम
कर

समर्पण और बलिदान



क्या समर्पण और बलिदान एक ही नहीं हैं ?

हमारे योगमें बलिदानके लिये कोई स्थान नहीं है। परंतु सब कुछ इसपर निर्भर है कि तुम “बलिदान” शब्दका क्या अर्थ करते हो। उसके विशुद्ध भावके अनुसार इसका अर्थ है पवित्र उत्सर्ग, भगवान्‌को अर्पणद्वारा पवित्रीकरण। परंतु आजकल इसके अनुसार बलिदान ऐसी वस्तु है जो विनाशके लिये प्रवृत्त है; यह अपने साथ एक अभावात्मक वातावरण लिये हुए है। इस प्रकारका बलिदान यज्ञ नहीं है, यह तो आत्म-वंचना है, आत्म-वध है।...

समर्पणसे हमारा आशय ऐसा नहीं बल्कि स्वतःस्फूर्त आत्म-दानसे है, अपने-आपको पूरी तरह भगवान्‌को, एक उच्चतर चेतनाको, दे देना जिसके तुम एक अंग हो। समर्पण तुम्हारा हास नहीं करेगा, बल्कि तुम्हारी वृद्धि करेगा, वह तुम्हारे व्यक्तित्वको घटायेगा नहीं, न उसे दुर्बल करेगा, न उसका नाश ही करेगा, बल्कि वह उसको सुदृढ़ बनायेगा, उसका उत्कर्ष करेगा। समर्पणका अर्थ है देने-के पूर्ण आनन्दके साथ मुक्त भावसे और पूर्ण रूपसे देना, इसमें बलिदानका कोई भाव नहीं है। यदि तुममें जरा-सा भी ऐसा भाव होता है कि तुम बलिदान कर रहे हो तो फिर वह समर्पण नहीं रहता। क्योंकि इसका तो यह अर्थ हुआ कि तुम अपने-आपको बचाये रखना चाहते हो अथवा यह कि तुम अनिच्छापूर्वक या कष्ट और प्रयासके साथ देनेकी चेष्टा कर रहे हो, तुम्हें देनेका आनन्द नहीं मिलता, शायद तुम्हारे अन्दर देनेका भावतक नहीं होता। जब तुम किसी कामको अपनी सत्तापर दबाव डालकर करते हो तभी तुम यह निश्चयपूर्वक जान लो कि तुम उस कामको गलत तरीकेसे कर रहे हो। सच्चा समर्पण तुम्हें विशाल बनाता है; तुम्हारी

क्षमताकी वृद्धि करता है; वह तुम्हारे गुण और मात्राके परिमाण-प्रवस्थाओं को इतना बढ़ाता है जितना तुम अपने-आप न बढ़ा पाते। गुणविराज प्र और मात्राकी यह नयी वृद्धि पहले जो कुछ तुम प्राप्त कर सकते थे उससे भिन्न प्रकारकी है : तुम किसी दूसरे ही जगत्में प्रवेश करते हो, किसी विशालतामें, जिसमें तुम समर्पण किये बिना न पहुँच पाते। यह तो ऐसे ही है जैसे समुद्रमें जलकी एक बूंद गिरती है; अगर उसने अपना पृथक् अस्तित्व बनाये रखा तो वह मात्र जलकी बूंद रहेगी, इससे अधिक कुछ नहीं, एक छोटी-सी बूंद जो अपने इर्द-गिर्दकी विशालतासे कुचली गयी, क्योंकि उसने समर्पण नहीं किया। परंतु समर्पण कर देनेपर वह उस समुद्रके साथ एक हो जाती है और समग्र समुद्रकी प्रकृति और शक्ति और विशालताका अंग बन जाती है।

- *



समर्पणके विषयमें बहुत-से भ्रान्त विचार फैले हुए हैं। ऐसा लगता है कि अधिकांश समर्पणका अर्थ व्यक्तित्वका विसर्जन समझते हैं; किंतु यह एक दुःख भूल है। कारण, व्यक्तिका प्रयोजन यह है कि 'भागवत चेतना' के एक पहलूको अभिव्यक्त करे, और उसके स्वभावगत धर्मकी अभिव्यक्ति ही वह वस्तु है जो उसके व्यक्तित्वकी रचना करती है। तब, भगवान्की ओर उचित भाव रखनेसे यह व्यक्तित्व उसकी क्षीण और विकृत करनेवाले निम्न प्रकृतिके प्रभावोंसे मुक्त हो जाता है और अधिक शक्तिसंपन्न व्यक्तित्व बन जाता है, वह अपने स्वरूपमें अधिक प्रतिष्ठित और अधिक पूर्ण होता है। व्यक्तित्वका सत्य और उसकी शक्ति ज्यादा उज्ज्वल स्पष्टताके साथ निखर आते हैं, अंधकार और अज्ञान तथा निम्न प्रकृतिकी गन्दगीकी मिश्रित

प्रवस्थामें जितना संभव था उससे बहुत अधिक ययार्थ रूपसे उसका गुणचरित्र प्रत्यक्ष होता है।

*



क्या आत्मदानका अर्थ समर्पण नहीं है ?

बिल्कुल नहीं। समर्पणका कोई विचार किये बिना भी तुम देनेके आनन्दके लिये दे सकते हो। जब तुम अपनेसे अनंत-गुणा ऊंची किसी चीजकी झांकी पाते हो तो उत्साहकी एक तरंगमें, एक प्रेरणासे बशीभूत होकर तुम अपने-आपको दे सकते हो, लेकिन जब प्रतिक्षण जीवनमें उसे उतारनेकी बात होती है, प्रतिक्षण 'उच्चतर-संकल्प' के प्रति अपने-आपको समर्पित किये रखनेकी बात होती है और जब प्रत्येक क्षणका ही मतलब होता है इस प्रकारका समर्पण तो यह अधिक कठिन होता है। लेकिन अगर "आत्म-दान" से तुम्हारा मतलब तुम्हारी सब प्रवृत्तियों और गति-विधियोंके समग्र आत्म-दानसे हो तो यह समर्पणका ही समानार्थक है चाहे आवश्यक रूपसे इसका यह अर्थ हो या नहीं। पर तब यह उत्साहमें आकर की गयी एक क्रिया नहीं रहती, एक ऐसी चीज होती है जिसे प्रत्येक व्योरेमें चरितार्थ करना चाहिये। यह कहा जा सकता है कि उत्साह और जोशमें आकर की गयी कोई भी क्रिया अपेक्षाकृत आसान होती है — वह तुम्हारे अन्दरकी प्रवृत्ति-की तीव्रतापर निर्भर होती है। पर जब अभीप्साको प्रतिक्षण अपने जीवनकी छोटी-से-छोटी बातोंमें चरितार्थ करना होता है, तो उत्साह कुछ मद्धम पड़ जाता है और कठिनाई अनुभव होने लगती है।

कृपा



जब सब खोया-सा प्रतीत होता है तब सब वचन वचाया जा सकता है। जब तुम अपने वैयक्तिक सामर्थ्यमें विश्वास खो बैठते हो तब तुम्हें भागवत 'कृपा' में श्रद्धा रखनी चाहिये।

*



बल, यदि आध्यात्मिक हो तो आध्यात्मिक सिद्धि लिये एक शक्ति है, इससे बड़ी शक्ति है सच्चा और सबसे बड़ी शक्ति है 'कृपा'। मैं अनगिनत बार कह चुका हूँ कि यदि मनुष्य सच्चा है तो बहुत अधिक दे और अनगिनत कठिनाइयोंके बावजूद वह पार हो जायगा। 'भागवत कृपा' के बारेमें मैंने बार-बार कहा है। गीताकी इस पंक्ति न जाने कितनी बार मैंने उद्धृत किया है :

"मैं तुझे सब पापों और बुराइयोंसे मुक्त कर दूंगा, शोक न कर।"

अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः । -- गीता, १८।

*



'भागवत कृपा' में विश्वास रखनेसे सब कठिनाई हल हो जाती है।

*



सुरंगके अन्तमें है 'प्रकाश'। 'कृपा' नित्य और निरंतर विद्यमान है।

*



'कृपा' की विजय सुनिश्चित है, पर शांत सहिष्णुता इसे जल्दी ले आती है।

*



मैं 'भागवत कृपा' के बारेमें कुछ कहना चाहूंगा — क्योंकि ऐसा लगता है कि तुम्हारे ख्यालसे इसे कुछ-कुछ 'भागवत तर्क-बुद्धि' के जैसा होना चाहिये जिसकी कार्य-प्रणाली मानव-बुद्धिसे बहुत भिन्न नहीं है, पर ऐसा है नहीं। और न ही यह विश्व-व्यापी 'भागवत करुणा' है जो अपने पास आनेवाले सब व्यक्तियोंपर समान रूपसे कार्य करती है, सब प्रार्थनाओंको स्वीकार करती है। यह न तो धर्मात्माको पसंद करती है और न पापीका परित्याग ही। 'भागवत कृपा' अत्याचारी (तार सस्के सोल)^१ की मदद करने आयी थी। यह विलासी संत अगस्ताइनके पास आयी थी, अत्यधिक बदनाम जगाई-मघाईके पास आयी थी, बिल्वमंगलके पास आयी थी, और भी बहुतोंके पास आयी थी जिनकी काया-पलट मनुष्यकी नैतिक बुद्धिके अतिपवित्रतावादको सहज ही चोट पहुंचा सकती है; पर यह धर्मात्मा लोगोंके पास भी आ सकती है — उन्हें उनके धर्मात्मापनके रोगसे छुड़ाकर इन चीजोंसे परेकी शुद्धतर चेतनाकी ओर ले जा सकती है। यह एक शक्ति है जो किसी भी नियमसे अधिक महान् है, यहांतक कि

^१बादमें सेंट पाल।

‘विश्व-विधान’ से भी महान् है — क्योंकि सभी आत्म-द्रष्टा ‘विधान’ और ‘कृपा’ में फर्क किया है। फिर भी यह विवेक नहीं है — केवल इतना है कि इसका विवेक अपना ही होता जो वस्तुओं, व्यक्तियों, ठीक समय या ठीक ऋतुको ‘मन’ की किसी अन्य सामान्य ‘शक्ति’ की दृष्टिसे भिन्न किसी और ही दृष्टि से देखता है। व्यक्तिमें ‘कृपा’ की क्रियाके योग्य अवस्था प्रायः घने पदोंके पीछे उन साधनोंद्वारा तैयार की जाती है जो मन पहुंचके परे हैं और जब ‘कृपा’ की अवस्था आती है, तो ‘कृपा’ कार्य करती है। तो ये तीन शक्तियां हैं: (१) ‘विश्व-विद्या’ या कर्म या जो कुछ भी कह लो; (२) ‘भागवत करुणा’ ‘विधान’ के जालमेंसे जितनोंतक पहुंच सकती है उनपर क्रिया करती है और उन्हें अवसर देती है; (३) ‘भागवत कृपा’ जो अधिक अतर्क्य रूपसे कार्य करती है पर साथ ही दूसरोंकी अपेक्षा अधिक निर्वाध होती है। एकमात्र प्रश्न यह है कि क्या जीवनकी समस्याओंके पीछे ऐसा कुछ है जो उच्चतर पुकारको प्रत्युत्तर दे सके और कितनी भी कठिनाईसे क्यों न हो अपनेको उसकी ओर खोल सके, जबतक कि यह ‘भागवत कृपा’ का प्रकाश ग्रहण करने लिये तैयार न हो जाय — और वह कुछ चीज निश्चय ही मानसिक या प्राणिक गति नहीं बल्कि एक आंतरिक चीज होनी चाहिये जिसे अन्दरकी आंख स्पष्ट देख सके। यदि यह हो और सामने आ सक्रिय हो जाय, तो ‘करुणा’ कार्य कर सकती है। यद्यपि ‘कृपा’ की पूर्ण क्रिया फिर भी निर्णय या परिवर्तनकी प्रतीक्षा कर सकती है; क्योंकि यह (निर्णय) भविष्यके लिये स्थगित किया जा सकता है, कारण, सत्ताका कोई भाग या तत्त्व अब भी आड़े आ सकता है, ऐसा कोई तत्त्व जो अभी ग्रहण करनेके लिये तैयार नहीं है।

परंतु किसी भी चीजको अपने और भगवान्‌के बीचमें आने दे क्यों दिया जाय, किसी भी विचार या किसी भी घटनाको? जहाँ तुम अभीप्सा और आनन्दसे भरे होते हो तो किसी चीजकी पर

न करे
अपनी
है, पूर
पहुंचने
सारी
लक्ष्य
भग
कि उन
करना
भगवान्
अपने
भगवान्
इसकी
किया
‘प्रेम’
त्मिक
नियम



पर ल
चिकित्
रूपसे
नैति
और

न करो, किसी भी चीजको महत्त्व न दो सिवाय भगवान्‌के और अपनी अभीप्साके। यदि कोई भगवान्‌को जल्दी प्राप्त करना चाहता है, पूरी तरह और समग्र भावसे पाना चाहता है, तो उनके पास पहुंचनेकी उसकी वृत्ति भी ऐसी होनी चाहिये जो एकदम पूर्ण और सारी सत्ताको तन्मय कर देनेवाली हो, उसीको एक ऐसा अनन्य लक्ष्य बिंदु बना देने वाली हो जिसमें दूसरी कोई चीज दखल न दे।

भगवान्‌के बारेमें मानसिक विचारोंका मूल्य ही क्या है, ये विचार कि उन्हें कैसा होना चाहिये, कैसे करना चाहिये और कैसे नहीं करना चाहिये — ये केवल रास्तेके रोड़े ही हो सकते हैं। केवल भगवान् ही का महत्त्व है। जब तुम्हारी चेतना भगवान्‌को अपने आलिंगनमें भर लेती है तभी तुम जान सकते हो कि भगवान् क्या हैं, उससे पहले नहीं। कृष्ण कृष्ण ही हैं, व्यक्ति इसकी परवाह नहीं करता कि उन्होंने क्या किया और क्या नहीं किया : उन्हें देखना, उनसे मिलना, उनके 'प्रकाश', 'उपस्थिति', 'प्रेम' और 'आनन्द' को अनुभव करना ही महत्त्वपूर्ण है। आध्यात्मिक अभीप्साके लिये ऐसा ही है — आध्यात्मिक जीवनका यही नियम है।

*



'वैश्व प्रकृति' की गतियोंमें 'न्याय' अटल तार्किक निश्चयता है।

बीमारियां वे निश्चयताएं हैं जो भौतिक शरीर-पर लागू होती हैं। इसी अपरिहार्य 'न्याय' को आधार बनाकर चिकित्सक मन ऐसी स्थितियोंको लानेका प्रयत्न करता है जो तार्किक रूपसे अच्छे स्वास्थ्यकी ओर ले जाय।

नैतिक चेतना ठीक इसी प्रकार समाज-शरीरमें कार्य करती है और तपस्या आध्यात्मिक क्षेत्रमें।

एकमात्र 'भागवत कृपा' में ही हस्तक्षेप करनेकी और 'वैश्व न्याय' की गतिको बदलनेकी शक्ति है। अवतारका महान् कार्य है भागवत कृपाको पृथ्वीपर अभिव्यक्त करना। अवतारका शिष्ट होनेका अर्थ है 'भागवत कृपा' का यंत्र बनना। श्रीमां तादात्म्य द्वारा 'भागवत कृपा' को वितरण करनेवाली महान् शक्ति है, जो तादात्म्यद्वारा 'वैश्व न्याय' की पूर्ण रचनाका पूरा-पूरा ज्ञान है।

और उनके माध्यमद्वारा भगवान्‌के प्रति की गयी सच्ची और विश्वासपूर्ण अभीप्साकी प्रत्येक गति प्रत्युत्तरमें 'कृपा' के हस्तक्षेपसे बुला लाती है।

हे प्रभु! तुम्हारे सम्मुख खड़ा होकर कौन पूरी सच्चाईसे कह सकता है : "मैंने कभी कोई गलती नहीं की?" दिनमें कितनी बार हम तेरे कार्यके प्रति गलतियां करते हैं और हमेशा तेरी 'कृपा' उन्हें मिटा देती है।

*



पृथ्वीपर मनुष्योंमें भागवत 'कृपा'की मुक्तिदायिनी क्रियाके दो परस्पर-पूरक पहलू हैं। ये दोनों पहलू समान रूपसे आवश्यक हैं, पर दोनोंको समान महत्त्व नहीं दिया जाता।

महत्त्वपूर्ण निर्विकार शान्ति जो चिन्ता, तनाव और दुःखोंसे मुक्ति दिलाती है।

सक्रिय सर्वशक्तिमान प्रगति जो वेड़ियों, बन्धनों और तमससे मुक्ति दिलाती है।

शान्तिकी सर्वत्र प्रशंसा होती है और उसे दिव्य माना जाता है किन्तु प्रगतिका स्वागत वे ही करते हैं जिनकी अभीप्सा तीव्र और साहसपूर्ण हो।

*



विधाता केवल वही नहीं है जो नौका डूबनेपर मुझे बचा लेता है जब कि अन्य सब डूब जाते हैं। विधाता वह भी है जो मेरी सुरक्षाका अंतिम तख्ता भी मुझसे छीन लेता है और मुझे उस सुनसान सागरमें डुबो देता है जब कि वाकी सब बच जाते हैं।

*



(सर फिलिप सिड्नीने फांसीके तख्तेकी ओर जाते हुए एक अपराधीके बारेमें कहा : “उधर देखो, भागवत कृपाहीन, सर फिलिप सिड्नी जा रहा है।” वह अधिक बुद्धिमान् माना जाता यदि वह कहता : “उधर देखो, भागवत कृपासे सर फिलिप सिड्नी जा रहा है।” —श्रीअरविन्द)

सर फिलिप सिड्नी एक राजनेता और कवि थे, किन्तु जीवनमें सफलता पानेपर भी वे स्वभावके बड़े नम्र थे। कहा जाता है कि एक अपराधीको फांसीके तख्तेकी ओर लिये जाते हुए देखकर उन्होंने यह मशहूर वाक्य कहा था जिसे श्रीअरविन्दने अपने सूत्रमें उद्धृत किया है, जिसका अनुवाद हम यूँ कर सकते हैं : “भागवत ‘कृपा’के बिना यह घटना मेरे साथ भी घट सकती थी।” श्रीअरविन्दने इसपर टीका की थी कि यदि सर फिलिप सिड्नी अधिक बुद्धिमान् होते तो वे कहते : “मेरे साथ भी भगवान्की ‘कृपा’से यही हो सकता था।” कारण, भागवत ‘कृपा’ सदा और सर्वत्र है, प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक घटनाके पीछे है, चाहे उस वस्तु और घटनाके प्रति हमारी प्रतिक्रिया कैसी भी क्यों न हो, चाहे वह हमें भली प्रतीत हो या बुरी, विपत्तिकारक हो या सुखदायी।

और यदि सर फिलिप सिड्नी एक योगी होते तो उन्हें मानव एकताका अनुभव अवश्य होता और उन्हें प्रत्यक्ष रूपमें यह प्रतीति

होती कि वे स्वयं या उनकी सत्ताका एक भाग, फांसीके तख्ते ओर ले जाया जा रहा है और साथ ही उन्होंने यह भी जान लिया होता कि जो कुछ भी होता है वह भगवान्की 'कृपा'से ही होता है।

कृपाको प्राप्त करनेकी शर्तें



'भागवत कृपा' में आस्था बनाये रखो, सब कुछ बावजूद वह तुम्हें तुम्हारे सच्चे लक्ष्यतक — भगवान् — ले जायगी।

*



कोई भी यह नहीं कह सकता : "मेरे लिये कभी आशा नहीं है," क्योंकि 'भागवत कृपा' हमेशा रहती है।

*



'भागवत कृपा' के सामने कौन योग्य है और कौन अयोग्य ?

सब उन एक और अभिन्न माताकी सन्तान हैं। उनमें प्रेम सबपर एक समान बरसता है।

परंतु हर एकको वे उसकी प्रकृति और ग्रहण-सामर्थ्यके अनुसार देती हैं।

*



हमें एकमात्र 'भगवत कृपा' पर ही निर्भर रहना और सभी परिस्थितियोंमें उसकी सहायताके लिये पुकारना सीखना होगा; तब वह लगातार चमत्कार करके दिखलायेगी।

*



आओ, हम अपनी संकल्प-शक्तिको 'भागवत कृपा' की भेंट कर दें; 'कृपा' ही सब कुछ सिद्ध करती है।

*



भगवान्में विश्वासके अनुपातमें ही 'भागवत कृपा' हमारे लिये काम कर सकती और हमें सहायता दे सकती है।

*



'भागवत कृपा' ऐसी चीज नहीं है जिसका लेखा-जोखा हो सके या जो बुद्धिद्वारा निर्धारित किसी शर्तसे बंधी हो, — यद्यपि सामान्यतया कोई पुकार, अभीप्सा और अन्तरात्माकी तीव्रता इसे जगा सकती है। फिर भी कभी-कभी यह ऐसे किसी प्रकट कारणके बिना भी कार्य करती है।

*



यह अनिवार्य नहीं है कि 'कृपा' उस तरीकेसे कार्य करे जिसे मानव मन समझ सके, आमतौरसे यह ऐसा नहीं करती : यह अपने ही "रहस्यमय" तरीकेसे कार्य

करती है। पहले-पहल सामान्यतया यह पदोंके पीछेसे का
करती है, वस्तुओंको तैयार करती है, प्रकट नहीं होती। बाद
वह प्रकट भी हो सकती है, पर साधक ठीक-ठीक समझ नहीं पाता
कि क्या हो रहा है; अन्तमें, जब वह इसके योग्य हो जाता है तो
वह अनुभव करता है और साथ ही समझता भी है, या कम-से-
कम समझना शुरू कर देता है। कुछ लोग शुरूसे ही या बहुत
जल्दी ही अनुभव करने और समझने लग जाते हैं; पर साधारणतः
ऐसा नहीं होता।

*



‘कृपा’ हमें कभी-कभी वह फल भी दे देती है जिसके
हम अधिकारी न हों, किंतु हम ‘कृपा’ की मांग
हक और विशेषाधिकारके रूपमें नहीं कर सकते—
क्योंकि तब वह ‘कृपा’ ही नहीं रहेगी। जैसा कि तुमने देखा है
हम दावा नहीं कर सकते कि हमारे चिल्लानेके साथ ही उता
आना चाहिये। इसके अतिरिक्त, मैंने प्रायः ही देखा है कि ‘कृपा’
के हस्तक्षेपसे काफी पहलेसे एक लंबी, अलक्षित तैयारी चल रही
होती है, और जब उसका हस्तक्षेप होता है उसके बाद भी व्यक्ति
को, जो उसने पाया है, उसे बनाये रखने एवं विकसित करनेके लिये
काफी कुछ करना पड़ता है—जैसा कि अन्य सब बातोंमें होता है।
जबतक कि पूर्ण सिद्धि प्राप्त नहीं होती। उसके बाद निश्चय ही
प्रयास समाप्त हो जाता है और व्यक्ति एक सुनिश्चित प्राप्तिके
पहुंच चुकता है। सो किसी-न-किसी प्रकारकी तपस्यासे बचा नहीं
जा सकता।

सोसायटी समाचार

२९-३० मार्चको गुजरातके सभी श्रीअरविंद केंद्रोंका सम्मेलन कपड़वणजमें हुआ। सम्मेलनमें गुजरातके केंद्रोंके कार्यमें सहयोग स्थापित करनेके लिये ११ लोगोंकी एक समिति बनायी गयी। निश्चय हुआ कि पांडिचेरीमें श्रीअरविदाश्रमके गुजराती अतिथियोंको दृष्टिमें रखते हुए एक 'गुजरात भवन' का निर्माण किया जाय। इस कामके लिये पांच आदमियोंकी समिति बनायी गयी है। इस अवसरपर सर्वश्री अनिरुद्ध स्मार्त, दिलावर सिंह और अम्बाप्रेमीके शिक्षाप्रद भाषण हुए।

'श्रीअरविंद अध्ययन-केंद्र'के डा. थानकीने अहमदाबादकी कई शिक्षण संस्थाओंमें माताजी, श्रीअरविंद और उनकी शिक्षा-पद्धतिके बारेमें भाषण दिये। कई स्थानोंपर चित्रोंकी प्रदर्शनी की गयी।

मुनीराबाद (कर्णाटक) में 'फ्रेण्ड्स आफ ओरोवील ग्रुप' ने १२ और १३ अप्रैलको अपना अधिवेशन किया जिसमें सर्वश्री महेश्वर, छोटे नारायण शर्मा, चेल्लवसप्पा, सबनीस आदिके भाषण हुए।

वार्षिक अधिवेशन १९८०

श्रीअरविंद सोसायटीका वार्षिक अधिवेशन पांडिचेरीमें १३-१४ अगस्तको होगा। १३ तारीखको सोसायटीके पदाधिकारियोंकी बैठक होगी और १४ को आम सभा होगी जिसमें सभी सदस्य भाग ले सकते हैं। १२ को समितियोंकी बैठकें होंगी।

१० और ११ अगस्तको 'कार्यकर्ताओंका शिविर' होगा। जो लोग कहीं भी माताजी और श्रीअरविंदका काम कर रहे हैं या करनेके इच्छुक हैं उन सबको निमंत्रण है।

रेलवेके नियमोंके अनुसार जिन लोगोंकी गिनती १ अगस्त १९८०

को सोसायटीके सदस्योंमें होगी उन सबको पांडिचेरी आनेका कंसेशन मिल सकेगा। इसमें एक तरफके किरायेमें दोनों तरफकी यात्रा हो सकती है। सदस्य अपने साथ अपनी पत्नी और २१ वर्षसे कम उम्रके बच्चोंको भी ला सकते हैं।

जो सदस्य इस अधिवेशनमें भाग लेना चाहें वे प्रतिनिध फार्म भरकर सोसायटीके दफ्तरमें भेज दें। फार्म भरनेमें कोई मूल न रह जाय, इसका ख्याल रखें। आपका फार्म आये बिना यहांसे कंसेशन फार्म न दिया जा सकेगा। इस सूचनाके अंतमें फार्म दिया जा रहा है, उसकी नकल करके खानापूरी करके भेज दें। हमारी अतिथिशालाओंमें स्थान कम ही है। बहुत-से लोगोंके लिये हमें बाहर व्यवस्था करनी होगी। बाहर व्यवस्था करनेके लिये हमें होटलोंको पेशगी पैसा देना पड़ता है। अगर आप डार्मिटरी (सिर्फ सोनेकी जगह) में जगह चाहें तो १० रुपये तथा और किसी तरहकी व्यवस्थाके लिये २० रुपये पेशगी धनादेश, ट्राफ्ट या चेकद्वारा भेज दें। पांडिचेरीसे बाहरके बैंकका चेक स्वीकृत न होगा। चेक-सेक्रेटरी, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी ६०५००२ के नाम भेजे जाएं। अगर आप ४ अगस्तसे पहले न आनेकी सूचना दे सकें तो पेशगी पैसा वापिस हो सकता है। डार्मिटरीमें एक व्यक्तिका किराया ४ रुपया रोज होगा, एक आदमीवाले कमरेका १० से २५ रुपया रोज और दो आदमियोंके कमरेका १५ से ४० तक। कमरे मिलना बहुत मुश्किल है, इसलिये हम विश्वास नहीं दिला सकते कि आप जैसा स्थान चाहेंगे वैसा मिल ही जायगा। इस विषयका पत्र-व्यवहार ऐकोमोडेशन सेक्रेटरी, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२ से करें।

कर्ममें तु
नहीं।

KO

कर्ममें तुम्हारा आदर्श होना चाहिये पूर्णता, उससे कम कुछ भी नहीं। तब निश्चय ही तुम भगवान्‌के सच्चे यंत्र बन जाओगे।

— श्रीमाताजी



Space donated by

KOOVERJI DEVSHI & CO., PVT. LTD.

**FIREX LEADS TO SAFETY;
SAFETY LEADS TO PROSPERITY.**

जो जीवन लक्ष्यहीन होता है वह सुखहीन भी होता है।

तुम्हारा लक्ष्य होना चाहिये उच्च और विशाल, उदार और उन्मुख
और फिर तुम्हारा जीवन तुम्हारे लिये और दूसरोंके लिये
बहुमूल्य हो जायगा।

— श्री



सहारनपुर सर्विस स्टेशन

पेट्रोल पम्प, देहरादून रोड

सहारनपुर

सदस्य स

सदस्यका

पता :

पिन :

मै सं

भाग लेन

मेरे पतेप

कमके व

१.

२.

३.

४.

मेरी

जो फार्म

तारीख

वार्षिक अधिवेशन १९८०

श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी - ६०५००२

प्रतिनिधि फार्म

सदस्य संख्या : कबसे कबतक
सदस्यका पूरा नाम :
पता :
पिन : प्रदेश :

मैं सोसायटीका सदस्य हूँ और अगस्त १९८० के अधिवेशनमें भाग लेना चाहता हूँ। कृपया मेरे लिये सं. . . रेलवे कंसेशन फार्म मेरे पतेपर भेज दें। इनमें मेरी पत्नी / पति और / या २१ वर्षसे कमके बच्चे हैं।

नाम	संबन्ध	उम्र
१.		
२.		
३.		
४.		

मेरी वार्षिक आमदनी १८०० रुपये मासिकसे अधिक नहीं है। जो फार्म काममें न आयेंगे उन्हें १० अगस्तसे पहले लौटा दूंगा।

तारीख

सदस्यके हस्ताक्षर

वार्षिक अधिवेशन १९८०

रहनेकी व्यवस्थाके लिये आवेदन-पत्र

ऐकोमोडेशन सेक्रेटरी,
श्रीअरविंद सोसायटी,
पांडिचेरी - ६०५००२

महोदय,

मेरे / हमारे लिये (तारीख) से (तारीख) तक
लोगोंके रहनेकी व्यवस्था कर दें। हम अगस्तकी (तारीख)
को पांडिचेरी पहुंच रहे हैं।

किस प्रकारका स्थान चाहिये : डार्मिटरी/एकका कमरा/दोका कमरा
परिवारका कमरा। अगर मेरे कार्यक्रममें कुछ हेर-फेर हुआ तो
४ अगस्तसे पहले सूचना दूंगा।

पेशगी रु. तारीख को चेक / धनादेश / ड्राफ्टसे भेज
रहा हूँ।

टिप्पणी (यदि हो)

.....
तारीख

.....
हस्ताक्षर

सदस्यता संख्या

कबसे कबतक

नाम :

पता :





उद्धुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

अखिल भारतीय पत्रिका

अग्निशिखा

भीमरविंद सोसायटीकी मासिक पत्रिका

जुलाई १९८०

वर्ष १०, अंक १२, पूर्णांक १२०

विषय-सूची

कृपाकी प्राप्ति कावेणी बनें
व्यवहार और आध्यात्मिकता
समाजीके साथ पत्र-व्यवहार
प्रकाशीने कहा :

भारत, भय, धृणा, लोभ, स्वाधी साधक, मृत्युके
आद जीवन, झीकाना, धन, सत्य और प्रेम, पुस्तक
पढ़ना, श्रद्धा, दीक्षासे पहले, काम, कुछ पीराणिक
अने, बड़ा दिन, प्रतीक, हास्य, क्रोध, प्रगति, बंजा-
कली, मशीनें, एक गाथा

आपकी क्या करें?

आपकी क्या करें?

अनुपम

आवरण

समाज और छपाईका खर्च बेतहाशा बढ़ गया है। हम पिछले
समाजके चंद बढानेके लिये बाधित हो गये हैं। अब 'पुरोध' का
वार्षिक चंदा १०.०० और 'अग्निशिखा'का ८.०० हो गया है।
समाजके सदस्यताके लिये 'पुरोध'के १७५.०० और 'अग्निशिखा'
१५५.०० ही रहेंगे। जो अधिक देकर पत्रिकाओंकी सहायता
कर सकते हैं अवश्य करें।

पत्र, चैक, डापड, आदि, भेजनेका पता :

संपादक अग्निशिखा, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

संपादक : रवींद्र

प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गंगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-६०५००२

कृपाको प्राप्त करनेकी शर्तें



बाहरके मित्रोंने बहुत बार मुझसे यह प्रश्न पूछा है :
 “जब हम आजीविका कमानेके लिये बाधित हों तो क्या
 ईमानदारीके सामान्य नियमोंको मान लेना काफी है या
 हमें ज्यादा सख्त होना चाहिये ?”

उ० — यह इसपर निर्भर है कि तुम्हारे मित्रने जीवनके प्रति क्या
 मनोभाव अपनाया है। अगर वह साधक बनना चाहता है तो यह अनि-
 वार्य है कि साधारण नैतिकताके नियम उसके लिये कोई मूल्य नहीं
 रखते। और अगर वह एक साधारण आदमी है और साधारण
 जीवन बिताता है तो यह शुद्ध रूपसे व्यावहारिक प्रश्न है, है न ?
 सारी तकलीफसे बचनेके लिये, उसे, वह जिस देशमें रहता है उसके
 कानूनके अनुसार चलना चाहिये ! लेकिन ये सारी चीजें जो साधा-
 रण जीवनमें बहुत सापेक्ष मूल्य रखती हैं, जिनपर एक हदतक ढील
 दी जा सकती है, वे उसी क्षण बदल जाती हैं जब आदमी योग
 करनेका और दिव्य जीवनमें प्रवेश करनेका निश्चय करता है। तब
 सभी मूल्य एकदम बदल जाते हैं; साधारण जीवनमें जो ईमानदारी
 है वह तुम्हारे लिये ईमानदारी बिल्कुल नहीं रह जाती। इसके
 अतिरिक्त, मूल्योंका ऐसा उलट फेर हो जाता है कि फिर तुम उसी
 साधारण भाषाका उपयोग भी नहीं कर सकते। अगर आदमी
 अपने-आपको दिव्य जीवनके लिये निवेदित करना चाहता है तो यह
 सच्चे रूपमें करना चाहिये, यानी, वह अपने-आपको पूरी तरह दे दे,
 अपने निजी हितके लिये कुछ भी न करे, जिस दिव्य शक्तिके हाथों
 आत्म-समर्पण कर रहा है उसीपर पूरी तरहसे आश्रित रहे। हर
 चीज पूरी तरह बदल जाती है, है न ? — हर चीज, हर चीज,
 यह विपर्यय है।

*

इसका मतलब यह नहीं है कि व्यक्ति अपने जीवनकी परिस्थितियोंसे निकल आनेके लिये बाधित है : आंतरिक मनोमा पुरी तरह बदलना चाहिये। व्यक्ति जो करनेका अभ्यस्त है व करता रह सकता है, लेकिन उसे एकदम अलग मनोभावसे में यह नहीं कहती कि योग करनेके लिये जीवनका सब कुछ छो कर, निश्चित रूपसे एकांतमें या आश्रममें चले जाना चाहिये। यह तो ठीक है ही कि सांसारिक परिस्थितियोंमें रहते हुए, संसा योग करना ज्यादा कठिन है, लेकिन वह ज्यादा पूर्ण भी है।

*



प्र० — अगर किसीने बेईमानीसे बहुत-सा धन कमा है तो क्या उसमेंसे कुछ धन भगवान्‌के लिये मांगा सकता है ?

उ० — श्रीअरविदने इस प्रश्नका उत्तर दे दिया है। वे कहते कि धन अपने-आपमें एक अव्यक्तिक शक्ति है। तुम किस धन जुटाते हो इसका सिर्फ तुम्हारे साथ ही संबन्ध है। तुम्हें बहुत हानि हो सकती है, वह दूसरोंको भी हानि पहुंचा है, लेकिन इससे धनकी प्रकृति किसी तरह नहीं बदलती, वह कुल अव्यक्तिक शक्ति है। धनका कोई रंग नहीं होता, कोई नहीं होता, उसकी कोई मनोवैज्ञानिक चेतना नहीं होती। एक शक्ति है। यह तो ऐसी ही बात है जैसे कहा जाय कि ईमानदार आदमीके उच्छ्वाससे एक दुष्टके उच्छ्वासकी हवा दूषित होती है — मैं नहीं मानती। मेरा ख्याल है कि परि एक ही होता है। व्यक्ति व्यावहारिक कारणोंसे चोरीका लेनेसे इनकार कर सकता है, लेकिन यह पूरी तरह व्यावहारिक कारणसे होगा, यह किन्हीं दिव्य कारणोंसे नहीं होगा। यह दम मानव विचार है। आदमी व्यावहारिक कारणोंसे कह

जुलाई १९८०

है, क्योंकि उसमें मानव चेतना है : "नहीं, तुमने जिस तरीकेसे यह धन प्राप्त किया है वह घृणास्पद है। मैं ऐसा धन भगवान् को अर्पण नहीं करना चाहता।" लेकिन अगर तुम ऐसे व्यक्तिको लो (बुरे-से-बुरा मान लो) जिसने हत्या की है और हत्यासे धन प्राप्त किया है। अगर वह अचानक धर्म-संकोच और पश्चात्तापसे भर जाय और अपने-आपसे कहे : "मुझे इस धनसे बस, एक ही काम करना है कि इसे कहीं ऐसी जगह दे दूं जहां इसका अच्छी-से-अच्छी चीजके लिये व अधिक-से-अधिक अव्यक्तिक रूपमें उपयोग हो सके," तो मुझे लगता है कि अपने ही संतोषके लिये उपयोग करनेकी अपेक्षा यह प्रवृत्ति ज्यादा अच्छी है। मैंने कहा कि बुरेसे तरीकों प्राप्त धन लेनेसे इनकार करनेके कारण शुद्ध रूपसे व्यावहारिक हो सकते हैं, लेकिन ज्यादा गहरे कारण भी हो सकते हैं जो (मैं नैतिक मांगा नहीं कहना चाहती) आध्यात्मिक प्रकारके हों, तपस्याकी दृष्टिसे हों। व्यक्ति किसीसे कह सकता है : "नहीं, सचमुच तुम इस संपदासे पुण्य लाभ नहीं कर सकते जिसे तुमने इस भयानक रीतिसे प्राप्त किया है। तुम यह कर सकते हो कि इसे वापिस कर दो।" व्यक्ति यह अनुभव कर सकता है कि यह धन यूं ही किसी और काममें लगा देनेकी अपेक्षा उसे वापिस कर देना प्रगति करनेमें ज्यादा सहायक होगा। व्यक्ति चीजोंको इस दृष्टिसे देख सकता है, इस-के लिये नियम नहीं बनाये जा सकते। मैं यह कहते कभी नहीं शकती कि नियम बनाना असंभव है। प्रत्येक मामलेमें अलग बात होगी। लेकिन तुम्हें यह नहीं सोचना चाहिये कि धन प्रभावित होता है। एक पार्थिव शक्तिके नाते धन प्राप्त करनेके तरी-कोसे प्रभावित नहीं होता। धन वह-का-वही रहता है। तुम्हारा मोट वही रहता है, तुम्हारा सोनेका टुकड़ा वही रहता है और अपनी शक्ति लिये होता है इसलिये शक्ति भी वही रहती है। यह स्पष्ट है कि उससे हानि उसी व्यक्तिकी होती है जिसने गलत चीज की है। तब यह प्रश्न रहता है कि तुम्हारा वेईमान आदमी मनकी

किस अवस्थामें, किन कारणोंसे अपना धन किसी ऐसे कामके लिए देना चाहता है जिसे वह भगवान्‌का काम समझता है। क्या यह सुरक्षाका उपाय है? अथवा दुनियादारी है या फिर वह अपना हृदयको शांत रखना चाहता है? स्पष्ट है कि यह बहुत अच्छा उद्देश्य नहीं है और इसे प्रोत्साहन नहीं दिया जा सकता। लेकिन अगर उसने जो किया है उसके लिये एक प्रकारका खेद और पश्चात्ताप है और उसे लगता है कि उसने जो कुछ गलत तरीकेसे प्राप्त किया है उससे अपने-आपको पूरी तरह वंचित करके जहांतक हो सके उस सर्वसाधारणके भलेके लिये काममें लगाया जाय, तो इस बात विरुद्ध कहनेके लिये कुछ नहीं रहता। इसका एक सामान्य रूप में निर्णय नहीं किया जा सकता — यह हर मामलेपर निर्भर है। हां, लेकिन अगर मैंने तुम्हारी बात ठीक तरह समझी है, अगर व्यक्तिको मालूम हो कि अमुक आदमीने अकथ्य उपायसे धन कमाया है, तो स्पष्ट है कि उसके पास जाकर किसी भागवत कार्यके लिये पैसा मांगना अच्छा नहीं होगा क्योंकि यह उसके धन कमाने के तरीकेको फिरसे प्रतिष्ठा देनेके जैसा होगा। इसके लिये मांग नहीं जा सकता, यह असंभव है। अगर कोई सहज भावसे, कि कारणवश देता है तो उसे लेनेसे इनकार करनेका कोई कारण नहीं लेकिन उसके पास जाकर धन मांगना असंभव है क्योंकि यह मांग उसके धन कमानेके तरीकेको वैध या प्रामाणिक ठहरानेके जैसा होगा। इससे बहुत फर्क पड़ता है। और साधारणतः, ऐसे मामलों में जो लोग दुर्जनोसे पैसा मांगने जाते हैं वे डराने-धमकाने के उपायोंका उपयोग करते हैं: वे उन्हें डराते हैं — शारीरिक तौर पर नहीं, बल्कि उनके भावी जीवनके बारेमें, उन्हें जो हो सके है उसके बारेमें डर दिखाते हैं। यह बहुत अच्छा नहीं है। ऐसे उपाय हैं जिनका उपयोग नहीं करना चाहिये।



कमी ड
तक 'प्र
जाय।



क्षमता
को औ
करता
तुम्हारी
कुछ क
करती
संसारक
और स

व्यापार और आध्यात्मिकता

जितना हो सके चंचल और अधीर होनेसे बचो, क्योंकि स्थिरता और शांतिमें ही 'भागवत कृपा' की शक्तियां अधिकतम कार्य करती हैं।

*

सबसे अच्छा तरीका यह है कि 'भागवत कृपा' को अपने अन्दर कार्य करने दिया जाय, इसका कभी प्रतिरोध न किया जाये, कभी कृतघ्न न हुआ जाये, कभी इससे मुंह न मोड़ा जाये — बल्कि सदा ही लक्ष्य प्राप्त होने-तक 'प्रकाश', 'शांति', 'एकता' और 'आनन्द' का अनुसरण किया जाय।

*

'भागवत कृपा' में तुम्हें जो श्रद्धा एवं विश्वास है, सब परिस्थितियोंमें, जीवनके सब बिन्दुओंपर, प्रत्येक क्षण उसकी 'क्रिया' को देखनेकी तुममें कितनी भी क्षमता क्यों न हो, फिर भी उसकी 'क्रिया' की अद्भुत अपरिमितता-को और जिस सूक्ष्मता और यथार्थतासे यह कार्य अपने-आपको सिद्ध करता है उसे समझनेमें तुम कभी सफल नहीं होओगे। यह बात तुम्हारी पकड़में कभी नहीं आ सकती कि 'कृपा' किस हदतक सब कुछ करती है, सबके पीछे है, सब व्यवस्था करती है, सबका निर्देशन करती है ताकि दिव्य चरितार्थताकी ओर हमारी प्रगतिपूर्ण यात्रा संसारकी वर्तमान अवस्थाओंमें यथासंभव अधिक-से-अधिक द्रुत, पूर्ण और समग्र हो सके।

ज्यों ही तुम 'कृपा' के संपर्कमें आते हो, तुम देखते हो कि का
में एक भी ऐसा क्षण नहीं, देशमें एक भी ऐसा बिंदु नहीं जो तुम
अत्यंत उज्ज्वल रूपमें 'कृपा' के सतत कार्यको, 'कृपा' के सतत ह
क्षेपको न दिखाता हो।

एक बार जब तुमने यह देख लिया तो तुम महसूस करते हो कि
व्यक्ति कभी अपनी उच्चतम अवस्थामें नहीं हो सकता, क्योंकि (ज
पर रहनेके लिये) तुम्हें कभी इस कृपाको भुलाना न होगा, क
भय, चिंता, पश्चात्ताप, जुगुप्सा यहांतक कि वेदनाको पास न फटक
देना होगा। अगर तुम 'कृपा' के साथ एक हो पाओ, अगर उ
हर जगह देख पाओ तो तुम एक आनन्दातिरेकमें, सर्वशक्ति
असीम प्रसन्नतामें जीवन बिताना शुरू कर सकोगे।

और वह 'भागवत कार्य' के साथ अधिक-से-अधिक संभव सहयोग
होगा।

माताजीके साथ पत्र-व्यवहार

क्या नींदके समय अवचेतना चीजोंको अंकित करती जाती है?

अधिकतर लोगोंमें तो दिनमें अंकित या पहले कभी अवचेतना
अंकित की गयी चीजें फिरसे सक्रिय हो जाती हैं और उनके स्वप्न
को रूप देती हैं।

हमें आप जो कुछ देती हैं उसे कैसे सुरक्षित रखा जाय?

वह चला नहीं जाता, अवचेतनामें प्रवेश करता है और वहां ब
करता रहता है।

जुलाई १९८०

लेकिन उसके वारेमें सचेतन होनेके लिये तुम्हें अपने अंदर अवचेतनाका क्षेत्र कम करना और चेतनाको बढ़ाना चाहिये।

३.११.६८

अवचेतनाका क्षेत्र कम करनेके लिये हमें क्या करना चाहिये ?

घरतीपर जीवनका उद्देश्य ही है चेतनामें विकसित होना। उत्तरोत्तर जीवनोके द्वारा अवचेतना धीरे-धीरे घटती जाती है।

योगके द्वारा और अपने अंदर जीवनमें भगवान्को पानेके प्रयास-द्वारा यह काम काफी तेज हो जाता है और कुछ वर्षोंमें भी पूरा हो सकता है।

मनके तीन पाशोंका क्या मतलब है ?

पाशका मतलब है मनके सीमा-बंधन और ये तीन हैं : भौतिक मन, प्राणिक मन, मानसिक मन।

९.११.६८

भगवान् कृष्णकी कृपासे अर्जुनने पलक झपकाते विराट् पुरुषका दर्शन कर लिया। कैसे अद्भुत थे ये गुरु-शिष्य !

यह जरूरी नहीं है कि द्रुत गति श्रेष्ठताका लक्षण हो। "तात्कालिक परिवर्तन" बहुधा अनेक जीवनोकी तैयारीका परिणाम होते हैं।

१७.११.६८

माताजी, सुझे लगता है कि जब मनुष्य भगवान्को नहीं स्वीकारता तो बहुधा इसका कारण अज्ञान होता है, दुष्टता नहीं।

८

अग्निशिखा ज्वालाई

निश्चय ही यह अज्ञान और अज्ञातके भयके कारण होता है। सचमुच केवल असुर और कुछ महान् विरोधी सत्ताएं ही भगवान् पूर्ण क जानते हुए भी उन्हें अस्वीकार करती या उनका विरोध करती है। रक्षा घे ११.११

माताजी, मुझे लगता है कि आह्वान करनेवाली ज्वाला ओ "जि उत्तर देनेवाली ज्वाला, दोनों एक ही हैं। नहीं हो

तत्त्वतः दोनों एक ही हैं, लेकिन उत्तरकी पूर्णता बहुत हदत मान पुकारकी तीव्रतापर निर्भर करती है। उत्तर हमेशा हमारी ग्रहण मानव शक्तिसे बहुत बढ़कर होता है। में हर

२५.११.६८

माताजी, क्या हम यह कह सकते हैं कि पूर्ण ग्रहणशीलता भगवान् के साथ सतत ऐक्यके साथ ही आती है? सच भगवान् ३.१२.१

अगर पूर्ण ग्रहणशीलतासे हमारा मतलब हो ऐसी ग्रहणशीलता जो केवल दिव्य प्रभावको ही ग्रहण करती है, और किसीको नहीं तो यह निश्चित है कि वह साथ-ही-साथ पूर्ण शुद्धि भी है। क्या

यही वह चीज है जिसके लिये हमें प्रयास करना चाहिये। अहं

२७.११.६८

जो नरकमेंसे नहीं गुजरता है वह स्वर्गमें नहीं पहुंच सकता। काम पु लेकिन, माताजी, जिस आत्माको भगवान् चुन लेते हैं, क्या वह और उन्मूलन ७.११.१ को अपेक्षा भिन्न तरीकेसे नरकमेंसे नहीं गुजरती? मनु का वि

इस उद्धरणका मतलब है कि दिव्य क्षेत्रोंतक पहुंचनेके लिये तुम घरतीपर प्राण-लोकमेंसे गुजरना पड़ता है जो अपने कुछ भागों 2

नूलाई १९८०

सचमुच नरकके जैसा है। लेकिन जिन लोगोंने भगवान्को सम-
र्पण कर दिया और जिन्हें भगवान्ने अपना लिया उन्हें भागवत
रक्षा घेरे रहती है और उनके लिये मार्ग कठिन नहीं होता।

१९.११.६८

“जिसे भगवान् रास्ता दिखाते हैं उसकी असफलताएं असफलता
नहीं होतीं” — क्योंकि वह भी लीलाका भाग होती है?

मानव मन ही सफलता और असफलताकी धारणा बनाता है।
मानव मन एक चीज चाहता है, दूसरी नहीं। भगवान्की योजना-
में हर चीजका अपना स्थान और महत्त्व है। इसलिये सफलता-
का महत्त्व नहीं होता। महत्त्व इस बातका है कि तुम भागवत
इच्छाके विनीत और हो सके तो सचेतन यंत्र बनो।

सचमुच महत्त्वपूर्ण चीज है वह करना और वह बनना जो
भगवान् चाहते हैं।

३.१२.६८

क्या अहंकार अपने उन्मूलनको स्वीकार नहीं कर सकता?

अहंकारका निर्माण हुआ था व्यक्तित्व-निर्माणके लिये। जब यह
काम पूरा हो जाय तो यह असाधारण बात नहीं कि अहंकार अपने
उन्मूलनके लिये राजी हो जाय।

७.११.६८

मनुष्यको अधिकार जमानेमें जो सुख मिलता है वह किसी चीज-
का विकृत रूप है?

हर सुख अहंकारमय सीमा-बन्धनद्वारा आनन्दका विकृत रूप और आनन्द ही वैश्व अभिव्यक्तिका उद्देश्य है।

११.१२.६८

“जब तुम खाते हो तो तुम्हें सचेतन होना चाहिये कि तुम जो भोजन अपने अंदर विराजमान दिव्य सत्ताको दे रहे हो...” जब मैं यह मनोभाव अपनाता हूं तो भोजनका स्वाद ज्यादा अच्छा लगता है और वातावरण शांत हो जाता है।

दिव्य सत्ता हमेशा उपस्थित रहती है, हम चाहे कुछ भी करने न करते हों। हम अज्ञान, अवहेलना या अन्यमनस्कताके कारण उसे अनुभव नहीं करते। लेकिन जब कभी हम ध्यान दें और एकाग्र हों तो हमें सभी चीजोंमें एक अद्भुत रूपांतरका भान होता है।

१३.१२.६८

(‘बुलेटिन’ से साभार)

माताजीने कहा

श्रीअरविंद लोगोंके साथ बहुत कम मिलते थे परंतु माताजी सबसे शामतक लोगोंसे मिलती ही रहती थीं। कभी लोग प्रणाम लिये आ रहे थे — इसमें तीन-चार घंटे लग जाना तो मामूली बात थी —, कभी भिन्न-भिन्न विभागोंके अध्यक्ष अपने-अपने काम संबन्धमें सूचनाएं देने और परामर्श लेने आते थे और कभी विशेष बातचीतके लिये लोग अलग समय पाते थे।

एक समय तो ऐसा था कि माताजीका सवेरा तीन-साढ़े ती

जुलाई १९८०

११

बजे हो जाता था और रातका भोजन होते-होते एक-डेढ़ बज जाता था, लेकिन मजाल है कभी किसीको यह लगे कि माताजी उसकी बातमें रस नहीं ले रहीं। समस्याएं भी कैसी-कैसी आती थीं! एक विभागाध्यक्ष आर्थिक कठिनाईकी बात करके गये और उनके बाद ही एक अध्यापक अपने विद्यार्थीके साथ मौजूद। क्यों? दोनों-में दूधके गुण-दोषपर बहस हो रही थी, वे माताजीका फैसला चाहते थे।

कोई भवन-निर्माणकी समस्या लिये खड़ा है तो कोई किसी कुत्ते या मुरगीकी बीमारीका समाचार देने आया है। किसीके बाप बीमार है, वह घर जाना चाहता है; किसीका गणितमें मन नहीं लगता, वह छोड़ देना चाहता है। और कभी तो छोटे-छोटे बच्चोंकी छोटी-छोटी समस्याएं ही बहुत समय खा जातीं। एक बार तो किसी विभागाध्यक्षने उलाहना दिया: "आप बच्चोंकी समस्याएं सुलझाती रहती हैं और इधर हमारी बातें रह जाती हैं।" माताजीने उत्तर दिया: "मेरे लिये दोनों समान रूपसे आवश्यक या व्यर्थ है।"

एक बार सामान्य रूपसे प्रसन्न रहनेवाले किसी युवकपर किसी कारणसे उदासी छाया हुई थी। माताजीने उसे पास बिठाकर एक हंसती हुई बिल्लीका चित्र बनाया और उसे उपहारमें दे दिया। अब मला उदासी कहाँ रहती?

कोई सचाईके साथ अपनी समस्या लेकर आये तो माताजीके पास समयकी कमी कमी न होती थी। कई बार काम ज्यादा होनेके कारण उनका नाश्ता दस-ग्यारह बजे होता था, दोपहरका खाना तीन-साढ़े तीन और रातका दस, ग्यारह, बारह और कभी-कभी उससे भी देरमें। अपनी सुविधा-असुविधाका ख्याल करना उन्होंने कभी सीखा ही न था। कई बार खानेकी छुट्टी कर देनी पड़ती थी, खड़े-खड़े पांव सूज जाते थे परंतु काम चलता रहता था। स्वभावतः ऐसे काममें समयकी पाबन्दी नहीं रह सकती। एक

आश्रमवासीको समयकी पाबन्दीका न होना खलता था। माताजी उसके मनका भाव ताड़ गयीं और उससे बोलीं : "जब मुझे देर जाती है तो मैं तुम्हें धीरज सिखाती हूँ और जब मुझे जल्दी होना है तो मैं तुम्हें सतर्कता सिखाती हूँ।"

माताजी शुष्क बौद्धिक या सैद्धांतिक बातोंमें अधिक रस न लेती थीं, परंतु कोई भी व्यावहारिक कठिनाई उनके क्षेत्रसे बाहर न थी। बैल ठीक तरह नहीं चलते, तरकारीका स्वाद खराब हो गया, घानकी खेतीमें कीड़े लग गये हैं, नाटक या नृत्यमें ठीक अभिनय नहीं हो रहा, किसीकी बीमारी गंभीर रूप ले रही है, कहीं कोई काटना है, कोई बल्ली नहीं उखड़ रही, कपड़ेके दाग नहीं छूट रहे, सब कुछ कर लेनेपर भी मकानकी छत चूए जा रही है, दफ्तरी कामोंमें खटास ज्यादा है, इस प्रकारके अनेकानेक प्रश्न माताजीके सामने रोज आते रहते थे। ये सब बातें साधनाके अंगके रूपमें आती हैं।

माताजीने कहींपर कहा है कि संसार-भरकी समस्याएं भारत केन्द्रित हैं और भारतकी समस्याएं आश्रममें। अत्यन्त स्थूल भौतिक समस्याका हल भी उच्चतम आध्यात्मिक चेतनासे ही होना चाहिये।

इस तरह माताजीको घण्टों बोलना पड़ता था। अगर किसी सारी चीजको लिखा जाता तो शायद पचासों पोंथे बन जाते। माताजी फ्रेंच और अंगरेजीमें ही बोला करती थीं, परंतु इन भाषाओं में न जानने वाले उनके साथ अपनी-अपनी भाषामें बोल लेते थे और माताजी भाव समझ लेती थीं और उत्तर भी दे देती थीं। हमारे इस पुस्तकका उद्देश्य माताजीकी कहानी सुनाना है, कोई दस्तावेज या शोध-ग्रंथ तैयार करना नहीं। इसी दृष्टिसे माताजीके कहे कुछ वाक्य आपके सामने प्रस्तुत हैं। इनमें किसी प्रकारका सत्य देनेकी कोशिश नहीं की गयी है। लेकिन इन बातोंको टकसाल माना जाय, पिछले अध्यायमें दी गयी श्रीअरविदकी बातचीतकी तरह यह भी स्मृतिपर आधारित है।

अग्निशिखा
जुलाई १९८०

१३

माताजी
भारत :

मुझे देख
नन्दी हो
चलिये आरंभ करते हैं भारतसे। माताजीसे पूछा गया भारत
क्या है? उन्होंने कहा :

“भारत इस देशकी भूमि, यहांकी नदियां, यहांके पहाड़ नहीं है।
यहां रहनेवालोंका सामूहिक नाम भी भारत नहीं है। भारत एक
जीवित-जाग्रत सत्ता है, उसी तरह जैसे शिव आदि देवता। हर
एक देशकी अपनी आत्मा होती है। अगर राजनीतिक ढंगसे देश-
के टुकड़े भी कर दिये जायें तो वे अवास्तविक रहते हैं। भारत
चाहे तो मानव रूपमें भी प्रकट हो सकता है।”

भीय :

हममेंसे कोई विरला ही भयसे अपरिचित होता है। माताजी
कहती हैं :

“भय छिपी हुई स्वीकृति है। जब तुम किसी बातसे डरते हो
तो उसके हाथ मजबूत कर देते हो। तुम उसकी संभावनाको स्वी-
कार करके मानों उसे आनेकी स्वीकृति (अवचेतन रूपमें) दे देते
हो। भयको ज्ञान, साहस, श्रद्धा आदिके द्वारा जीता जा सकता है।”

घृणा :

किसीने माताजीसे कहा : “न जाने क्यों, मेरे अन्दर अमुक व्यक्तिके
लिये बहुत ज्यादा घृणा है। मैं उसे देख नहीं सकता। परंतु कारण
कोई नहीं है।”

माताजीने कहा :

“तुम्हारी सत्ताके किसी भागमें उसके लिये बहुत अधिक आकर्षण
है, वरना इस तरहकी घृणा न होती। यह आकर्षण अधिकांश

निम्नतर प्राणमें है। उसे हटा दो, घृणा अपने-आप चली जायगी

लोभ :

‘क’ की मांगोंका कभी अन्त न आता था और माताजी हमें स्वीकृति देती जाती थीं। कुछ लोगोंको यह बात अजीब-सी लगती थी। एक दिन माताजीने कहा :

“लोग जितने अधिक लोभी हों मैं उन्हें उतना ही अधिक हूँ। अगर उन्हें इन भौतिक चीजोंसे ही सन्तोष हो जाता है वे ले लें, परंतु यह उनके लिये अच्छा नहीं है।

“मैं उन्हें देना पसन्द करती हूँ जो कुछ नहीं मांगते।”

किसी और प्रसंगमें उन्होंने कहा था कि इस तरह भौतिक चीजों पाकर लोगोंकी लालसा तो पूरी हो जाती है, पर वे आंतरिक चीजों से वंचित रह जाते हैं।

स्थायी साधक :

बहुत-से लोग आश्रममें स्थायी रूपसे रहनेके इच्छुक होते थे उनमेंसे एकसे माताजीने कहा :

“स्थायी साधक होनेके लिये तुम्हें अपनी सारी मालमता, अपने विचार, अपनी अभीप्साएं, अपने कर्म समर्पण करने होंगे। तुम्हें अपना सारा समय काममें लगाना चाहिये। उसके बाद ही तुम्हें स्थायी साधक बननेकी बात कर सकते हो। इससे कमसे काम चलेगा। तुम्हें सच्चा और निष्कपट होना चाहिये।”

मृत्युके बादका जीवन :

हर आदमीको इस प्रकारका अनुभव होता है। जब वह कि

जुलाई १९८०

१५

न-किसी कारणसे जीवनसे ऊब जाता है तो वह मौतको बुलाता है और आशा करता है कि मौत उसे इन झमेलोंसे छुड़ा देगी। इस प्रसंगमें माताजीने कहा :

“मुझे मृत्युके बादके जीवनका प्रश्न मूर्खतापूर्ण और निरर्थक लगता है। इसमें यह मान लिया जाता है कि जीवनके दो अलग कमरे हैं और मृत्यु इनके बीचकी दीवार है। वास्तवमें ऐसा नहीं है। मृत्युके बाद भी वही जीवन बना रहता है, उसमें कोई फर्क नहीं आता, केवल उसमें शरीर नहीं होता। अन्यथा वह सब दृष्टियोंसे वही रहता है। अगर तुम केवल शरीर होते, शरीरके सिवा कुछ नहीं, तो यह कहा जा सकता था कि शरीरके समाप्त होते ही सब कुछ समाप्त। लेकिन कुत्ते-बिल्लियां भी केवल शरीर नहीं होते। उनमें भी प्राण होता है। मैंने ऐसे कुत्ते देखे हैं जो सचेतन रूपसे शरीरसे बाहर चले जाते थे। तेओं^१ का एक कुत्ता था। जब मैं ध्यान करती थी तो वह अपने शरीरसे निकलकर मेरे पास आता था और मुझे यह बतानेके लिये कि ध्यानका समय पूरा हो गया, अपनी ठण्डी नाक मेरे शरीरसे लगाता था। मैं दूसरी मंजिल पर बैठकर ध्यान करती थी, जब नीचे आती तो देखती कि कुत्ता जीनेके नीचे सो रहा है।

“भरकर तुम धरतीके बाहर नहीं चले जाते। चैत्य पुरुष विश्रामके लिये चैत्य लोकमें जा सकता है, परंतु प्राणका जीवन बहुत समय तक जैसा-का-तैसा चलता रहता है। वस, तुम उस दुर्गसे वंचित रह जाते हो जो तुम्हारी रक्षा करता है, मेरा मतलब शरीरसे है। जब तुम सशरीर होते हो तो यदि तुम्हारा प्राण कहीं इधर-उधर भयानक स्थलमें पहुंच जाय, तो वह तुरंत शरीरमें लौट आता है और वहां सुरक्षा पाता है। परंतु शरीर न हो तो हर गुजरती

^१इससे माताजीने गृह्यविद्या सीखी थी।

हुई शक्ति तुम्हारे साथ खिलवाड़ कर सकती है। हां, तुम्हें मातृ-वत संरक्षण प्राप्त हो तो और बात है। इसीलिये मैं कहती हूँ कि मृत्यु तुम्हारी किसी समस्याको हल न करेगी। शरीरके संरक्षणको हटाकर वह समस्याको ज्यादा गंभीर बना सकती है।"

झींकना :

कुछ लोगोंको हमेशा झींकनेकी आदत होती है। माताजी कहती हैं :

"अगर तुम अपने-आपसे संतुष्ट नहीं हो तो भगवान्की सहायता का लाभ उठाओ और अपने-आपको बदलो। अगर तुममें बदलने की हिम्मत नहीं है तो अपनी नियतिके अधीन रहो और चुपचाप बैठो।

"अपनी परिस्थितियोंके विरुद्ध शिकायतें करते जाना और बदलनेके लिये कुछ न करना शुद्ध रूपसे समय और शक्तिका अपव्यय है।

"सभी प्रकारकी कठिनाइयोंका इलाज है अपनी इच्छाओं और सुविधाओंपर अहंकार-भरी एकाग्रतासे छुटकारा पाना।

धन, सत्य और प्रेम :

माताजी कहती हैं :

"ऐसा लगता है कि आजकल धन ही परम प्रभु बन गया है — सत्य पृष्ठभूमिमें खिचता चला जा रहा है। रही बात प्रेमकी वह तो आंखोंसे ओझल है।

"यहां मैं भागवत प्रेमकी बात कर रही हूँ, क्योंकि मनुष्य जिस प्रेम कहते हैं वह तो धनका बहुत अच्छा मित्र है।"

जुलाई १९८०

१७

पुस्तक पढ़ना :

किसीने माताजीसे एक पुस्तक मांगी। माताजीने पुस्तक तो दे दी, पर उसपर एक टिप्पणी भी चढ़ा दी :

"इस पुस्तकको मत पढ़ो यदि तुम उसे व्यवहारमें लानेका इरादा नहीं रखते।"

श्रद्धा :

किसीने माताजीको लिखा कि यह देखकर बड़ी निराशा होती है कि मुश्किलसे सौमेंसे एक आदमीके अन्दर श्रद्धा होती है। माताजी ने उत्तर दिया :

"यह निराशाजनक क्यों है ? अगर सौमेंसे एकमें भी सच्ची श्रद्धा हो तो यह चमत्कार है।"

दीक्षासे पहले जांच :

एक संन्यासी महात्मा आश्रममें रहनेके लिये आये। वे दीक्षा लेनेके लिये बहुत उत्सुक थे। उनकी बात सुनकर माताजीने कहा :

"पुराने जमानेमें दीक्षा पानेसे पहले शिष्योंको अपनी योग्यता प्रमाणित करनेके लिये बहुत कड़ी परीक्षाएं देनी पड़ती थीं। यहां हम इस पद्धतिके अनुसार नहीं चलते। प्रकट रूपसे कोई जांच या परीक्षा नहीं होती। लेकिन अगर तुम सच्ची बात देख सको तो यह बहुत ज्यादा कठिन है। वहां शिष्यको पता होता था कि वह परीक्षा दे रहा है और परीक्षा-काल बीत जानेपर उसे प्रवेश मिल जाता था, परंतु यहां तुम्हें जीवनका सामना करना पड़ता है और हर क्षण तुम्हारे ऊपर नजर रखी जाती है। केवल तुम्हारे बाहरी कामोंकी ही गिनती नहीं होती, हर एक विचार और आंत-

रिक्त गतिविधिको देखा जाता है, हर प्रतिक्रियापर नजर रखी जाती है। तुम वनके एकांतमें जो कुछ करते हो उसका नहीं, तुम जीव संघर्षमें जो करते हो उसका महत्व है।

“क्या तुम ऐसी जांचके लिये तैयार हो? क्या तुम अपने-आपको बदलनेके लिये, पूरी तरह बदलनेके लिये तैयार हो? तुम अपने विचार, आदर्श, मूल्य, अभिरुचि, मत, सब फेंक देने होंगे सब कुछ नये सिरेसे सीखना होगा। अगर तुम इस सबके लिये तैयार हो तो लगाओ डुबकी, वरना नजदीक कदम भी न रखो।

इस सिलसिलेमें माताजीने एक बार एक छोटी-सी कहानी सुनायी। उसका सारांश यह है कि किसी गुरुके पास एक साधक आया गुरुने उसे रहनेकी स्वीकृति तो दे दी, पर दीक्षा न दी। वह भी दीक्षा मांगता वह कह देते: “अभी नहीं, ठहरो।” होते-होते कई वर्ष बीत गये, पर गुरुका नकार जैसा-का-वैसा बना रहा। एक दिन शिष्य ऊबने लगा तो गुरुने कहा: “अच्छा चलो, तुम्हारी परीक्षा लेते हैं। उसमें उत्तीर्ण हो गये तो तुम्हें दीक्षा मिल जायगी।

उन्होंने शिष्यके हाथमें एक डबिया पकड़ाई और कहा: “इसे बिना खोले ले जाओ और मेरे मित्रको दे आओ।” वह मित्र जगहसे बहुत दूर रहता था। शिष्य डबिया लेकर उसकी दिशा चल पड़ा। चलते-चलते उसके मनमें उत्सुकता जागी। आगे गुरुने कौन-सी चीज इतनी दूर भेजी है? उसने अपनी उत्सुकता दबा दिया। लेकिन कब तक?

एक बार जब वह पूरी तरह सावधान न था उत्सुकताका पल भारी हो गया और उसने सोचा: “डबियाको जरा-सा खोल देख लूँ इसमें क्या है, फिर बन्द कर दूंगा।” उसने किया यही। डबियाका जरा-सा खुलना था कि उसमेंसे एक चुहिया निकल भागी। शिष्य सिर पटककर रह गया। चुहिया न मिली, न मिली।

जुलाई १९८०

१९

उसे पता चल गया कि जो गुरुकी इतनी-सी बात न मान सका, जो जरा-से कुतूहलको बशमें न कर सका वह दीक्षाका अधिकारी नहीं हो सकता।

माताजीके यहां हमेशा इस तरहकी परीक्षाएं होती रहती हैं।

काम :

कामके बारेमें तो माताजीको बहुत कुछ कहना पड़ता था। अलग-अलग समयपर, अलग-अलग व्यक्तियोंके साथ इस विषयमें न जाने कितनी बातचीत हुई होगी। हम यहांपर उनके कुछ वचन दे रहे हैं।

“तुम्हारा काम कभी अच्छा नहीं हो सकता अगर तुम एक काम करते समय अगले कामके बारेमें सोचते रहो। तुम्हारे कामके लिये वर्तमान ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। भूतकाल तुम्हें पीछेकी ओर न घसीटे और न भविष्य आगेकी ओर खींचे : तुम्हें पूरी तरह वर्तमानपर, तुम इस समय जो कर रहे हो उसपर केंद्रित होना चाहिये। तुम्हें अपने इस समयके कामपर इस तरह केंद्रित होना चाहिये मानों सारी धरतीकी मुक्ति इसीपर निर्भर है।”

*

“चैत्य रूपमें माताजीकी ओर खुले रहनेसे साधनाके लिये जो कुछ जरूरी है वह क्रमशः विकसित होता जाता है। यह मुख्य रहस्योंमेंसे एक, केंद्रीय रहस्य है।

हर छोटे-से-छोटे और बड़े-से-बड़े काममें मा भगवतीकी ओर खुले रहना जरूरी है।”

*

अपनी कार्य-पद्धतिमें हमें प्रकृतिका दास नहीं बनना चाहिये बार-बार कोशिश करने और बदलने, बनाने और बिगाड़ने और फिरसे बनाने, शक्ति, श्रम, द्रव्य और धन नष्ट करनेके तरीके प्रकृति के कार्य-पद्धतिके हैं। भगवान्की पद्धति यह नहीं है। भागवत चेतन पहले किसी कार्यके सत्यको देखती है, उसे तत्कालीन परिस्थितियों में करनेका अच्छे-से-अच्छा उपाय देखती है और जब वह कोशिश करती है तो बस वह अंतिम होती है। वह जो कर चुकी है उसपर वापिस नहीं आती। वह आगे बढ़ती है; सफलता और असफलता दोनोंका एक नयी प्रगतिके लिये, लक्ष्यकी ओर अगले कदमके रूपमें प्रयोग करती है।

“प्रगतिके लिये प्रकृति नष्ट करती है जब कि भागवत चेतन वृद्धिको प्रोत्साहित करती है और अन्तमें रूपांतरित करती है।”

*

“जैसे ही कोई आदमी किसी कामके लिये चुना जाता है, वह इतना फूल जाता है और अपने-आपसे संतुष्ट हो जाता है कि वह मान बैठता है कि जो कुछ करना था, बस, किया जा चुका, सब कुछ प्राप्त हो गया। अब और कुछ करनेको बाकी नहीं रहा, वह चपटा हो जाता है। जिसे तुम अपनी भाषामें ‘फूलना’ कहते हो उसे मैं चपटा होना कहती हूँ।”

*

“जैसे ही तुम सोचते हो कि तुम्हें किसी चीजमें सफलता मिल गयी वैसे ही विरोधी शक्तियाँ उसपर आक्रमण करती और उसे बिगाड़ देती हैं। और फिर जब तुम सफलताकी बात सोचते हो तो तुम अपनी अभीप्साको शिथिल कर देते हो और जरा-सा

जुलाई १९८०

२१

शिथिलता भी सारा काम बिगाड़नेके लिये काफी है। सबसे अच्छी बात यह है कि उसके बारेमें सोचो ही मत, बस अपना काम किये चले जाओ। लेकिन कभी, जब तुम अपनी ब्रुटियों और असफलताओंके बारेमें सोचते रहो और तुम्हारे अन्दर अवसाद घर कर ले तो अपनी सफलता नाकके आगे रखकर तुम कह सकते हो: 'लो, इसे देखो।'

*

आश्रमके किसी विभागमें काम ठीक न होनेकी शिकायत सुनकर माताजीने कहा:

"काम तभी बुरा होता है जब अध्यक्षके अन्दर उचित चेतना न हो।

"जो करना है उसका स्पष्ट और यथार्थ अन्तर्दर्शन, अध्ययन, शांत-स्थिर संकल्प — ये चीजें किसी भी संगठनको ठीक तरह चलानेके लिये जरूरी हैं। एक सामान्य नियमके तौरपर, दूसरोंसे उन गुणोंकी मांग कभी न करो जो स्वयं तुम्हारे अन्दर नहीं हैं।"

*

"काम करना इतना आसान नहीं है। यह न सोचो कि किसी तरह कामके ऊपरी रूपको खत्म कर देना ही सच्चे अर्थमें काम है। काम करना, जिसे साधना करना कहा जाता है, उससे कहीं अधिक कठिन है। ध्यानमें तुम्हारी चेतना ऊपर चली जाती है और कहीं शांति और ज्योतिकी स्थितिमें रहती है। सच्चे कार्यमें तुम्हें यह तो करना ही होता है, पर उससे अधिक भी, बहुत कुछ। तुम्हें वह सब करना होता है जो कोई योगी करता है। तुम्हें उच्चतम शिखरोंतक पहुंचना होता है और वहांकी चेतना, ज्योति, शांतिकी

परिस्थितियोंको नीचे लाकर अपने दैनिक कामोंमें प्रकट कर होता है।

“तुम्हारे लिये कोई भी काम महत्त्वहीन या नगण्य नहीं होता। तुम्हारे काममें व्यवस्था और सामंजस्य जरूरी है। काम जरा-सा असामंजस्य, अव्यवस्था, अस्तव्यस्तता हो तो महासरस्वती संतुष्ट नहीं होती। काम पूर्ण पूर्णताके साथ करना चाहिये, उसमें शुद्धि, सौंदर्य, सामंजस्य और सुव्यवस्थाकी भावना होनी चाहिये। उदाहरणके लिये, जब तुम किसी कमरेमें झाड़ू लगाओ तो उसे इस तरह साफ करो मानों वह किसी बहुत अच्छे अस्पतालका आपरेशन का कमरा हो।”

*

कुछ पौराणिक बातें :

(एक बहुत मोटी पुस्तक आयी थी जिसमें यह सिद्ध करनेकी कोशिश की गयी थी कि राधाका वास्तवमें कोई अस्तित्व न था यह केवल कवियोंकी कल्पना थी। इस विषयमें माताजीसे पूछा गया।)

“निश्चय ही राधाका अस्तित्व था और वह आज भी जिंदा है।

प्रश्न : कुछ उच्च कोटिके कवियोंने राधा-कृष्णके प्रेमका चित्र इस भांति किया है मानों वह शारीरिक प्रेम हो —?!

माताजी : मैंने इसे हमेशा उचित शब्द और उचित भाषा पानेकी असमर्थता माना है।

प्रश्न : रामायणमें कहा गया है कि जब रामने देखा कि वरुण

जुलाई १९८०

पर उनका कार्य समाप्त हो गया तो उन्होंने अनगिनत लोगोंके साथ सरजूमें प्रवेश किया। यह तो बड़े पैमानेपर आत्म-हत्या हुई और आत्म-हत्या बहुत बड़ा पाप है। तब इस बातको कैसे समझा जाय ?

माताजी : १) परम पुरुषके लिये कोई पाप नहीं होता।

२) भक्तके लिये भगवान्से दूर होना ही सबसे बड़ा पाप है।

३) जिस समय रामायण लिखी गयी थी उस समय तक यह विचार जाना या माना नहीं गया था — यह श्रीअरविन्दने ही प्रकट किया है — कि धरती दिव्य जगत् और चरम पुरुषके धाममें रूपांतरित हो सकती-है।

अगर तुम इन तीन बातोंका ख्याल रखो तो कथाको समझ सकोगे (यद्यपि हो सकता है कि कथामें जिस प्रकार कहा गया है, वास्तविक तथ्य ठीक वैसे न भी हुए हों।)

*

माताजीके कुछ वक्तव्य प्रकाशित हुए थे : “हमें प्राचीन बातों-पर जोर नहीं देना चाहिये, उसकी जगह भविष्यकी ओर बढ़नेकी कोशिश करनी चाहिये।” किसीने पूछा : “मैं हमेशा पढ़ाते समय रामायण, महाभारत, सूर, तुलसी, कबीर आदिके साहित्यपर जोर देता हूं। क्या यह प्राचीन साहित्य पढ़ाना आपकी दृष्टिसे गलत होगा ?”

माताजी : “हर्गिज नहीं। वृत्तिका अधिक महत्त्व है। भूत-कालको भविष्यकी ओर छलांग मारनेका तख्ता होना चाहिये, प्रगति-को रोकनेवाली जंजीर नहीं। जैसा कि मैंने कहा, सब कुछे इस-पर निर्भर है कि तुम भूतके प्रति कैसी वृत्ति अपनाते हो।”

(इसी विषयमें माताजीने फिर कहा) ... "अगर तुम्हें लग है कि परिवर्तनकी जरूरत है तो वह मनोवृत्तिमें होगा। भूतकाल को भविष्यकी तैयारीके लिये उपयोगमें लाते हुए यह बतलाओ कि अब क्या उपलब्ध करना है। यह बहुत कठिन नहीं है — मनुष्य पुरा विश्वास है कि तुम इसे आसानीसे कर सकोगे।"

प्रश्न : हम कई सन्तोंके जीवनमें पढ़ते हैं कि जब भक्तने प्रभु श्रद्धाके साथ भगवान्से भोजन करनेके लिये आग्रह किया और उनके न आनेपर खाना छोड़ दिया तो भगवान् मनुष्यके रूपमें प्रकट हुए और उनके साथ साधारण आदमीकी तरह खाया-पिया और काम किया। क्या यह सत्य हो सकता है ?

माताजी : "यह मनोवैज्ञानिक सत्य है। अगर तुम ऐसा निश्चय कर लो तो तुम्हारे लिये कोई भी भगवान् बन सकता है। अत्यन्त निष्ठ दृष्टि जितनी मानी जाती है उससे कहीं अधिक व्यापक है।"

बड़े दिन (क्रिसमस) के बारेमें :

"नूतन जन्म दिवस (२५ दिसंबर) ज्योतिका जन्मदिन है। यह दिनसे प्रकाश बढ़ना शुरू होता है। यह एक बहुत पुराना उत्सव है, ईसाई सम्बन्ध से बहुत पुराना, पता नहीं कि सचमुच ईसा कब पैदा हुए थे या ईसाइयोंने इस पुराने उत्सवका लाभ उठा लिया है।"

*

प्रतीक :

"१ का अर्थ है एकमेव; २ — सृष्टिका निश्चय; ३ — सृष्टि आरंभ; ४ — अभिव्यक्ति; ५ — शक्ति; ६ — सृष्टि; ७ — सिद्धि; ८ — गुह्य निर्माण; ९ — अचल पूर्तिकी शक्ति; १० — अभिव्यक्ति

जुलाई १९८०

२५

शक्ति; ११ — प्रगति; १२ — स्थिर पूर्ण अभिव्यक्ति ।”

*

“सर्प शक्तिका प्रतीक है, संकल्प-शक्ति, प्रगतिकी शक्ति, भगवान्की ओर सर्पिल गतिसे चढ़ती हुई पार्थिव शक्ति। परंतु वह ऊपरसे उतरती हुई शक्तिका प्रतीक नहीं है।”

*

“जल बहुत-सी चीजोंका प्रतीक है — जैसे तरलता, नमनीयता, लोच, पावन तत्त्व आदि। वह प्रेरक शक्ति है और संगठित जीवन-के आरंभका सूचक है। जल प्राणके अनुरूप है, वायु मनके, अग्नि आत्मेन्द्रियके, पृथ्वी भौतिक द्रव्यके और आकाश आत्माके अनुरूप है।”

*

हास्य :

माताजीकी बातें बहुत बार विनोदपूर्ण होती थीं। उनके मजाकों-पर घण्टों हंसा जा सकता था, पर उन्हें लिख पाना असंभव है। वे स्वयं कहती हैं :

“हां, मेरे मजाकोंको लिख लेना असंभव है, क्योंकि मजाक शब्दोंमें नहीं होता, उसमें कुछ और ही चीज होती है जिसे लिखा नहीं जा सकता। मैं अपने मजाकोंमें भी बहुत गंभीर होती हूं।”

सचमुच माताजीके मजाक “गूंगे केरी सरकरा” होते थे। जिन्होंने रस लिया है वे ही जानते हैं। उन्हें औरोंतक पहुंचाना असंभव है।

क्रोध :

“जब तुम्हें क्रोध आता है तो तुम्हारे अन्दर असाधारण शक्ति आ जाती है जिसका उपयोग तुम चीखने-चिल्लाते लिये करते हो। अगर तुम उस शक्तिको अपने अन्दर रख सको और उसका उपयोग किसी बाधापर विजय पानेके लिये या तुम्हारी प्रगति करनेके लिये करो तो आश्चर्यजनक परिणाम आयेंगे सामान्य दृष्टिसे तुम कुछ बल पा लोगे और कुछ प्रगति कर लोगे।

प्रगति :

“एक चीज और सब चीजोंसे ज्यादा महत्वपूर्ण है। तुम्हारे अन्दर प्रगति करनेके लिये दृढ़ संकल्प होना चाहिये। उसके साथ ही भगवान् की सहायताके लिये अभीप्सा होनी चाहिये। लेकिन संकल्प और अभीप्सा हमेशा बने रहने चाहिये। अगर तुम्हारे संकल्प दस मिनट काम करे और फिर दस घण्टेके लिये सो जाय, या पाँच मिनट काम कर ले और फिर दिन-भर सोता रहे तो तुम्हारे सैंकड़ों वर्षोंके बाद भी कोई विशेष परिवर्तन न पाओगे। नित्य संकल्प ही तुम्हारी प्रगतिको तेज कर सकता है और तुम्हारे अपने आदर्शके अधिक नजदीक ला सकता है।

“नहीं, संकल्प कभी नहीं थकता, उसे विश्राम की जरूरत होती। वह दिन-रात काम कर सकता है।”

वंशावली :

“मेरी वंशावली ? परम प्रभु। माँ की ओरसे भी और बाप की ओरसे भी वही। मेरी जीवन गाथा ? समस्त विश्वके इतिहाससे भिन्न कोई जीवन गाथा नहीं है मेरी।”

मशीनें :

युद्धके दिनोंमें माताजी नियमित रूपसे रेडियो सुना करती थीं

जुलाई १९८०

रेडियो सुनना उनके कार्यक्रमका महत्वपूर्ण अंग था। एक दिन रेडियोमें कुछ खराबी आ गयी और उसने मौन धारण कर लिया तो मशीनोंके बारेमें बात चल निकली। माताजीने कहा :

“साधारणतः कहा जाता है कि एक मशीनके साथ एक ही आदमी-को काम करना चाहिये। ज्यादा नाजुक मशीनोंमें एक प्रकारकी चेतना होती है। यह बात जहाजोंमें बहुत स्पष्ट दिखायी देती है। यद्यपि और मशीनोंमें भी होती है। नाविकोंको इस बातपर विश्वास होता है। एक जहाज-था जो हमेशा बन्दरगाहमें बाई ओरसे घुसनेसे इंकार करता था। कभी-कभी उसे दाई ओरसे घुसानेके लिये बहुत लंबा चक्कर लगाना पड़ता था। मैंने यह बात देखी है। मैं स्वयं उस जहाजमें थी। कप्तानने मुझसे कहा था कि अगर अमुक नाविक जहाजपर हो तो उसकी उपस्थिति मात्रसे जहाज बाई ओरसे घुसनेके लिये राजी हो जाता है। उसे कुछ करनेकी जरूरत नहीं होती। उसकी उपस्थिति मात्रसे जहाज आज्ञाकारी बन जाता है। कप्तानने कहा, लोग इस बातपर विश्वास नहीं करते, पर है वह सच्ची। इसका कई बार परीक्षण किया जा चुका था। उस आदमीने कहा कि वह इस बारेमें कुछ नहीं जानता। उसे बस इतना मालूम है कि उसे जहाजसे प्यार है और जहाजको उससे।

“घड़ियोंपर छोटी-मोटी शक्तियोंका बहुत असर होता है। वे उन्हें तेज या सुस्त कर देती हैं। एक बार श्रीअरविंद टहल रहे थे। उन्होंने देखा उनके सामने की घड़ी बन्द है, उन्होंने दूसरी घड़ी देखी, वह भी बन्द थी, तीसरी, चौथी। इस तरह नौ-दस घड़ियां देखीं। सब-की-सब एक ही समयपर बन्द हुई थीं। वे नाराज हो गये और उन्होंने जमीनपर पैर पटककर कहा : “यह बेवकूफी भरा मजाक है! मुझे पसन्द नहीं।” और सब घड़ियां एक साथ चल पड़ीं।

“बहुत अच्छी मशीनें आदिम मानवसे ज्यादा सचेतन होती हैं। दोनोंमें एक फर्क होता है। मशीनकी चेतना प्रगति नहीं कर

सकती। आदमीकी कर सकती है। मशीन यदि प्रगति करे तो उसका क्षेत्र बहुत संकुचित होता है। पशुओंमें क्षेत्र ज्यादा होता है। मेरे पास बहुत-सी विल्लियां थीं आश्चर्यजनक प्रगति की थीं। आदि मानव भी प्रकृतिके चलता है और उसे जरा आगे बढ़नेके लिये बहुत अधिक जरूरत होती है। लेकिन अगर वह योग-साधनाका मार्ग तो वह तेजीसे प्रगति कर सकता है और अपने अन्दर चेतनाको भी उतार सकता है।”

एक कैलिडियन गाथा :

माताजीने एक कहानी सुनायी :

“एक बार कैलिडियामें भगवान्ने अवतार लिया। जैसा हमें होता है, वहांके अधिकारी और पुजारी उसके विरुद्ध थे। वे खदेड़नेके लिये उसके पीछे दौड़े। वह बुरी तरह घायल हो गया और थोड़ी देर दौड़कर छोटी-छोटी झाड़ियोंमें गिर पड़ा। उस रक्त उन झाड़ियोंपर पड़ा और चमत्कार! झाड़ियां रंगके फूलों और फलोंसे भर गयीं। फूलोंने उसे पूरी तरह लिया और वह खूनके प्यासे आतताइयोंसे बच गया। यह की झाड़ियां थीं। इसके फूल अवतारके रक्तसे बने थे। गुल अनारको नाम दिया है ‘भागवत बलि’ और अनार है ‘भागवत बलिका फल।’

“कैलिडियन लोगोंका विश्वास था कि सात युग-चक्र होंगे से हर एक भगवान्के किसी गुण-विशेषका प्रतिनिधि होगा। लिये प्रलय और विनाश होंगे। सातवां युग-चक्र सन्तुलन होगा जिसमें हर चीजा अपने स्थानपर व्यवस्थित होगी एक नयी धरती और नया आकाश बनायेंगे। उसके बाद के लिये किसी और विनाशकी जरूरत न होगी।”

अग्निविज्ञान
जुलाई १९८०

माताजी बहुत काममें लगी रहती थीं और उन्हें लोगोंसे मिलने-
का समय न मिलता था। इसपर किसीने उलाहना दिया तो माता-
जीका उत्तर था :

“यह बिल्कुल सत्य है कि आजकल मैं किसी ऐसे काममें लगी
रहती हूँ जिसे मैं बाह्य व्यवस्थाकी अपेक्षा बहुत ज्यादा जरूरी
समझती हूँ — अभीके लिये जरूरी — इसलिये मैं आशा करती हूँ
कि हर एक अपनी क्षमताके अनुसार अधिक-से-अधिक अच्छी तरह
अपना कर्तव्य पूरा करेगा और अपनी आंखें भगवान्‌के कामकी
विशालतापर लगाये रहेगा। इससे उसे अपनी निजी कठिनाइयों-
को हल करनेमें भी सहायता मिलेगी।

“समय कठिन है — हर एकके लिये, हर बातमें समय कठिन है।
हमें निश्चय ही यह हमें अपनी सीमाओंको पार करना सिखानेके लिये
वे आया है।”

अब जब कि माताजीने शरीर छोड़ दिया है तो वे और भी
ज्यादा महत्वपूर्ण काममें लगी हैं। जब श्रीअरविदने शरीर त्यागा
तो माताजीने कहा था :

“श्रीअरविदने अपना शरीर त्यागकर वह काम कर दिया जिसे
साधारण ढंगसे एक जमाना लग जाता।”

माताजीके शरीर-त्यागके बारेमें भी यही बात होगी इससे हमारी
जिम्मेदारी और भी बढ़ जाती है। माताजीकी सहायता हमेशा मिलती
रहती है। स्वयं उन्होंने कहा है :

“मौन सहायता ज्यादा प्रभावशाली, निश्चित, निरंतर और व्योरे-
वार होती है।”

गांवमें क्या करें

(एक पाठक किसी ग्रामीण श्रीअरविद-केंद्रमें काम करते-करते जाता है। उन्होंने वहांके कामके लिये कोई योजना मांगी है। यहां अनुके से बरतन दूसरे जवाब दिया जा रहा है, शायद इससे औरोंको भी कुछ लाभ हो।—)

प्रिय भाई,

मुझे आपके गांवका भली-भांति परिचय नहीं है अतः उसके कोई योजना बनाना मुश्किल है।

एक मोटी रूपरेखा भेज रही हूं। आप देख लें कि वहां कि सीख स कुछ संभव है।

केंद्रमें सदस्य रोज आ सकें तो अच्छा हो। रोजका कार्य पिरोना कुछ ऐसा हो कि उन्हें रोचक लगे और साथ ही वे थोड़ा-कर आत्मना सीख भी सकें। घरके

शामको स्त्रियोंके लिये अलग समय रखा जाय। अगर समझान कार्यकर्ता मिलें तो उनके सहयोगसे थोड़ा पढ़ना-लिखना सिखा रखना जा सकता है। कुछ कढ़ाई-बुनाईका काम सिखाया जा सकता है कर उसे बच्चोंकी देखभाल कैसे करनी चाहिये, उनको निश्चित समय करनेसे खाना खिलाना क्यों आवश्यक है, घरमें सफाई कैसे रखी जाय थी। बातें समझायी जा सकती हैं, इस तरहके कार्यक्रम शुरू कर स अच्छा हैं। बीच-बीचमें हर कामके बारेमें माताजीने अगर कुछ कहा सकते हैं तो उनके वाक्य सुनाना चाहिये। उदाहरणके लिये, वर्तनोंको स कामको रखना, करीनेसे सजाने चाहिये, उन्हें पटकना नहीं चाहिये। हम हैं। यहां एक प्रचलित धारणा है कि अगर वर्तनोंको पटका जाय जहां तोड़ा-फोड़ा जाय तो रातको वे काशी जाकर बाबा विश्वनाथ रोकिये शिकायत करते हैं और बाबा घरवालोंसे नाराज हो जाते हैं। इस है तथाकथित आधुनिक लोग इस बातपर हंसते हैं लेकिन आश्रम है।

जुलाई १९८०

३१

एक घटनाने हमारी आंखें खोल दीं। आश्रमके एक विभागमें बरतन धोये, पोंछे और करीनेसे रखे जाते थे। एक दिन श्रीमाने विभागाध्यक्षसे पूछा, "क्या तुम्हारे यहां आजकल बरतनोंको पटका जाता है या उनके साथ लापरवाही बरती जाती है? रातको बहुत-से बरतन मेरे पास शिकायत करने आये थे।"

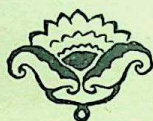
दूसरा महत्त्वपूर्ण काम बच्चोंके साथ हो सकता है। रोज शामको उन्हें खेल-कूदके लिये बुला सकते हैं। साथ मिलकर दलमें काम करनेकी आदत डालना बहुत आवश्यक है। शुरूमें माताजीकी कोई छोटी-सी प्रार्थना उनसे करवायी जाय। अगर अच्छे लोग मिलें तो बच्चे मिट्टीके, कागजके या पापिये-माशेके खिलौने बनाना सीख सकते हैं। मिट्टीके बरतनोंको रंगनेके लिये सस्ते रंग खरीद कर बच्चे खिलौनोंको रंग भी सकते हैं। उन्हें थोड़ा-सा सीना, पापिये-माशा सिखा सकते हैं। विभिन्न रंगोंके बीज लेकर फर्शपर थोड़ा-सा आल्पना बनानेके लिये प्रोत्साहित कर सकते हैं।

घरके आंगनको साफ रखना कितना आवश्यक है यह पुरुषोंको अगर समझाना चाहिये। केवल समझना काफी नहीं है इसका ध्यान सिखाकर रखना चाहिये। आंगनमें थोड़े फूल और तरकारीके पौधे लगा सकते हैं। कर उसे सुन्दर बना सकते हैं। उन्हें बताया जाय कि केवल ध्यान करनेसे काम न चलेगा, माताजी स्वच्छताको भी बहुत महत्त्व देती थीं। हर वस्तुमें प्राण है और उससे नाता जोड़ा जाय तो काम अच्छा और अधिक होता है; यह सब समझाकर उन्हें यह भी बता सकते हैं कि कैसे माताजी हर क्षण हमारे साथ रहती हैं और हमारे कामको देखती हैं। सप्ताहमें दो बार सामूहिक ध्यान रख सकते हैं। माताजी या श्रीअरविन्दकी पुस्तकमेंसे कुछ पढ़ सकते हैं।

जहांतक हो सके आपसी झगड़ोंको लेकर उन्हें अदालतमें जानेसे रोकिये। समझौता घर बैठे करवा दीजिये।

इस तरह आरंभ करके देखिये गांवका कितना सहयोग मिलता है। अपने अनुभव बतलाइये फिर आगे चलेंगे।

जीवनका एक उद्देश्य होता है और वही सच्चा और सदा
उद्देश्य है — भगवान् । उन्हींकी ओर मुड़ो और सब खाली
चला जायगा ।



चादर, शाल, दोशाले थोक खरीदनेके लिये पत्रव्यवहार करें।

यूनिक स्टोर्स

घास मंडी; लुधियाना

वृत्तमास : २५४४७

सोसायटी समाचार

जैसा कि पिछले अंकमें सूचित किया गया था श्रीअरविन्द सोसायटीका वार्षिकोत्सव पाण्डिचेरीमें १३ और १४ अगस्तको होगा। १३ अगस्तको विभिन्न समितियोंकी बैठक होगी। १० और ११ अगस्तको कार्यकर्ताओंके दो दिनोंके विद्विरीकी आयोजना की गयी है।

इस अधिवेशनमें पिछले वर्षके कार्योंका अवलोकन होता है और नये कार्यक्रमके लिये प्रस्ताव प्रस्तुत किये जाते हैं। साधनाके पक्ष-प्रतीति भी वातचीत होती है। पन्द्रह अगस्त श्रीअरविन्दका जन्मदिन है। इस दिन आश्रममें विशेष कार्यक्रम होता है।

रेलवे कन्मेशन, रहने आदिकी व्यवस्थाके बारेमें कृपया अधिवेशनका पिछला अंक देखें। फार्म वगैरह सब उसके साथ मिले थे। अधिवेशनमें भाग लेनेके लिये सबका स्वागत है।

३ मईको श्रीअरविन्द सोसायटी युवा-केंद्रमें श्री नन्दजातने "जय-मठनाए पूर्वनिश्चित होती है" विषयपर भाषण दिया। ९ मईको ज्येष्ठतम न्यायालयके न्यायमूर्ति श्री बी. आर. कृष्ण अय्यरने "काम्युत और समाजका पूर्ण योग" पर वातचीत की।

सोसायटीकी बड़ौदा शाखाने हिम्मतनगरमें ६ दिनकी योगासन सभाका आयोजन किया। श्री दुष्यन्तकुमार मोदीके निर्देशनमें यह १७ अप्रैलसे शुरू हुई थी। जून-जुलाईमें हिम्मतनगर भविष्यक शालिकके डा. निरंजननाथके निर्देशनमें बड़ौदामें योगासन विद्विरी आयोजन होगा।

संघकाके श्रीअरविन्द निवासमें १९ मईसे २८ मईतक प्रो. अश्विनी मोहि अग्रहवालने श्रीअरविन्दके महाकाव्य सावित्रीपर २० वातचीत की।

बैंगलूरमें, ७ अप्रैलको श्रीअरविन्द भवनमें कर्माटिकके श्रीअरविन्द

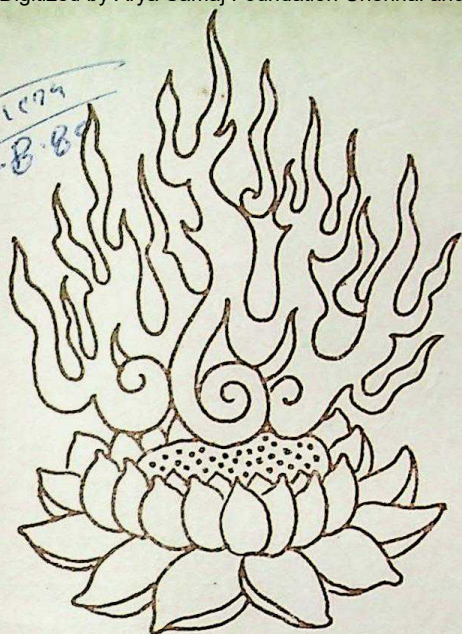
केंद्रोंकी बैठक हुई (२३ श्रीअरविंद सोसायटीके और २८ फ्रैंड्स ऑफ ओरोवीलके केंद्र) भारतके भूतपूर्व उप-राष्ट्रपति श्री बी. डी. शर्मा की अध्यक्षतामें प्रादेशिक सोसायटीका गठन हुआ। मीटिंगमें कार्यक्रम और संगठनके बारेमें बातचीत हुई।

उज्जैनमें २६, २७ अप्रैलको विश्व संस्कृत प्रतिष्ठानम्की राष्त्र सभा हुई। कांचीपुरम्के शंकराचार्य श्री जयेंद्र सरस्वतीने उद्घाटन करते हुए कहा कि संस्कृत सभी भारतीयोंकी भाषा है। हर भारतीयको इसे सीखना चाहिये, इसे सबसे अधिक जीवन्त बना चाहिये और इसे राष्ट्रभाषा बनानेका प्रयास करना चाहिये। नि. वि. संस्कृत प्रतिष्ठानम्के अध्यक्ष काशीनरेश श्री विभूतिनारायण सिंह कांची शंकराचार्यने 'वैदिक धर्म सम्राट्' की उपाधि दी। इस अवसरपर राजमाता विजयराजे सिन्धिया स्वागताध्यक्ष थीं।

भारतके बहुत-से स्थानोंके लोग इसमें सम्मिलित हुए और संस्कृत के प्रति अपनी आस्था दिखलायी। इस अवसरपर संस्कृत प्रवक्ताओं, भारतीय संस्कृति और श्रीअरविंदके जीवन-संबन्धी चित्रों प्रदर्शनी की गयी।

सदस्यता-शुल्क

जैसा कि जनवरीमें घोषित किया जा चुका है, सोसायटीकी सदस्यताका वार्षिक चन्दा १२ रुपये ही है। अग्निशिखाका चन्दा ८ रुपये इसके अतिरिक्त है। चन्दा भेजते समय इस बात विशेष ख्याल रखें, स्पष्ट लिखें कि आप सदस्यताके साथ-साथ पत्रिका का चन्दा (१२+८=२०) भेज रहे हैं, और आपकी सदस्यता कबसे शुरू हो रही है। धन्यवाद।



उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जाग्रहि

अखिल भारतीय पत्रिका

अग्निशिखा

श्रीअरविंद सोसायटीकी मासिक पत्रिका

अगस्त १९८०

वर्ष ११, अंक १, पूर्णांक १२१

विषय-सूची

भारतका महान् अतीत
पतन
पुनर्जागरण
भारतका मिशन
आधुनिक भारतकी समस्या
हमें क्या करना चाहिये
सोसायटी समाचार

रक्त कमल — हमारे पाठक माताजीकी जीवनी 'श्वेत कमल' परिचित होंगे। उसी जैसी, श्रीअरविंदका परिचय देनेवाली पुस्तक 'रक्त कमल' अगस्त दर्शनपर प्रकाशित होनेवाली है। लगभग ३० पृष्ठकी इस पुस्तकका दाम सजिल्द ३५ रु. और अजिल्द ३० रु. होगा। डाक व्यय अतिरिक्त। सम्पादक अग्निशिखा या श्रीअरविंद आश्रम, पांडिचेरीको लिखें।

पत्र, चेक, ड्राफ्ट, आदि, भेजनेका पता :

संपादक अग्निशिखा, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००१

संपादक : रवींद्र

प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-६०५००४

भारतका महान् अतीत



भला किस क्षेत्रमें भारतने प्रयास, उपलब्धि एवं सृजन नहीं किया है, और जो कुछ किया है सभीमें एक विस्तृत परिमाणमें, व्योरेकी पूर्णताकी ओर अत्यधिक ध्यान देते हुए किया है। उसकी आध्यात्मिक और दार्शनिक उपलब्धिके विषयमें तो असलमें कोई सवाल ही नहीं उठ सकता। वे यहां उसी प्रकार विद्यमान हैं जिस प्रकार, कालिदासके शब्दोंमें, हिमालय इस भूतलपर "पृथ्वीके मानदंडके रूपमें अवस्थित है, (पृथिव्या इव मानदण्डः)" वे आजतक भी घों और पृथिवीके बीच मध्यस्थता करती हैं; सांतको नापती, अपने मापक यंत्रको अनंतके अंदर दूरतक फेंकती हैं, अपने छोरोंको अतिचेतन और प्रच्छन्न-चेतन सत्ता, आध्यात्मिक और प्राकृत सत्ताके ऊर्ध्व और निम्न समुद्रोंमें निमज्जित करती हैं। परंतु यदि उसके दर्शनशास्त्र, उसके धार्मिक साधनाभ्यास, उसके अनेकानेक महान् आध्यात्मिक व्यक्ति, विचारक, संस्थापक और संत उसकी महत्तम गरिमा हैं, — जैसा कि उसकी प्रकृति और प्रधान भावनाके लिये स्वाभाविक ही था — तो भी ये चीजें उसकी एकमात्र गरिमा कदापि नहीं हैं और न इनकी उत्कृष्टताके कारण अन्य चीजें क्षुद्र ही हो जाती हैं। यह अब सिद्ध हो चुका है कि वर्तमान युगसे पहले उसने सायन्समें अन्य किसी भी देशकी अपेक्षा अधिक प्रगति की थी, और यहांतक कि यूरोप अपने भौतिक विज्ञानके आरंभके लिये यूनानके समान ही भारतका भी ऋणी है, यद्यपि सीधे तौरपर नहीं पर अरबोंके माध्यमके द्वारा। और चाहे उसने अन्य देशोंके समान ही प्रगति की होती तो भी, एक प्राचीन संस्कृतिमें यह एक प्रबल बौद्धिक जीवनका पर्याप्त प्रमाण होता। विशेषकर, प्राचीन विज्ञानके मुख्य अंगों, गणित, ज्योतिष और रसायनमें उसने बहुत काफी तथा

सम्यक् रूपसे खोज की और सिद्धांत स्थिर किये तथा तर्क या पक्षोंके बलपर कुछ एक वैज्ञानिक विचारों और आविष्कारोंकी भविष्यवाणी की जिनपर यूरोप पहले-पहल बहुत देर बाद ही पहुंचा, जिन्हें वह अपनी नयी और पूर्णतर विधिके द्वारा एक अधिक आधारपर प्रतिष्ठित करनेमें समर्थ हुआ। शल्यतंत्रमें वह कर्णकरणोंसे सुसंपन्न था और उसकी चिकित्सा-पद्धति आज भी जीवित है तथा अभी तक अपना महत्त्व बनाये हुए है, यद्यपि बीचमें ज्ञान इसका ह्रास हो गया था और केवल वर्तमान समयमें ही यह अपना जीवन-शक्तिको फिरसे प्राप्त कर रही है।

साहित्यमें, मन-वृद्धिके जीवनमें भारतने महान् रूपमें जीवन व्यक्त किया और निर्माण किया। इतना ही नहीं कि उसके पास उपनिषदें और गीता हैं— इस क्षेत्रकी उन अपेक्षाकृत कम महत्त्व पर फिर भी ओजस्वी या मनोरम कृतियोंकी हम चर्चा नहीं कर सकते जो धार्मिक और दार्शनिक काव्यके अतुलनीय स्मारक हैं, और जिनकोटिकी कोई भी बड़ी और विशेष मूल्यवान् रचना करनेमें यूरोप का समर्थ नहीं हुआ है, अपितु उसके पास वह बृहत् राष्ट्रीय कृति, महाभारत, भी है जो अपनी परिधिमें काव्य-साहित्यको संगृहीत करता और एक सुदीर्घ निर्माणकारी युगके जीवनको इतनी पूर्णतासे व्यक्त करता है कि एक प्रसिद्ध उक्तिमें, जिसमें एक अति उपर्युक्त सुभाषितकी अतिरंजनाके साथ-साथ कुछ औचित्य भी है, इसके संदर्भ में यह कहा गया है कि जो कुछ इस भारत (महाभारत)में नहीं है वह भारतवर्षमें भी नहीं है, और इसके अतिरिक्त उसके पास रामायण भी है जो अपने ढंगकी सर्वाधिक महान् और विलक्षण कविता है, वह नैतिक आदर्शवाद और वीरतापूर्ण अर्द्ध-दिव्य मानव-जीवन अत्यंत उदात्त और सुन्दर महाकाव्य है, उसके पास अतीव सुसंस्कृत विचार, ऐन्द्रिय उपभोग, कल्पना, कर्म और साहसिक कार्यके और उपन्यासकी आश्चर्यजनक समृद्धि, पूर्णता और रंगीनी भी है।

उसके अत्युत्कृष्ट युगके उपन्यास-साहित्यका गठन करती है। और न सृजनका यह सुदीर्घ अनवरत उत्साह संस्कृत भाषाकी जीवनी-शक्तिके नष्ट होनेके साथ समाप्त ही हो गया, बल्कि उसकी अन्य भाषाओंमें, पहले तो पाली और प्राकृत, — दुर्भाग्यवश वह बहुत कुछ लुप्त हो गयी है, — तथा तमिलमें और आगे चलकर हिन्दी, बंगाली, मराठी एवं अन्य भाषाओंमें महान् या सुन्दर कृतियोंका पुंज तैयार करनेमें वैसा ही उत्साह बना रहा और कार्य करता रहा। भारतकी स्थापत्य-कला, मूर्ति-कला और चित्रकारीकी सुदीर्घ परंपरा, तूफानी सदियोंके समस्त विध्वंसके बाद जो कुछ बचा है उसमें भी, अपनी कहानी आप ही कह रही है : पश्चिमी सौंदर्य-विज्ञानका संकीर्ण-तर संप्रदाय उसके विषयमें कोई भी सम्मति क्यों न स्थिर करे, — और कम-से-कम उसकी कार्यान्विति तथा कारीगरीकी सूक्ष्मतासे तथा भारतीय मनको अभिव्यक्त करनेकी उसकी क्षमतासे इंकार नहीं किया जा सकता — फिर भी वह कम-से-कम एक अनवरत सृजन-संबंधी क्रियाशीलताकी साक्षी देती है। और सृजन जीवनका प्रमाण है और महान् सृजन जीवनकी महानताका।

परंतु यह कहा जा सकता है कि ये सब चीजें मनकी हैं, और भारतकी बुद्धि, कल्पनाशक्ति और सौंदर्यप्रिय मन सृजनशील रूपसे सक्रिय रहे होंगे पर फिर भी उसका बाह्य जीवन तो उत्साहहीन, निस्तेज, दीन-हीन, वैराग्यके रंगोंसे घूमिल, संकल्पबल और व्यक्तित्व-से शून्य, निष्प्रभाव और निष्फल ही रहा। इस स्थापनाको गलेके नीचे उतारना कठिन होगा; क्योंकि, साहित्य, कला और विज्ञान जीवनकी शून्यतामें नहीं फूलते-फलते। पर यहां भी तथ्य क्या है? भारतमें केवल महान् संतों, ऋषियों, विचारकों, धर्म-संस्थापकों, कवियों, स्रष्टाओं, वैज्ञानिकों, पंडितों, विधिज्ञोंकी ही लंबी तालिका नहीं रही है; उसमें महान् शासक, व्यवस्थापक, सैनिक, विजेता, महारथी, प्रबल सक्रिय संकल्प, योजनाकुशल मन और रचनाकारी

दृष्ट-शक्तिसे संपन्न व्यक्ति भी हुए हैं। उसने लड़ाइयां लड़ी हैं और शासन भी किया है, व्यापार किया, उपनिवेश बसाये और सभ्यताका प्रसार किया है, शासन-पद्धतियोंका निर्माण किया जातियों तथा समाजोंका संगठन किया है, वह सब कुछ किया है कि महान् जातियोंकी बाह्य कर्मशीलताका गठन करता है। कोई राष्ट्र कर्मके उसी क्षेत्रमें अपने अत्यंत सजीव आदर्श व्यक्तियों आविर्भूत करनेकी प्रवृत्ति रखता है जो उसके स्वभावके अनुकूल हो और उसके प्रमुख विचारको प्रकट करता हो, और भारतमें महान् संत तथा धार्मिक पुरुष ही मूर्धन्य पदपर स्थित रहे हैं तथा महानताकी अत्यंत हृदयस्पर्शी और अविच्छिन्न नाम-परंपराको प्रस्तुत करते आये हैं, जैसे कि रोम अपने योद्धा राजनीतिज्ञों और शासकोंके द्वारा ही सबसे अधिक जीवन्त रहा प्राचीन भारतमें ऋषि सर्वप्रमुख व्यक्ति होता था जिसके ठीक योद्धाका स्थान था जब कि बादके युगकी सबसे अधिक ज्वलंत विशेषता है आध्यात्मिक पुरुषोंकी ही एक लंबी अविच्छिन्न शृंखला — और महावीरसे लेकर रामानुज, चैतन्य, नानक, रामदास और तुलसी रामतक और इनसे भी आगे रामकृष्ण, विवेकानन्द और दयानन्दतक पर साथ ही राजनीतिज्ञों और शासकोंके रूपमें भी हमें अद्भुत सफलताएं प्राप्त हुई हैं, ये प्रामाणिक इतिहासकी उपासे लेकर जो चन्द्रगुप्त, चाणक्य, अशोक एवं गुप्तवंशी सम्राटोंके प्रभावशाली व्यक्तित्वोंसे आरंभ होती हैं और मध्ययुगके अनेकानेक प्रसिद्ध हिन्दू और मुसलिम व्यक्तित्वोंमेंसे होती हुई — बिल्कुल आधुनिक युग तक जा पहुंचती है। प्राचीन भारतमें गणतंत्रों, अल्प-जन-राज्यों, जनतन्त्र तथा छोटे-छोटे राज्योंका जीवन था जिनका कोई भी ऐताहासिक व्योरा अब शेष नहीं है; उनके बाद हम देखते हैं साम्राज्य-निर्माणका दीर्घकालीन प्रयत्न, सीलोन और समुद्री द्वीपसमूहोंका उपनिवेशकरण, पठान और मुगल राजवंशोंके उत्थान और पतनसे संलग्न तीव्र संघर्ष, दक्षिणमें जीवित रहनेके लिये हिन्दुओंका संघर्ष, राज

पूती वीरताका आश्चर्यजनक इतिवृत्त, महाराष्ट्रमें समाजके निम्न-
 तम स्तरोंतक व्यापी हुई राष्ट्रीय जीवनकी भारी उथल-पुथल, सिखों-
 के खालसा संप्रदायकी विलक्षण गाथा। उस बाह्य जीवनका यथो-
 चित चित्रण करना अभी बाकी है, एक बार उसे चित्रित कर दिये
 जानेपर वह अनेक मिथ्या कल्पनाओंका अंत कर देगा। यह सब
 विपुल कार्य-कलाप किन्हीं ऐसे आदिमयोंके द्वारा नहीं संपन्न किया
 गया था जो मन, संकल्प और जीवन-शक्तिसे रहित थे, मानवता-
 की ऐसी निस्तेज छायाओंके द्वारा नहीं किया गया था जिनमें ऊर्ज-
 स्वी मनुष्यत्वको विपादमय और सर्व-विनाशक वैराग्यवादके बोझके
 नीचे कुचल डाला गया था, न ही यह स्वप्नविलासियोंकी एक ऐसी
 जतिका चिह्न प्रतीत होता है जिसकी मनोवृत्ति दार्शनिक हो और
 जो जीवन तथा कर्मका विरोध करती हो। वे कोई घास-फूसके
 पुतले या निर्जीव एवं संकल्पशून्य मिट्टीके घोंघे या निःशक्त स्वप्न-
 विलासी नहीं थे जिन्होंने इस प्रकार कर्म किया, योजनाएं बनायीं,
 विजयें प्राप्त कीं, प्रशासनकी महान् प्रणालियोंका निर्माण किया,
 राज्य और साम्राज्य स्थापित किये, काव्य, कला और स्थापत्यके
 महान् आदर्शोंके रूपमें विख्यात हुए अथवा, आगे चलकर, वीरता-
 के साथ विजातीय राज्यसत्ताका सामना किया और जाति या राष्ट्र-
 की स्वतंत्रताके लिये युद्ध किया। और न वह कोई जीवनरहित
 राष्ट्र ही था जिसने अपनी सत्ता और संस्कृतिको सुरक्षित रखा
 और अबतक जीवित बना रहा तथा निरंतर विरोधी परिस्थितियोंके
 नित बढ़ते हुए दबावके कारण सर्वदा नया-नया जीवन प्राप्त करता
 रहा। भारतका वर्तमान धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक पुनरुज्ज-
 जीवन जिसे अब कभी-कभी नवजागरण कहा जाता है... परि-
 वर्तित अवस्थाओंमें उपयुक्त रूपमें, अभीतक कम सजीव पर महत्तर
 क्रियासमूहमें, उसी चीजकी पुनरावृत्तिमात्र है जो भारतीय इतिहास-
 में एक सहस्र वर्षतक पुनः-पुनः घटित होती रही है।

पतन



अतएव सभी महान् संस्कृतियोंके इतिहासमें हम देखते हैं कि उन्हें तीन कालोंमेंसे गुजरना पड़ा है, क्योंकि इन कालोंमेंसे गुजरना वस्तुओंके इस सत्यका एक आवश्यक परिणाम है। पहला काल होता है विस्तृत और शिथिल रचनाका; दूसरा काल वह होता है जिसमें हम रूपों, सांचों और छंदोंको निर्धारित होते देखते हैं; और अंतिम या संकटपूर्ण काल होता है वार्धक्य, शक्तिक्षीणता और विघटनका। यह अंतिम अवस्था सम्यताके जीवनमें अत्यंत संकटपूर्ण होती है; यदि वह अपना रूप नहीं बना कर पाये तो वह एक धीमे तथा लंबे कालतक चलनेवाले ह्रास की अवस्थामें प्रवेश करती है अथवा वह उन शक्तियों या रचनाओंकी तीव्र टक्करसे उत्पन्न मृत्यु-वेदनाको भोगते हुए नष्ट हो जाती है। अधिक प्रबल एवं अधिक प्रत्यक्षतः जीवन्त होती है, परंतु यह आवश्यक नहीं है कि ये शक्तियां अधिक महान् या अधिक सच्ची हों, परंतु यदि वह सीमित करनेवाले रूपोंको झाड़-फेंककर अपने-आपने उनसे मुक्त करने, अपने विचारोंको नया रूप देने और अपनी भावना को नया क्षेत्र प्रदान करनेमें समर्थ हो, यदि वह नूतन प्रगतियों की आवश्यकताओंको समझने तथा अधिकृत एवं आत्मसात् करनेके लिए इच्छुक हो, तो उसका पुनर्जन्म हो जाता है, उसे जीवन और विस्तार का एक नया अधिकार प्राप्त हो जाता है, उसका सच्चा पुनर्जन्म हो जाता है।

भारतीय सम्यता अपने बहुविध और धीर-स्थिर ढंगसे इन अवस्थाओंमेंसे गुजरी। इसकी पहली अवस्था एक महान् आध्यात्मिक विकासकी थी जिसमें कि आकार कोमल, लचकीले तथा इसकी

भावनाका
बौद्धिकता
जटिल, प
लय-तालमें
अत्यधिक
परिस्थिति
सामना कु
किया जात
क्रिया अंत
का गतिरो
साथ ही
लिये उस
उठा। उ
हैं जो परि
भारतमें दू
उत्थल-पुथल
संपूर्ण विन
धारा एक
आशाके दृ



नुभूति औ

भावनाका स्वतंत्रतापूर्वक प्रत्युत्तर देनेवाले थे। वह तरल गति प्रबल बौद्धिकताके युगमें परिणत हो गयी जिसमें सब चीजोंको विभिन्न, काफ़ी जटिल, पर विशद रूपसे विवेचित और फिर भी नमनीय रूपों तथा लय-तालमें स्थिर कर दिया गया। इसके परिणामस्वरूप एक अत्यधिक घनीभूत कठोरताका काल आया जिसमें वह कठोरता जटिल परिस्थितियोंके कारण डगमगा उठती थी और उन परिस्थितियोंका सामना कुछ अंशमें विचारोंके परिवर्तन तथा रूपोंके संशोधनके द्वारा किया जाता था। परंतु नियत आकारोंको कठोरतापूर्वक बांध देनेकी क्रिया अंतमें विजयी हुई और अनुप्रेरक भावनाका ह्रास, जीवन्त शक्ति-का गतिरोध और बाह्य रचनाका उत्तरोत्तर क्षय होने लगा। ह्रासके साथ ही अन्य संस्कृतियोंसे टक्कर हुई और उसके कारण कुछ समयके लिये उस ह्रासका वेग एकाएक रुक गया पर अंतमें वह फिर तीव्र हो उठा। आज हम एक प्रबल और निर्णायक संकटके बीच उपस्थित हैं जो पश्चिमके तथा जिन वस्तुओंका वह प्रतिनिधि है उन सबके भारतमें टूट पड़नेसे उत्पन्न हुआ है। इसके परिणामस्वरूप एक भारी उथल-पुथल हुई जिसने शुरू-शुरूमें हमारी संस्कृतिकी पूर्ण मृत्यु और संपूर्ण विनाशकी धमकी दी; किंतु इसके विपरीत अब उसकी गति-धारा एक महान् पुनरुज्जीवन, परिवर्तन और नवजागरणकी बलवती आशाके द्वारा ऊपरकी ओर मुड़ गयी है।

पुनर्जागरण

आज दुनियाकी आंखोंके सामने भारतमें एक राष्ट्रका निर्माण इतनी तेजीसे, इतनी स्पष्टतासे हो रहा है कि सभी उसकी प्रक्रिया, प्रगतिको देख सकते हैं और जिनमें सहा-
 नुभूति और अन्तर्भास है वे कार्यरत शक्तियोंको, काममें आनेवाले



द्रव्यको और दिव्य स्थपत्यकी पद्धतिको पहचान सकते हैं। यह प्रकृतिके कारखानेमें गढ़ी हुई या आधुनिक परिस्थितियोंद्वारा निर्मित कोई नयी जाति नहीं है, यह धरतीकी सबसे पुरानी जातियों में सबसे महान् संस्कृतियोंमेंसे एक है, जो प्राण शक्तिमें अदम्य, अमर, महानतामें सबसे अधिक उर्वर, जीवनमें सबसे गहरी, अन्तःशक्ति से संभावनाओंमें अद्भुत है, और यह राष्ट्र विदेशी रक्तसे तथा निम्न भिन्न प्रकारकी मानव संस्कृतियोंसे नाना प्रकारके बलके उद्भूत लेकर अपने-आपको सदाके लिये एक संगठित राष्ट्रीय इकाईके रूप में उठा रहा है। पहले यह सदृश जातियोंका समूह था जिसका जो एक था, संस्कृति एक थी और इस मौलिक एकताके कारण हमें एकताकी ओर प्रवृत्त होता था पर अत्यधिक उर्वरताके कारण नये-नये भेद और विभाग होते जाते थे, अतः वह अभीतक स्थायी रूपसे महाद्वीपके संगठनकी लगभग अलंघ्य बाधाओंको कभी नहीं लपका पाया। अब समय आ गया है जब इन बाधाओंको पार किया जा सकता है। जिस प्रयत्नको हमारी जाति अपने इतिहासके लंबे काल में सदासे करती आयी है, उसे ही अब एकदम नयी परिस्थितियों करेगी। दूरदर्शी प्रेक्षक उसकी सफलताकी भविष्यवाणी कर सकते हैं क्योंकि महत्त्वपूर्ण बाधाओंको पार किया जा चुका है या वे पार करनेकी प्रक्रियामें हैं। लेकिन हम और भी आगे जाते हैं और विश्वास करते हैं कि इसकी सफलता निश्चित है क्योंकि भारतीय स्वाधीनता, एकता और महानता संसारके लिये जहरी हो गयी है।

★



राष्ट्रीय मानसने अपनी अतीत संस्कृतिपर एक नयी दृष्टि डाली और उसके भाव तथा महत्त्वकी ओर फिरसे ध्यान उठा और साथ ही उसे आधुनिक ज्ञान और विचारों के संबंधमें भी देखा। इस जाग्रत होती हुई दृष्टि और प्रेरणासे

भारतीय
का नि
पूरे वैभ
सबसे उ
दर्शन, स
तीसरा
समस्या
सामंजस्य
से ही



हमें इस
यूरोपमें
त्व बहुत
अंतरात्म
और पूर्ण
क्षेत्र औ
न डरना
स्थित स
हुई है

पहुंचता
अमरताव
संगठित
उद्योगका
2

भारतीय नवजागरण जन्म ले रहा है और वही उसके भावी झुकाव-
का निर्णय करेगा। प्राचीन आध्यात्मिक ज्ञान और अनुभूतियों का
पूरे वैभव, गहराई और समग्रता के साथ उत्थान, उसका पहला और
सबसे अधिक महत्वपूर्ण काम है। दूसरा है इस आध्यात्मिकता का
दर्शन, साहित्य, कला, विज्ञान और विवेचनात्मक ज्ञान में प्रवाह।
तीसरा और सबसे कठिन काम है भारतीय आत्मा के प्रकाश में नयी
समस्याओं के साथ मौलिक व्यवहार और आध्यात्मिक समाज का अधिक
सामंजस्यपूर्ण रूप तैयार करने का प्रयत्न। इन तीन दिशाओं में सफलता-
से ही मानवजाति के भविष्य के लिये उसकी सहायता को नापा जायगा।

★



उसे भूतकाल के चीथड़े उतार देने चाहिये ताकि उसका
सौंदर्य निखर सके। उसे अपना शारीरिक रूप बदलना
चाहिये ताकि उसकी अन्तरात्मा नये रूप में प्रकट हो सके।
हमें इस बात से न डरना चाहिये कि कोई परिवर्तन उसे घटिया
यूरोप में बदल देगा। इस प्रकार की अधोगति के लिये उसका व्यक्तित्व
बहुत अधिक महान् है, इस प्रकार के आत्म-समर्पण के लिये उसकी
अन्तरात्मा बहुत ज्यादा शांत और अभिमानी है। ... एक स्वाधीन
और पूर्णता प्राप्त राष्ट्रीय जीवन की औद्योगिक शक्तियां ज्यादा विशाल
क्षेत्र और ज्यादा चौड़े मार्गों की मांग करती हैं। हमें इसके लिये
न डरना चाहिये कि आर्थिक क्रांति हमें भी उसी रुग्ण और अव्यव-
स्थित सामाजिक अवस्थामें पहुंचा देगी जैसी अवस्था आज के यूरोप की
हुई है और जिसे देखकर मानव की उच्चतर भावनाओं को आघात
पहुंचता है। भारत अपनी शिक्षा को, जो उसका जीवन और उसकी
अमरता का रहस्य है, कभी इस हद तक नहीं भुला सकता कि वह उस
संगठित स्वार्थ, क्रूरता और लोभ की प्रतिमूर्ति बन सके जिसे पश्चिम ने
उद्योग का नाम देकर सम्मानित किया है। भारत अपनी ही परिस्थि-

तियां उत्पन्न करेगा, व्यवस्थाके उन रहस्योंको खोज निकालेगा जिन्हें पानेके लिये समाजवाद व्यर्थ परिश्रम कर रहा है। वह फिरसे बार बार धरतीके वासियोंको बतायेगा कि संसार और आत्माका सम्बन्ध कैसे किया जाय।

अगर हम इस सत्यको अनुभव कर सकें, जो कुछ हो रहा है उसमें सिर्फ अपने लिये ही नहीं, सारे संसारके लिये जरूरी एक महान् और महत्वपूर्ण रूपांतरको देख सकें तो हम बिना किसी भय या आशंकाके भविष्यमें छलांग मार सकेंगे। भारत राष्ट्रोंका गुरु मानव-अन्तरात्मा और उसके गंभीर रोगोंका चिकित्सक है। वह फिरसे जगज्जीवनको नये ढांचेमें ढालनेके लिये और मानव आत्माकी शांतिको फिरसे स्थापित करनेके लिये नियत है।

★



हमारे नेताओं और अनुयायियोंको, दोनोंको ज्यादा गहरा साधनाकी जरूरत है, एक अधिक सीधे संपर्ककी जरूरत है उन भगवान् गुरुके साथ जो हमारे आन्दोलनके नेता हैं, हमें अंदरसे उठानेवाली और हमारे विचार और कर्मके पीछे स्थित महान् और तीव्र रूपमें प्रेरणाप्रद शक्ति है। भारतकी आध्यात्मिकता भारतकी साधना, तपस्या, ज्ञान और शक्ति ही भारतको स्वतंत्र और महान् बना सकती हैं। पूर्वकी ये महान् वस्तुएं अपनी ही अंग्रेजी पर्यायोंमें, अनुशासन, फिलासाफी और बलमें ठीक व्यक्त नहीं होतीं। तपस्या अनुशासनसे बढ़कर है, तपस्या है उस दिव्य शक्ति को, जो एक साथ सर्जक, पोषक और विनाशक है, आध्यात्मिक साधनोंके द्वारा अपने अंदर मूर्तिमन्त करना। ज्ञान फिलासाफीसे बढ़कर है, यह अन्तःप्रेरणा और सीधे संपर्कसे प्राप्त ज्ञान है, इसीसे प्राचीन आचार्योंने आध्यात्मिक दृष्टि कहा था। शक्ति बलसे बढ़कर



है। यह उस वैश्व ऊर्जाका व्यष्टिगत रूप है जो नक्षत्रोंको चलाती है। भारतके उत्थानमें पूर्वकी विजय होनी चाहिये। योगीको राजनीतिक नेताके पीछे खड़ा होना चाहिये या उसके अंदर अभिव्यक्त होना चाहिये। रामदासको शिवाजीके साथ मिलकर एक शरीरमें जन्म लेना चाहिये, मेजिनी और कावूरका मेल होना चाहिये।

*

जो लोग भारतका नेतृत्व करेंगे उन्हें उदारमना और बहुमुखी होना चाहिये। हम यह मानना चाहते हैं कि जब अवतार आयेगा तो वह केवल धार्मिक गुरु ही नहीं बल्कि राजनीतिक नेता, महान् शिक्षक, समाजका पुनरुद्धारक और सहकारी उद्योगका नायक होगा, उसमें कवि, मनीषी और कलाकारकी आत्मा होगी। संक्षेपमें कहें तो वह संसारको मार्ग दिखाने और नया रूप देनेके लिये जो भावी भारतीय जाति उठ रही है उसका संक्षिप्त रूप और महान् निदर्शन होगा।

भारतका मिशन

भारतकी प्रकृति, उसका भगवन्निर्दिष्ट कार्य, उसका कर्तव्य कर्म, पृथ्वीकी भवितव्यतामें उसका भाग, वह विशिष्ट शक्ति जिसका वह प्रतिनिधि है — यह सब उसके विगत इतिहासमें लिखा हुआ है और यही उसके वर्तमान कष्टों और अनिपरीक्षाओंका गुप्त प्रयोजन है। हमें अपनी आत्माके बाह्य रूपोंका पुनर्गठन करना होगा; किंतु प्राचीन रूपोंके पीछे विद्यमान आत्माको ही हमें उन्मुक्त करना और उसकी सुरक्षा करते

हुए उसे नये और ओजस्वी विचार-प्रतीक, सांस्कृतिक मूल्य, उपकरण एवं महत्तर रूप प्रदान करने होंगे। और जबतक इन सारभूत वस्तुओंको मान्यता देते रहेंगे और इनके मूल भाव प्रति निष्ठावान् रहेंगे, तबतक अवस्थाओंके अनुकूल अत्यंत उग्र की मानसिक या भौतिक व्यवस्थाएं एवं अत्यंत चरम कोटिके सांस्कृतिक एवं सामाजिक परिवर्तन करनेसे भी हमें कोई हानि नहीं हो परंतु स्वयं इन परिवर्तनोंको भी भारतकी ही भावना एवं सांस्कृतिक अनुरूप ढालना होगा, किसी अन्य भावना एवं सांकेतिक अनुसार नहीं हमें अमरीका या यूरोपकी भावना एवं जापान या रूसके सांकेतिक अनुरूप नहीं होना है। हम जो कुछ हैं और जो कुछ बन सकते हैं एवं जो बननेका हमें यत्न करना चाहिये — इन दोनोंके बीच बड़ी भारी खाईको हमें देखना-समझना होगा। परंतु यह हमें किस प्रकारके अनुत्साहके भावके साथ या अपने अस्तित्वसे और अपने आत्माके सत्यसे इंकार करनेकी वृत्तिको लेकर नहीं, बल्कि देखनेके लिये करना होगा कि हमें अभी कितनी दूरतक प्रगति करनी है। क्योंकि, हमें इस प्रगतिकी सच्ची धाराओंको खोजना होगा और साथ ही अपने अंदर अभीप्सा और प्रेरणा, तेज और शक्ति प्राप्त करनी होगी जिससे हम उन धाराओंकी परिकल्पना कर सकें उन्हें कार्य-रूपमें परिणत कर सकें।

★



भारतका केंद्रीय विचार यह है कि एक सनातन सत्ता एक परम आत्मा है जो यहां जड़में छिपी हुई है तब इसके अन्दर अंतर्धामी रूपसे सदा विद्यमान है।

भौतिक स्तरपर वह व्यवितके पुनर्जन्मके द्वारा सत्ताकी स्तर-मर्यादा में ऊपरकी ओर विकसित हो रही है। इस प्रकार विकसित होते होते वह मनोमय मनुष्यके अन्दर विचारोंके जगत्में तथा सचेतन में वह

नैतिकता
अचेतन
उसके क्षेत्र
और यह
साधनके
मनुष्यके
चेतनाके
देती।
है; उसका
त्मिक चे
है, उसका
जाती है;
है। प्रग
प्रगतिको
जानेवाली
उदात्त वि
सत्ताकी
और, किस
तम आद
जगत्में ए



होगा? वि
मेंसे वह

नैतिकता अर्थात् धर्मके क्षेत्रमें प्रविष्ट हो जाती है। यह सफलता, अचेतन प्रकृतिपर यह विजय उसकी दिशाओंको विकसित करती है, उसके क्षेत्रको विस्तृत करती तथा उसके स्तरोंको उन्नत करती है, और यह विकास तबतक चलता रहता है जबतक कि मन-रूपी साधनके सात्त्विक या आध्यात्मिक अंशकी बढ़ती हुई अभिव्यक्ति मनुष्यके अन्दरके व्यष्टिभूत मनोमय पुरुषको मनसे परेकी शुद्ध आध्यात्म चेतनाके साथ अपना तादात्म्य स्थापित करनेके योग्य नहीं बना देती। भारतवर्षकी सामाजिक व्यवस्था इसी विचारपर आधारित है; उसका दर्शन इसीको सूत्रबद्ध करता है; उसका धर्म आध्यात्मिक चेतना तथा उसके फलोंकी प्राप्ति के लिये अभीप्सास्वरूप है, उसकी कला तथा उसके साहित्यमें यही ऊर्ध्वमुखी दृष्टि पायी जाती है; उसका संपूर्ण धर्म या जीवन-विधान इसीपर प्रतिष्ठित है। प्रगतिको वह अवश्य स्वीकार करता है, किंतु इस आध्यात्मिक प्रगतिको ही, न कि नित-अधिकाधिक समृद्ध एवं कार्यदक्ष बनती जानेवाली जड़वादी सभ्यताकी बाह्य विकासकी प्रक्रियाको। इस उदात्त विचारपर जीवनकी प्रतिष्ठा तथा आध्यात्मिक एवं शाश्वत सत्ताकी ओर उसका प्रवेग ही उसकी सभ्यताका विशिष्ट मूल्य है। और, किसी भी प्रकारकी मानवीय त्रुटियोंके होते हुए भी, इस उच्चतम आदर्शके प्रति उसकी निष्ठाने ही उसके निवासियोंको मानव-जगत्में एक विलक्षण जाति बना दिया है।

★



उसे जिस यंत्रणाके दबावमेंसे गुजरना है उसमें कौन-सी चीज सहारा देगी? जो दुर्बलताएं उसपर टूटी पड़ रही हैं उनसे छुटकारा पानेमें कौन-सा बल सहायक होगा? जिस धूलके साथ हजारों जंजीरें उसे बांधे हुए हैं उस धूल-मेंसे वह अपने-आपको कैसे उठाएगा? केवल अतिमानसिक आदर्श-

का बल, केवल अतिमानसिक संकल्पकी विराट् शक्ति, केवल शक्तिकी प्रचण्डता जो अभीतक मनुष्यने जो कुछ प्रयास किया उससे बढ़कर, दिव्यताके निकट पहुंचती है। लेकिन उसे यह शक्ति, यह प्रचण्डता मिलेंगे कहां? स्वयं अपने अन्दर... अपने अन्दर चमत्कार करनेकी, अकाट्य बंधनोंसे अपने-आप छुड़ानेकी और भगवान्‌को धरतीपर उतार लानेकी अलौकिक क्षमता है। उसमें संकल्प-शक्तिका ऐसा रहस्य है जो और किसी में नहीं है। उसके अन्दर यह श्रद्धा जगानेके लिये, यह सत्त्व जगानेके लिये एक ऐसे आदर्शकी जरूरत है जो उसे प्रयास करने लिये प्रेरित करे।... यह मानवमें भगवान् या भगवान्‌में मानव आदर्श है जो कि सनातन धर्मका पुराना आदर्श है। लेकिन इसका उपयोग राजनीतिक समस्याओं और राष्ट्रीय नवजागरण लिये करना है जैसा कि अभीतक कभी नहीं किया गया। भारत का लक्ष्य है उस आदर्शको प्राप्त करना और फिर सारे संसार को प्रदान करना। भारतने एक ऐसा धर्म विकसित किया है जो हृदय, मस्तिष्क और मनुष्यकी क्रियात्मक क्षमताकी सभी बाधाओं वस्तुओंको अपने अन्दर समा लेता है। लेकिन अभीतक इसका उपयोग आधुनिक राजनीतिक लिये नहीं किया गया है। मानवताकी सहायता कर सकनेसे पहले उसे यह काम करना पड़ेगा कि ध्येयका आवश्यक होना ही इसके पुनरुत्थानका औचित्य है। जातिकी रक्षा करनेके लिये अपनी रक्षा करना ही वह सहज शक्ति है जो उसे वह शक्ति, वह बल और वह प्रचण्डता देगी जो उसे अपनी नियतिको सिद्ध करनेके योग्य बना सकेगी।

*



हमारा प्रयास यह होगा कि हम मार्ग तैयार करें एक महान् और उच्च परिवर्तनकी तैयारी शुरू करें और जाति तथा भारतके भविष्यको बनानेका

अपने सामने रखें। मानवताका आत्मामें नया जन्म ही हमारा आदर्श है। हमारा जीवन आध्यात्मिकताके द्वारा प्रेरित उस महान् नव जन्म और सर्जनके लिये कर्मशील शरीर उत्पन्न करनेका प्रयास हो।

आध्यात्मिक आदर्श ही हमेशा से भारतका विशिष्ट भाव और प्रेरणा रहा है, किन्तु कालका प्रवाह और मानवताकी आवश्यकता उस आदर्शके लिये एक नये दिशामान और नये रूपकी मांग करता है। काल-पुरुषके प्रयोजनके लिये अब पुराने रूप और तरीके पर्याप्त नहीं हैं। भारतको भविष्यमें जो महान् कदम उठाने हैं उनकी परिपूर्ति उन लकीरोंपर चलकर नहीं हो सकती जो अति संकीर्ण हैं। हमारी आध्यात्मिकता एक ऐसे जीवनकी आध्यात्मिकता नहीं है जो बूढ़ा, दुनियासे थका-मांदा, और मायाके तथा ईश्वरीय सृष्टिके दयनीय दारिद्र्यके भावसे लदा हुआ हो। हमारा आदर्श वह आध्यात्मिकता नहीं है जो जीवनसे मुंह मोड़ती है बल्कि वह है जो आत्माकी शक्तिसे जीवनपर विजय प्राप्त करती है। हमारा आदर्श संसारको भंगवान्के आविर्भावके प्रयासके रूपमें स्वीकारना ही नहीं बल्कि अभीतक जो आविर्भाव हुआ है उससे अधिकके लिये प्रयास करके मानवताका रूपांतर करना तथा मनुष्य और ईश्वरके बीचके परदेको हटाना है। तब ही जिस दिव्य मनुष्यत्वकी क्षमता हमारे अन्दर है उसका जन्म होगा और हमारा जीवन आत्माके सत्य, ज्योति और शक्तिसे पुनः गठित होगा। हमें अपने कार्यके स्वामीको अपनी सब क्रियाओंकी आहुति देनी होगी मानवके अन्दर उसकी महत्तर आत्माकी अभिव्यक्ति करनी होगी और समस्त जीवनको योगका रूप देना होगा।...

भारतने इस रहस्यको प्राप्त कर लिया था परन्तु उसे पर्याप्त रूपमें क्रियान्वित नहीं किया। गीतामें इसे संक्षेपमें "योगस्थः कुरु कर्माणि" कहा है। उसका सिद्धान्त है सभी कर्मोंको योगमें स्थित

होकर, भगवान्‌के साथ एक होकर, उच्चतम आत्माके आधार और सभी इन्द्रियोंको आत्माके शासनमें रखकर करना। हम मानते हैं कि मनुष्यके लिये यह न केवल संभव है बल्कि उसकी सामान्य समस्याओं और कठिनाइयोंका सच्चा हल है। हम यह संदेश बार-बार दोहरावेंगे और उद्धृत हुए तरुण भारतके सामने यह आदेश बार-बार रखेंगे। आध्यात्मिक जीवन मानवकी सब प्रवृत्तियोंको समावेश करेगा और आनेवाले महान् युगके लिये दुनियाके रूपांतरको सुलभ बनायेगा। पुराने युगकी इस वर्तमान संध्या केवल भारत ही, जो प्राचीन कालसे इस रहस्यको ग्रहण किये हुए है, हमारा महान् रूपांतरका नेतृत्व कर सकता है। यही भारतका उद्देश्य है और उसकी मानव-सेवा होनी चाहिये। व्यक्तिके लिये जैसे उसमें आंतरिक आध्यात्मिक जीवनकी खोज की थी वैसे ही अब सामाजिक जातिके लिये सर्वांगीण सामूहिक अभिव्यक्तिकी खोज करनी होगी और मानवमात्रके लिये सामूहिक पद्धति और नयी आध्यात्मिकताका आधार बनाना होगा।

हमारा पहला ध्येय होगा इस आदर्शकी घोषणा करना, परन्तु आवश्यक कदमके रूपमें आध्यात्मिक परिवर्तनपर जोर देना, और जो उसे स्वीकार करते हैं तथा उसे परिपूर्ण करनेके लिये सच्चाई से प्रयास करते हैं उन्हें इकट्ठा करना। दूसरा ध्येय होगा—सिर्फ वैयक्तिक ही नहीं वरन् इस सिद्धान्तपर आधारित सामूहिक जीवनका निर्माण करना। इतना ही नहीं, हमारी प्रत्येक वास्तविक-विधिके साथ-साथ एक आंतरिक परिवर्तनकी भी आवश्यकता है और वह एक ही साथ आध्यात्मिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, सामाजिक और आर्थिक क्रिया होनी चाहिये। उसका कार्यक्षेत्र एक साथ वैयक्तिक और सामूहिक, प्रादेशिक और राष्ट्रीय होगा, अंतमें यह कार्य न केवल देशके लिये वरन् समस्त मानवजातिके लिये होगा। इसका पहला परिणाम होगा नव-सर्जन, एक आध्यात्मिक शि

त्मिक शि
विभाजनपर
और संपूर्ण
और समूह
पूर्ण। आ
पश्चिमी न
रित होगा
हमारी
युवक ही
हैं या भार
कम्यूनिज्म
जकड़े हुए
तरको नही
हृदयमें पूर्ण
आदर्शके
अपने-आपक
करेंगे। उ
उठानेके लि
मानव प्राप्ति
लिये समूह
आदर्श एक
देता है वह
है कि यह
होती हुई
अस्तव्यस्तत
जो भावना
नयी मान

त्मिक शिक्षा और संस्कृति, एक विशालतर सामाजिक शक्ति — विभाजनपर आधारित नहीं बल्कि एकतापर — व्यक्तिकी स्वतंत्रता और संपूर्ण विकास, इतना ही नहीं, दूसरोंके साथ उसका ऐक्य और समूहकी विशालतर आत्मा और मानवताके प्रति उसका सम-पण। आर्थिक समस्याके हलकी ओर पहला प्रयास होगा जो पश्चिमी नमूनेपर आधारित न होकर सामुदायिक सिद्धान्तपर आधारित होगा जो भारतके लिये स्वाभाविक है।

हमारी पुकार तरुण भारतके लिये है। नयी सृष्टिके निर्माता युवक ही होने चाहियें, वे नहीं जो वैयक्तिक स्पर्धाको स्वीकार करते हैं या भारतके भावी आदर्शके रूपमें पूंजीवादी या पश्चिमके पार्थिव साम्यूनियज्मको अपनाते हैं, वे भी नहीं जो पुरानी धार्मिक रुढ़ियोंमें जकड़े हुए हैं और आत्माद्वारा जीवनकी स्वीकृति और उसके रूपांतरको नहीं स्वीकार कर सकते। बल्कि वे सब जो मनमें और हृदयमें पूर्णतर सत्यको स्वीकार करनेके लिये स्वतंत्र हैं और महत्तर आदर्शके लिये श्रम करनेको तैयार हैं। वे ऐसे मानव होंगे जो अपने-अपको भूत या वर्तमानको नहीं बल्कि भविष्यको समर्पित करेंगे। उन्हें अपने समस्त जीवनको अपनी निम्न सत्तासे ऊपर उठानेके लिये एकाग्रचित्त होना होगा। अपने अन्दर और सब मानव प्राणियोंमें भगवान्को पाना होगा, और देश तथा मानवताके लिये समूचे मन, प्राणसे अधिक श्रम करना होगा। अभीतक यह आदर्श एक छोटा-सा बीजमात्र है, और जो जीवन इसे मूर्त रूप देता है वह स्वयं एक नन्हा-सा केंद्रमात्र है, किंतु हमारी ध्रुव आशा है कि यह बीज एक महान् वृक्ष बनेगा, और केंद्र एक सदा-विस्तृत होती हुई रचनाका हृदय होगा। इस विसर्जित होते हुए जगत्की अस्तव्यस्ततामें जन्म लेनेके लिये नयी मानवता संघर्ष कर रही है। जो भावना हमें प्रेरणा दे रही है उसमें दृढ़ विश्वासके साथ हम उस नयी मानवताके, और भावी भारतके ध्वजावाहकोंमें अपना स्थान

लेते हैं। वह महत्तर भारत हमारी प्राचीन मांके विराट्
थके-मांदे शरीरका कायाकल्प करके उसे नया जीवन देगा।

★



सच्ची आध्यात्मिकता जीवनका त्याग करना नहीं, क
दिव्य परिपूर्णताके साथ जीवनको पूर्ण बनाना है।

यही चीज है जिसे अब भारतको संसारके सम्मुख रखना होगा।

★



देशमें एक ऐसा दल अवश्य होना चाहिये जो आ
त्मिक ज्ञानके द्वारा भारत और विश्वकी रक्षा करे
एक प्रबल और संहत संकल्पशक्तिका निर्माण करे।

एकमात्र भारत ही विश्वमें सत्यको ला सकता है। भागवत सं
और शक्तिको अभिव्यक्त करके एकमात्र भारत ही विश्वके सा
अपना संदेश प्रचारित कर सकता है, पर वह कार्य परिष्क
जड़वादका अनुकरण करनेसे नहीं होगा। भागवत इच्छाका अनु
करनेपर भारत आध्यात्मिक पर्वतके शिखरपर जगमगा
सत्यका मार्ग दिखायेगा और विश्व-ऐक्यका संगठन करेगा।



भारत
अधिक स



प्र० —

उ० —

रात्मा में
लिये सेव
सफल हो



और हम
ईमानदार
अडिग वि

आधुनिक भारतकी समस्या



भारत आधुनिक मानवजातिकी सारी कठिनाइयोंका प्रती-
कात्मक प्रतिनिधि बन गया है।

भारत उसके पुनर्स्थानका देश होगा — एक अधिक ऊंचे और
अधिक सत्य जीवनमें पुनर्स्थान।

★



भारतकी सबसे पहली समस्या है अपनी अन्तरात्माको
फिरसे प्राप्त करना और उसे अभिव्यक्त करना।

प्र० -- भारतकी आत्माको फिरसे कैसे पाया जाय ?

उ० — अपनी अन्तरात्माके प्रति सचेतन होओ। तुम्हारी अंत-
रात्मामें भारतकी आत्माके लिये अत्यधिक रस हो और वह उसके
लिये सेवा वृत्तिके साथ अभीप्सा करे। अगर तुम सच्चे हुए तो
सफल होओगे।

★



प्र० — वर्तमान संकटकालमें प्रत्येक भारतीयका आज क्या
कर्तव्य है ?

उ० — अपने तुच्छ अहंकारपूर्ण व्यक्तित्वके परे उठ जाओ
और हम सबकी मां, भारतकी सुयोग्य संतान बनो, अपने कर्तव्योंको
ईमानदारी और सरलताके साथ पूरा करो और भागवत कृपापर
अडिग विश्वास रखकर सर्वदा प्रसन्न और निश्चित बने रहो।

★



प्र० — अगर आपसे कहा जाय कि भारतके बारेमें दृष्टिको एक वाक्यमें प्रकट कीजिये तो आपका उत्तर होगा ?

उ० — संसारका गुरु बनना भारतकी सच्ची नियति है।

प्र० — इसी तरह अगर आपसे कहा जाय कि अपनी दृष्टि अनुसार आज की वास्तविकतापर एक वाक्यमें टिप्पणी कीजिये आप क्या कहेंगी ?

उ० — वर्तमान वास्तविकताका एक बहुत बड़ा मिथ्यात्व है, शाश्वत सत्यको ढके हुए है।

प्र० — आपके अनुसार अंतर्दर्शन और वास्तविकताके बीच का मुख्य बाधाएं कौन-सी हैं ?

उ० — १ — अज्ञान, २ — भय, ३ — मिथ्यात्व।

प्र० — स्वाधीनताके बाद भारतने सब मिलाकर जो प्रगति की क्या आप उससे संतुष्ट हैं ?

उ० — नहीं।

प्र० — वर्तमान कालमें हमारी सबसे बड़ी उपलब्धि क्या है आप उसे इतना अधिक महत्त्व क्यों देती हैं ?

उ० — सत्यके लिये जिज्ञासाका जागना क्योंकि सत्यके बिना यथार्थता नहीं है।

प्र० — इसी तरह क्या आप सबसे अधिक दुखदायी असफलता क्या कर सकती हैं ? आप किस आधारपर उसे इतना दुखदायी मानती हैं ?

उ० — कपट, क्योंकि कपट विनाशकी ओर ले जाता है।

*



प्र० — राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय जीवनके वर्तमान और भविष्यकी दृष्टिसे भारतको शिक्षाका लक्ष्य क्या बनाना चाहिये ?

उ० — अपने बच्चोंको मिथ्यात्वके त्याग और सत्यकी अभिव्यक्तिके लिये तैयार करना ।

प्र० — इस ऊंचे आदर्शतक पहुंचनेके लिये देशको कौन-से कदम उठाने चाहिये ? इस दिशामें आरंभ कैसे किया जा सकता है ?

उ० — जड़त्वको आत्माकी अभिव्यक्तिके लिये तैयार करके ।

प्र० — भारतकी सच्ची विशिष्टता क्या है और उसकी नियति क्या है ?

उ० — जगत्को यह सिखाना कि जबतक जड़तत्त्व आत्माकी अभिव्यक्ति न बन जाय वह मिथ्या और निर्वीर्य है ।

प्र० — माताजी भारतकी वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगतिको किस दृष्टिसे देखती हैं ? वे मनुष्यमें आत्माके विकासके लिये क्या योगदान दे सकती हैं ?

उ० — उसका एकमात्र उपयोग है, आत्माकी अभिव्यक्तिके लिये भौतिक आधारको अधिक मजबूत, अधिक पूर्ण और अधिक समर्थ बनाना ।

प्र० — देश राष्ट्रीय एकताके बारेमें बहुत चिंतित है । इस विषयमें माताजीकी दृष्टि क्या है ? भारत अपने प्रति और संसारके प्रति अपना कर्तव्य किस तरह पूरा करेगा ।

उ० — राष्ट्रोंकी एकता संसारकी अटल नियति है । लेकिन राष्ट्रोंकी एकता संभव होनेके लिये, पहले हरे राष्ट्रको अपनी एकता सिद्ध करनी होगी ।

प्र० — भारतको भाषाका प्रश्न बहुत तंग करता है। इस मा
में हमारी ठीक वृत्ति क्या होनी चाहिये ?

उ० — एकताको जीवित तथ्य होना चाहिये, ऊपरसे लादा हु
मनमाना नियम नहीं। जब भारत एक होगा तो सहज रूपसे उ
पास ऐसी भाषा होगी जिसे सब समझ सकते हों।

प्र० — शिक्षा सामान्य रूपसे साक्षरता और सामाजिक प्रति
बन गयी है। क्या यह दूषित प्रवृत्ति नहीं है ? लेकिन शिक्षा
उसका आंतरिक मूल्य और उसका मूलभूत आनंद तत्त्व कैसे दिया जा

उ० — परिपाटियोंसे बाहर निकलो और आत्माके विकासके लि
आग्रह करो।

प्र० — हमारी शिक्षा किन भ्रमों और भ्रांतियोंसे भरी है ?
उनसे कैसे बच सकते हैं ?

उ० — क) सफलता, अजीविका और धनको दिया जानेवा
ऐकांतिक महत्त्व,

ख) आत्माके साथ संपर्क और अपनी सत्ताके स
विकास और उसकी अभिव्यक्तिको सबसे अधिक महत्त्व देनेका आ
करो।

★



रहा है।

भारतकी आत्मा एक और अविभाज्य है। भारत विस्
किये जानेवाले अपने जीवन-कार्यके विषयमें सचेतन है
वह उसकी अभिव्यक्तिके बाहरी साधनोंकी प्रतीक्षा क

★



भारतकी आत्मा ही देशको वास्तविक रूपमें एक कर सकती है।

बाह्य रूपसे भारतके प्रदेश स्वभाव, प्रवृत्ति, संस्कृति तथा भाषाकी दृष्टिसे एक-दूसरेसे बहुत भिन्न हैं। उनको कृत्रिम उपायोंसे एक करनेके परिणाम भयंकर हो सकते हैं।

लेकिन उसकी आत्मा एक है जो आध्यात्मिक सत्य — सृष्टिकी आत्मिक एकता और जीवनके भागवत उद्गम — के लिये तीव्र अभीप्सा करती है। इस अभीप्साके साथ मिलकर सारा देश उस एकताको फिरसे प्राप्त कर सकता है जिसका अस्तित्व उच्चतर मानस-के लिये कभी लुप्त नहीं हुआ।

★



भारतका भविष्य एकदम स्पष्ट है। भारत जगत्का गुरु है। विश्वका भावी संगठन भारतपर निर्भर है। भारत एक जीवंत आत्मा है। भारत आध्यात्मिक ज्ञानको विश्व-मूर्तिमान कर रहा है। भारत-सरकारको इस क्षेत्रमें भारतके हितको स्वीकार करना चाहिये और अपने कार्यको इसीके अनुसार योजित करना चाहिये।

★



भारत भविष्यके लिये कार्य करे और उसमें आगे रहे। इस तरह वह जगत्में अपना स्थान फिरसे पा लेगा।

बहुत समयसे भेद और विरोध द्वारा शासन करनेकी प्रथा आयी है।

अब एकता, परस्पर मेल-मिलाप और सहयोगसे शासन करने समय आ गया है।

*

सहयोगीको चुननेके लिये व्यक्तिका मूल्य उसके दलकी अपेक्षा ज्यादा महत्त्वपूर्ण है।

किसी देशकी महानता किसी दलकी विजयपर नहीं, सब दलोंकी एकतापर निर्भर है।

*



भारत वह देश है जहां अंतरात्माके विधानका राज अब कार्य कर सकता है और चलना चाहिये। और अब यहां उन क्रांतियों का समय आ गया है। इसके अतिरिक्त दुर्भाग्यवश यह कि वह देशकी चेतना विदेशी प्रभाव और शासनके कारण दूषित हो गयी है। लेकिन सब कुछ होते हुए भी जिसके पास अद्वितीय आध्यात्मिक परंपरा है, ऐसे देशके लिये यही एकमात्र निस्तार है।

*



एकमात्र 'भागवती शक्ति' ही भारतकी सहायता कर सकती है। यदि तुम देशके अंदर विश्वास और मेल उत्पन्न कर सको तो वह मनुष्यनिर्मित किसी भी शक्तिसे अधिक शक्तिशाली होगा।

*



आओ, हम सब भारतकी महानताके लिये काम करें।

हमें क्या करना चाहिये



भगवान् इस आंदोलनके पीछे हैं और उन्हें किसी ऐसेकी जरूरत नहीं है जो उन्हें सफलताका उपाय बताये। इस बारेमें वे स्वयं देख लेंगे। हम चाहे जो योजनाएं बनायें, जब कार्यका समय आयेगा तो हम उन्हें बिल्कुल बेकार पायेंगे। हमें उन क्रांतियों हमेशा आश्चर्योंसे भरी होती हैं और जो भी यह सोचता है कि वह क्रांतिके साथ शतरंज खेल सकता है वह शीघ्र ही जान जायगा कि भगवान्की पकड़ कितनी जबरदस्त है और उनके इरादोंके आगे मानव बुद्धि कितनी नगण्य है। क्रांतिके अवसरोंपर वही आदमी प्रभुत्व पा सकता है जो कोई योजना नहीं बनाता लेकिन अपने हृदयको पवित्र रखता है ताकि भगवान् अपनी इच्छा घोषित कर सकें। जीवनका महान् नियम यह है कि योजनाएं न हों लेकिन एक अपरिवर्तनशील ध्येय हो। अगर संकल्प उस ध्येयपर लगा हो जिसे प्राप्त करना है तो परिस्थितियां अपने-आप उचित मार्ग दिखा देती हैं लेकिन योजना बनानेवाला हमेशा अप्रत्याशितकी ठोकरें ही खाता रहता है।





हम व्यक्तिसे और विशेष रूपसे उठते हुए युवकोंसे कहें हैं कि भारतका काम करो, जगत्का काम करो, भगवान् का काम करो। तुम इन आदर्शोंको सिद्ध करना तो रहा पोस भी नहीं सकते अगर तुम अपने मनको यूरोपीय विचारों अधीन रखो या जीवनको भौतिक दृष्टिसे देखो। भौतिक दृष्टि तुम कुछ भी नहीं हो, आध्यात्मिक दृष्टिसे तुम सब कुछ हो। आर्य विचारोंका, आर्य संयमका, आर्य चरित्रका और आर्य जीवनका उद्धार करो। वेदांत, गीता, योगका उद्धार करो। केवल आध्यात्मिक बुद्धि या भावमें ही नहीं, अपने जीवनमें उनका उद्धार करो। अपने जीवनमें उतारो और तुम महान्, बलवान्, शक्तिशाली, और निर्भय बन जाओगे। जीवन या मृत्युमें तुम्हारे लिये कभी आतंक न होगा। कठिनाई और असंभाव्यताके शब्द तुम्हारे मनकोपसे उड़ जायेंगे। क्योंकि आत्मामें शाश्वत बल है, तुम्हें सामान्य पानेसे पहले अपने अन्दरका राज्य, आंतरिक स्वराज्य प्रस्थापित करना होगा। वहां माता निवास करती हैं और पूजाकी प्रतिष्ठा, मैं हूँ ताकि वे तुम्हें शक्ति दे सकें। मांपर विश्वास रखो, उनका सेनासेवा करो, अपने संकल्पोंको उनके संकल्पमें खो दो, अपने देशके बड़े अहंमें और अपने पृथक् स्वार्थको मानवताकी सेवाके मिले दो। अपने ही अन्दर सारी शक्तिके स्रोतको पा लो। सब कुछ, सामाजिक सामर्थ्य, बौद्धिक उत्कर्ष, राजनीतिक स्वाधीनता, मानव-विचारपर प्रभुत्व, संसारका नेतृत्व, सब कुछ मिल जायगा।

★



उनमें यह दृढ़ श्रद्धा होनी चाहिये कि भारतको उद्धार होगा और महान् बनना होगा और चाहे कुछ भी प्रत्येक कठिनाई, प्रत्येक पराजयको उनकी सहायता होगी, उनके उद्देश्यको आगे बढ़ाना होगा। यह विश्वास

चाहिये कि अब प्रवाह ऊपरकी ओर है, पतनका समय समाप्त हो चुका। सवेरा, बस, होनेको है और एक बार प्रकाश दिखायी दे जाय तो फिर रात कभी नहीं हो सकती। ऊषा पूरी होनेको है और सूर्य क्षितिजसे ऊपर उठेगा। भारतके भाग्यका सूर्योदय होगा और वह सारे भारतको अपने प्रकाशसे भर देगा, भारतको प्रकाशमग्न करके सारे एशियाको प्रकाशमग्न करेगा, सारे संसारको प्रकाशमग्न करेगा। हर घंटा, हर पल उन्हें भगवान्-द्वारा आदिष्ट दिवसकी उज्ज्वलताके निकट ही ला सकता है।

★

भविष्य युवकोंके हाथमें है। एक तरुण और नवीन जगत् विकासके पथपर है और तरुणोंको ही इसका निर्माण करना है। लेकिन हम सत्य, साहस, न्याय, उच्च अभीप्सा, और निश्छल पूर्णताका जगत् बनाना चाहते हैं। इस आन्दोलनके भविष्यमें कायर, स्वार्थी और ऐसे वातूनीके लिये कोई स्थान नहीं है जो शुरूमें तो आगे बढ़ता है पर बादमें अपने साथियोंकी सेवाको कठिनाईमें छोड़कर अलग हो जाता है। वीर, स्पष्टवादी, सरल हृदय, साहसी और अभीप्सा करनेवाला युवक ही वह एकमात्र आधार है जिसपर भावी राष्ट्रका निर्माण हो सकता है।

★

जैसे चैतन्य निमाई पण्डित होना छोड़कर कृष्ण हो जाते थे, राधा हो जाते थे, बलराम हो जाते थे उसी तरह हममेंसे हर एकको अपना पृथक् जीवन संजोये रखनेकी जगह राष्ट्रमें जीना चाहिये। जैसे मुमुक्षुका मन मोक्षके विचारमें लीन रहता है उसी तरह हमारे मनको राष्ट्रीय पुनरुद्धारकी आशामें लीन रहना चाहिये।

हमारा त्याग अनाम तपस्वीके त्याग जैसा पूर्ण होना चाहिये। स्वतंत्र और महिमामयी मांका दर्शन करनेके लिये हमारा भाव ऐसा ही उन्मुख और सर्वग्राही होना चाहिये जैसा चैतन्यमें श्रीगुरुदेवके दर्शनके लिये था। देशके लिये हमारा त्याग ऐसा ही संपूर्ण उत्साह-भरा होना चाहिये जैसा जगाई मघाईका था जिन्हीं गौरांगके पीछे संकीर्तनमें चलनेके लिये एक राज्यका शासन छोड़ दिया। यज्ञवेदीपर हमारी बलि वैसी ही उदारतापूर्ण निष्ठुरताके साथ संपूर्ण होनी चाहिये जैसी कार्थेजके माता-पिता होती थी जो अपने बच्चोंको मोलोककी भेंट करनेके लिये अग्निरियोजना से गुजारते थे। अगर कोई शर्त हमारे आत्म-त्यागकी पूर्णताको डटती है, अगर कोई मोल-तोल हमारी आहुतिकी पूर्णताको बनाता है, अगर कोई संदेह हमारी श्रद्धा और हमारे उत्साहके को बिगाड़ता है, अगर कोई अहंका विचार हमारे प्रेमकी को गंदा करता है तो मां संतुष्ट नहीं होंगी और अपनी उपस्थिति को रोके रखेंगी। हम उन्हें आनेके लिये पुकारते हैं लेकिन तक यह पुकार हमारे हृदयकी तलीसे नहीं आयी है। मांके देहलीपर हैं पर अन्दर आनेसे पहले वे सच्ची पुकारते रुकी हुई हैं। ऐसी पुकारके लिये जो हृदयसे उठती हो। अभीतक अपने और देशके बीच, दुविधामें हैं। हम आना तो मांकी सेवामें देते हैं और पन्द्रह आने अपने पत्नीके लिये, अपने बच्चोंके लिये, अपनी संपत्ति, अपने नाम, ख्याति, अपनी सुरक्षा और अपने आरामके लिये रखते हैं। आपको देनेसे पहले मां सब कुछ मांगती हैं। जबतक राजा ने अपनी नसोंका खून नहीं दिया तबतक मांने उनके आगे होकर वरदान मांगनेके लिये नहीं कहा। जबतक शिवाजी चरणोंमें अपना सिर चढ़ानेके लिये तैयार नहीं हुए तबतक ने दर्शन देकर उनका हाथ रोककर यह आदेश नहीं दिया कि जातिको स्वतंत्र करो।

हये। जिन्होंने देशोंको आजाद किया है उन्हें अपने प्रयासकी सफलता-
 से पहले संपूर्ण त्यागकी घोर यंत्रणामेंसे गुजरना पड़ा है। जो
 भारतको स्वतंत्र करनेकी अभीप्सा करते हैं उन्हें पहले मांके मांगे
 संपूर्ण धाम चुकाने होंगे। हम जिन योजनाओंके द्वारा राष्ट्रको तैयार
 करना चाहते हैं, औद्योगिक पुनरुद्धारकी योजना, शिक्षाके पुनरुद्धार-
 की योजना, स्वावलंबनद्वारा राजनीतिक पुनरुद्धारकी योजना — ये
 सब ज्यादा गहरे पुनरुद्धारके गौण रूप हैं। स्वाधीन हो सकनेसे
 पहले देशको उस पुनरुद्धारमेंसे गुजरना होगा। मां हमसे योजना,
 परियोजना या उपायोंकी मांग नहीं करतीं। वे स्वयं ऐसी योजना,
 परियोजना और पद्धतियां देंगी जो हमारी सोची हुई सभी चीजोंसे
 को सही अच्छी होंगी। वे हमसे हमारे हृदयोंकी, हमारे जीवनकी
 मांग करती हैं — न कुछ कम न कुछ ज्यादा। . . .

उपनिषद् पुनरुद्धार वास्तवमें पुनर्जन्म है, पुनर्जन्म बुद्धिसे नहीं आता, भरी
 किन अंधारियोंसे नहीं आता, नीतिसे नहीं आता, यंत्रके परिवर्तनसे नहीं
 मांके जाता। वह आता है नया हृदय पानेसे, हम जो कुछ थे उसकी
 ननेके अग्निमें आहुति देनेसे और मांमें नवजन्म लेनेसे। हमसे
 हो। आत्मत्यागकी मांग की जाती है, वे हमसे पूछती हैं: “कितने मेरे
 लिये जियेंगे, कितने मेरे लिये मरेंगे?” वे उत्तरकी प्रतीक्षामें हैं।

★

सागर लहराता है और उससे कौन कहेगा कि उसे कैसे
 लहराना चाहिये? आंधी चलती है और कौन-सी मानव
 बुद्धि उसकी गतिविधिका नियमन करेगी? भागवत
 की इच्छा ही क्रान्तियोंका एकमात्र विधान है और हमें अपने-
 आपको उस प्रज्ञाके द्वारा चुने गये माध्यमसे बढ़कर कुछ माननेका
 कोई अधिकार नहीं है। जब हमारा काम पूरा हो जाय तो हमें

यह अनुभव करना चाहिये और इसके लिये प्रसन्न होना चाहिये हमें इतना करनेका अवसर दिया गया। हम जो बड़ी-से-बड़ी सेवाएं कर सकते हैं उनके लिये क्या यह पुरस्कार काफी नहीं कि हमारा नाम इतिहासमें उन लोगोंके साथ लिखा जाय जिन्होंने अपने कर्मसे या वाणीसे या उससे भी बढ़कर कष्ट-सहनद्वारा सेवासे आनेवाले महान् और स्वतंत्र भारतकी तैयारी की। क्या यह काफी नहीं है कि हम इस अभिज्ञताके साथ कर्ममें आये कि महान् रथपर हमारी उंगलि भी लगी थी और चाहे जिस नगण्य रूपमें क्यों न हो, हमने भी उसे आगे बढ़ानेमें सहायता दी होगी। फिर भले भगवान्की पुस्तकके सिवा कहीं इसका लेख न हो। आखिर सेवाओंकी यह बात बहुत ओछी है। हम मांकी सेवा पुरस्कारके लिये करते हैं, क्या हम भगवान्का कर्म भाड़ेपर करते हैं? देशप्रेमी अपने देशके लिये जीता है क्योंकि जीना चाहिये, वह उसीके लिये मरता है क्योंकि वह उसीकी सेवा है। और वस।

★



श्रीअरविदने सर्वदा अपनी जन्मभूमिको बहुत प्रिय प्यार किया। परंतु उन्होंने चाहा कि वह महान् श्रेष्ठ हो, पवित्र हो और विश्वमें अपने भगवद्भक्तोंके कार्यके उपयुक्त हो। उन्होंने यह स्वीकार नहीं किया कि अंध स्वार्थी और अज्ञानपूर्ण पक्षपातोंके नीच और जघन्य लोभ डूब जाय। यही कारण है कि उनकी इच्छासे पूर्ण मेल रखते हुए हम मनुष्यजातिके सत्य, प्रगति और रूपांतरका झंडा ऊंचा उठा रहे हैं।

24, Gar

Courage and love are the only indispensable virtues; even if all the others are eclipsed or fall asleep, these two will save the soul alive.

Sri Aurobindo



**INDIAN TEA
STORAGE AGENCY**

24, Ganesh Chandra Avenue, Calcutta-700 013

जो जीवन लक्ष्यहीन होता है वह सुखहीन भी होता है।
 तुम्हारा लक्ष्य होना चाहिये उच्च और विशाल, उदार और
 और फिर तुम्हारा जीवन तुम्हारे लिये और दूसरोंके लिये
 बहुमूल्य हो जायगा।



सहारनपुर सर्विस स्टेशन

पेट्रोल पम्प, देहरादून रोड

सहारनपुर

हमारे अन्य प्रकाशन

१. वच्चोंके श्रीअरविद	...	रु.	१.००
२. हमारी मां	...	रु.	२.००
३. राजकुमार	...	रु.	२.००
४. श्रीअरविद : जीवन और दर्शन	...	रु.	६.००
५. माताजी एक झलक	...	रु.	५.००
६. नर और नारी	...	रु.	२.००
७. माताजी और भारत	...	रु.	२.००
८. शिक्षाके आधार	...	रु.	२.००
९. मंत्र वचन (१)	...	रु.	२.००
१०. मंत्र वचन (२)	...	रु.	२.००
११. ध्यान	...	रु.	२.००
१२. श्रीअरविद और उनका आश्रम	...	रु.	२.००
१३. योगके तत्त्व	...	रु.	५.००
१४. जगन्माता	...	रु.	४.००
१५. समयकी आवश्यकता	...	रु.	२.००
१६. शिक्षाके आयाम	...	रु.	२.००
१७. दिव्य शतक	...	रु.	२.००
१८. वन	...	रु.	२.००
१९. समर्पण और कृपा	...	रु.	२.००
२०. श्वेत कमल (सजिल्द)	...	रु.	२५.००
श्वेत कमल (अजिल्द)	...	रु.	२०.००
२१. माताजी और श्रीअरविद	...	रु.	२५.००
२२. माताजी और श्रीअरविद	...	रु.	२५.००
कहानियां जो कुछ और भी कहती हैं :			
२३. सतरंग	...	रु.	३.००
२४. प्रेमकी विजय	...	रु.	२.००
२५. कालके गर्भमें	...	रु.	३.००
२६. दिलका आईना	...	रु.	२.००

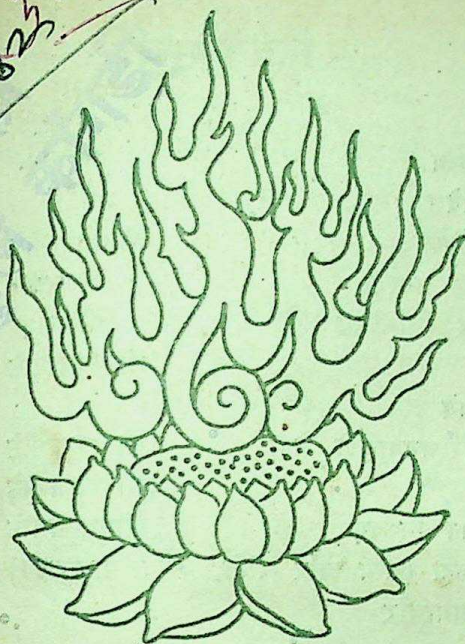
सोसायटी समाचार

दर्शन : १५ अगस्त १९८० को श्रीअरविंदके जन्मदिनके उपलक्ष्य
दर्शनार्थी श्रीअरविंद और श्रीमाताजी दोनोंके कमरोंके दर्शन
सकेंगे। सोसायटी सदस्योंके लिये रेल कंसेशन भी है।

श्रीअरविंद सोसायटीने फूलोंके बारेमें १२५ स्लाइड्सका एक सेट
तैयार किया है जिसके साथ ही कैसेटपर उनके आध्यात्मिक
वतलाये गये हैं उन फूलोंके रंग-रूप आदिके बारेमें जहां कहीं
सका है माताजीके शब्द उद्धृत किये गये हैं। कैसेटमें सारी
ख्या अंग्रेजीमें की गयी है और उसकी पृष्ठभूमिमें संगीत होता है।

१२५ स्लाइडोंके इस सेटका दाम एक हजार अस्सी रुपये है
पैकिंग और डाक-व्यय इसके अतिरिक्त। सोसायटीके केंद्रों
शाखाओंको दस प्रतिशत कटौती दी जायगी। जिन्हें इस विषय
रस हो वे श्रीमहादेविया, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी ६०५००१
से पत्र-व्यवहार करें।

पिछले दिनों खाजी पालम (गुंटूर), येवतमाल (महाराष्ट्र)
अकोला, खम्मम और साल्ट लेक सिटी (कलकत्ता) में सोसायटी
की नयी शाखाएं खुली हैं।



उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

अखिल भारतीय पत्रिका

अग्निशिखा

श्रीअरविंद सोसायटीकी मासिक पत्रिका

दिसंबर १९८०

वर्ष ११, अंक ५ पूर्णांक १२५

विषय-सूची

जीवनका लक्ष्य	
भारतका संदेश	
शारीरिक शिक्षा	श्रीमातृवाणीसे
हिन्दू-मुस्लिम समस्या	श्रीअरविंद
एकता और विभिन्नता	श्रीअरविंद
तीन प्रश्न	श्रीमातृवाणीसे
संकटके समय	
बिना जाने भगवान्की सेवा	श्रीमातृवाणीसे
मार्गदर्शन	श्रीमातृवाणीसे
कुछ करनेका निश्चय	श्रीमातृवाणीसे
माताजीने कहा (सत्य और भ्रांति, अपना वातावरण)	
सोसायटी समाचार	

वार्षिक : ८.००

आजीवन १२५.००

पत्र, चेक, ड्राफ्ट, आदि, भेजनेका पता :

संपादक अग्निशिखा, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००१

संपादक : रवींद्र

प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-६०५००१

जीवनका लक्ष्य

Is the aim of life to be happy?

This is just putting things topsy-turvy.

The aim of human life is to discover the Divine and to manifest it. Naturally this discovery leads to happiness; but this happiness is a consequence, not an aim in itself. And it is this mistake of taking a mere consequence for aim of life that has been the cause of most of the miseries which are afflicting human life.

क्या सुखी होना जीवनका लक्ष्य है ?

यह तो चीजोंको ऊटपटांग ढंगसे रखना हुआ।

मानव जीवनका लक्ष्य है भगवान्को खोजना और उन्हें ओ
व्यक्त करना। स्वभावतः इस खोजसे सुख मिलता है; परंतु
सुख अपने-आपमें लक्ष्य न होकर एक परिणाम है। और मनु
जातिपर आनेवाली अधिकतर विपदाओंका कारण है एक साम
अनुवर्ती परिणामको जीवनका लक्ष्य मान बैठनेकी भूल।

(२८-३-१९३६)

भारतका संदेश

भारत मनुष्यके अन्दर और उसके बाहर एक ऐसे चैत्य जग
को मानता है जो समस्त भौतिकका स्रोत और आधार है। उ
के पास उसकी चाबी भी है। यूरोप धुंधले रूपमें इसे पाने ल
है। भारतने द्वारसे परेके जगत्की झांकी पा ली है। उ
हाथ चाबी टटोल रहे हैं, लेकिन अभीतक वह मिली नहीं। अम
स्वीकृत और प्रमाणित हो जाय तो भगवान्पर विश्वास क
ज्यादा आसान हो जाता है। भारतका आध्यात्मिक संदेश
है: विश्वात्मा एक ही है, हमारी आत्माएं न सिर्फ भाई-भाई
न सिर्फ एक प्रकृति और एक पदार्थकी है, बल्कि एक ही तान्
ऐक्यमें रहती और उसीकी ओर बढ़ती है। तात्पर्य यह है कि
प्रेम उच्चतम विधान है और समस्त विकासको उसीकी ओर
करनी चाहिये। लीलाका उद्देश्य है आनन्द और प्रेमको चरित
करना ही आनन्दकी पराकाष्ठा है। अतः आत्म-त्याग ही आ
भूत विधान है। गीताने कहा है कि समस्त सृष्टिके पिताने आ

अग्निवि
दिसंबर १९

में यज्ञके द
को रूप दि
तन यज्ञ है
अंकी सचेत
नैतिकता के
का आधार
अपने छोटे-से
बड़े 'स्व' को
विधान है।
ही संतुष्ट न
सामने इसे
हो सके कि

मां, कुछ
शिक्षामें हमने
आसन लाद
विना अनु
आसनके विन
व्यक्तको न स
पाचन, वृ
चितन, स
आसन न हो

'मौखिक

दिसंबर १९८०

में यज्ञके द्वारा ही समस्त सृष्टि, समस्त नैतिकता, समस्त व्यवहार-
को रूप दिया। समस्त जीवन संकल्पके द्वारा किया गया या अचे-
तन यज्ञ है। इसके बारेमें अवगत होना और अपनी समस्त कामना-
ओंकी सचेतन आहुति देना इस नैतिक ज्ञानका आरंभ है। जो
नैतिकता केवल प्राप्त करनेके लिये देती है, जो स्वार्थको नैतिकता-
का आधार बनाती है वह घटिया और अर्द्ध-वर्बर नैतिकता है।
अपने छोटे-से व्यक्तिगत 'स्व' को छोड़ देना और इसके अन्दर ज्यादा
बड़े 'स्व' को पाना — राष्ट्रमें, मानवजातिमें, भगवान्में — यह वेदांतका
विधान है। यह भारतका संदेश है। हां, उसे यह संदेश देकर
ही संतुष्ट नहीं हो जाना चाहिये; उसे ऊंचा उठकर समस्त संसारके
सामने इसे अपने जीवनमें चरितार्थ करना चाहिये, ताकि यह सिद्ध
हो सके कि यह मनुष्यों और राष्ट्रोंके लिये संभव आचार-शास्त्र है।

शारीरिक शिक्षा

मां, कुछ लोग इस बातकी आलोचना करते हैं कि शारीरिक
शिक्षामें हमने बहुत सारे नियम बना रखे हैं और बच्चोंपर कड़ा अनु-
शासन लादते हैं।

विना अनुशासनके शारीरिक शिक्षा संभव नहीं है। कठोर अनु-
शासनके विना स्वयं शरीर भी काम न कर सकेगा। असलमें, इस
विषयको न स्वीकारना ही व्याधियोंका मुख्य कारण है।

पाचन, वृद्धि, रक्त-संचरण, सब, सब कुछ ही तो एक अनुशासन
है। चिंतन, गतियां, चेष्टाएं सभी तो एक अनुशासन है। यदि अनु-
शासन न हो तो लोग तुरंत बीमार पड़ जाते हैं।

(१८-२-१९७२)

मौखिक उत्तर (यही अनुच्छेद)।

मधुर मां,

विद्यार्थी, खासकर किशोर, यह शिकायत करते हैं कि प्रायः उन शारीरिक व्यायामोंको भी करनेके लिये बाधित किये जाते जिन्हें करना वे पसंद नहीं करते और जो उन्हें रुचिकर नहीं लगते मां, क्या आप इसके बारेमें कुछ कहेंगी ?

हम धरतीपर अपना मनचाहा करनेके लिये नहीं हैं, बल्कि प्रकृति करनेके लिये हैं।

शारीरिक व्यायाम तुम्हारे मनोरंजन या तुम्हारी सनकोंको करनेके लिये नहीं, बल्कि शरीरको विकसित करने और मजबूत बनाने के लिये विधिवत् अनुशासनके रूपमें बनाये गये हैं।

सच्ची बुद्धिमानी तो यह है कि जो कुछ करो खुशीसे करो, यह संभव है यदि तुम जो कुछ करो उसे प्रगतिका साधन बना कर पूर्णता पाना बहुत कठिन है और इसे उपलब्ध करनेके लिये हमें बहुत प्रगतिकी आवश्यकता होती है।

सुखकी खोजमें जाना निश्चय ही अपने-आपको दुःखी करने सबसे अच्छा उपाय है।

यदि तुम सचमुच शांति और आनंद चाहते हो तो तुम्हारी लगन होनी चाहिये :

“मुझे ऐसी कौन-सी प्रगति करनी चाहिये जिससे मैं भगवान् जान सकूँ, उनकी सेवा कर सकूँ ?”

तुम इसे ‘व’को दिखा देना। जो कुछ बच्चे कहते हैं उसपर कान नहीं देना चाहिये था। वह बहुत दिनोंसे यहां है। उसे बात मालूम होनी चाहिये।

यह (“सुखकी खोजमें जाना निश्चय ही अपने-आपको दुःखी करने का”)

‘लिखित प्रश्न और उत्तर। निम्नलिखित’ टिप्पणी मौखिक

दिसंबर १९८०

का सबसे अच्छा उपाय है") पूर्ण सत्य है। यह इस बातकी पुष्टि करता है कि यदि तुम अपने क्षुद्र अहंको संतुष्ट करना चाहते हो तो तुम जरूर दुःखी होओगे। निश्चय ही! अपने-आपको दुःखी करनेका यह सबसे अच्छा तरीका है। यह कहना : "ओह, यह मुझे उबा देता है; ओह, मुझे जो पसंद हो वह करना चाहिये; ओह, फलाना मेरे साथ अच्छा व्यवहार नहीं करता; ओह, जिदगी मुझे वह नहीं देती जो मैं चाहता हूं!" ओह!!!

"क्या मैं वह हूं जो मुझे होना चाहिये ?

"क्या मैं वह करता हूं जो मुझे करना चाहिये ?

"क्या मैं उतनी प्रगति कर रहा हूं जितनी मुझे करनी चाहिये ?"

तब वह रोचक बन जाता है। समझे !

"अपनी अगली प्रगतिके लिये मुझे क्या सीखना चाहिये ? मेरी कौन-सी कमजोरियां हैं जिन्हें मुझे सुधारना चाहिये ? कौन-सी कठिनाई है जिसे मुझे पार करना है ? मेरी कौन-सी कमजोरी है जिसे मुझे मिटाना है ?" वस यही।

और तब, स्वभावतया, अगले क्षण : "भगवान्की सेवा करने और उन्हें समझनेके लिये मैं कैसे समर्थ बनूं ?" वस यही !

मैंने खास तौरसे इसे लिख दिया है ताकि तुम 'च'को दिखा सको।

शारीरिक शिक्षाके प्रशिक्षकोंके लिये कुछ उपयोगी सुझाव

(ये वाक्य प्रणवने अंग्रेजीमें लिखकर माताजीको दिये थे, और लगता है कि फ्रेंचमें इनका अनुवाद माताजी और पवित्रने किया था)।

- (१) कक्षामें आनेसे पहले पाठकी तैयारी करके आओ। सोचो और हर व्योरेको पहलेसे निर्धारित कर लो।
- (२) ठीक समयसे जरा पहले आओ; कक्षाके लिये जो कुछ जरूरी है उस सबकी जांच कर लो और उसे तैयार रखो। काममें आनेवाले सभी उपकरणोंको तैयार रखो।

- (३) तुम खुद समयके पाबंद बनो और छात्रोंसे समयकी पाबंदी आग्रह करो।
- (४) ठीक ढंगसे कपड़े पहनो और सीटी ले जाना मत भूलो। (१८) हर
- (५) लड़कोंसे आग्रह करो कि ठीक ढंगकी वरदी पहनें। भू
- (६) काम आरंभ करनेसे पहले कम-से-कम समय लो। (१९) ए
- (७) अच्छी तरह बोलना और उत्तम आदेश देना सीखो। या
- (८) जब जरूरी समझो तभी बोलो। तुम्हारी सभी व्याख्याएँ ए
- संक्षिप्त होनी चाहिये। कामको प्रधानता दो। के
- (९) प्रारंभिक कार्यमें यथार्थतापर बल दो। दैहिक फल प्राप्त प्र
- लिये व्यायामको बार-बार दुहराओ। चा
- (१०) खेलके समय खूब छूट दो और उसमें खुलकर खुशीसे (२०) ज
- लेनेके लिये प्रोत्साहन दो। लेकिन उदासीनता और क
- शासनहीनताको प्रश्रय मत दो। क
- (११) लड़कोंमेंसे ही मुखियोंको चुनो और कक्षाके कार्योंमें अ (२१) ज
- फलके लिये उनका उपयोग करो। वृ
- (१२) ऐसा प्रयास करो कि लड़के अपने-आपको अनुशासित कर र
- रस लें। प्र
- (१३) कक्षाकी समझदारीको जगाओ ताकि छात्र कार्यक्रममें अपना स
- गयी क्रियाओंके तर्कसंगत और शिक्षात्मक मूल्यको समझें। स
- (१४) व्यायामकी गतिविधिको कक्षाके पाठके लिये पोषक द्रव्य (२२) सूर
- काम करना चाहिये और अंततक उसे ठीक रीतिसे च
- रहना चाहिये : थकावट और परेशानीसे बचनेके लिये छात्र (२३) नि
- की उम्र और उनकी क्षमताको ध्यानमें रखकर सावधानी
- व्यायामका चुनाव करो। आ
- (१५) थकावट और ऊबको दूर भगानेका मूल मंत्र है मनोरंजन व्य
- (१६) और अधिक प्रयासके लिये प्रोत्साहित करनेका सबसे ज
- तरीका है अच्छे कामकी सराहना। ज
- (१७) रुचिको बनाये रखनेके लिये हेर-फेर और विविधता (२४) प्र

दिसंबर १९८०

है। और पाठमें मनोयोगको बनाये रखनेके लिये जहरी है व्यायाम और सातत्य।

(१८) हर श्रमसाध्य व्यायामसे पहले शरीरको गरमा लेना नहीं भूलना चाहिये।

(१९) एक स्वर्णिम नियम जिसे सदा याद रखना चाहिये : वे व्यायाम और क्रियाएं जिन्हें प्रशिक्षक अच्छी तरह जानता है एक लंबे अभ्यासके बाद ही आसान बनी हैं, पर वे नौसिखिये-के लिये नयी और कभी-कभी कठिन भी होती है। अतः प्रशिक्षकको एक ही दिनमें पूर्णताकी आशा नहीं करनी चाहिये।

(२०) जबतक छात्र धीरे-धीरे, सावधानीसे कठिन व्यायाम और कसरतके लिये तैयार नहीं हो जाते तबतक उन्हें ये चीजें करनेकी अनुमति कभी नहीं देनी चाहिये। बार-बारकी असफलताएं आसानीसे आत्म-विश्वासको नष्ट कर देती हैं।

(२१) जब प्रशिक्षक कुछ समझाये या दिखाये तब लड़कोंको अर्ध-वृत्तमें खड़े हो जाना चाहिये और छोटे कदके लड़कोंको आगे। प्रशिक्षकको इस तरह खड़ा होना चाहिये कि वह सबको देख सके और छात्र भी अपनी-अपनी जगहसे प्रशिक्षकको देख सकें।

(२२) सूरजकी ओर मुंह करके छात्रोंको कभी खड़ा नहीं करना चाहिये; जहांतक संभव हो उन्हें छायामें ले आना चाहिये।

(२३) नियमित कार्यक्रम आरंभ करनेसे ठीक पहले पूरे दलको सावधानकी मुद्रामें खड़ा करना अच्छा है। यदि जरा भी बाधा आ जाय तो पूरे दलको आरामकी मुद्रामें कर देना चाहिये। व्यर्थमें छात्रोंको सावधानकी मुद्रामें रखना उचित नहीं, और जब छात्र सावधानकी मुद्रामें खड़े हों तो उन्हें जैसे-तैसे खड़े होने देनेकी अनुमति नहीं देनी चाहिये।

(२४) प्रत्येक पाठका आरंभ सिलसिलेवार और आकर्षक ढंगसे होना

चाहिये और समाप्ति भी उसी आकर्षक ढंगसे हो। आरंभके कुछ पहले पूरे दलको कुछ क्षणोंके लिये ध्यानकी मुद्रामें खड़ा होना होगा और छुट्टी देनेके ठीक पहले भी इसी क्रमको दोहराना चाहिये। यह क्रियामें एकाग्र और सचेतन प्रयासको सरल बनाता और उसके सामने लक्ष्य रखता है।

(२५) सारी शारीरिक क्रियाओंके पहले "सुरक्षा"का मूलमंत्र होना चाहिये।

श्रीअरविन्द-वचन :

हिन्दू-मुस्लिम समस्या

(इस शताब्दीके आरंभसे ही हिन्दू-मुस्लिम समस्या भारतवर्ष में तंग करती आयी है। कुछ दलोंने मुसलमानोंका विरोध और कुछ खुशामदका हथियार अपनाया, परंतु दोनों समान रूपसे असफल हुए और परिणामस्वरूप, भारतका विभाजन हुआ। इसपर भी समान कुछ समयके लिये दब भले गयी हो, पर शांत नहीं हुई। अब उसने हिन्दुओंमें ही काफी फूट डाल दी है और जातिवाद अपना नि उठाता जा रहा है। १९०९ में श्रीअरविन्दने लिखा था :

हमें एक बातपर विश्वास है, हिन्दू-मुस्लिम एकता राजनीति समझौते या खुशामदके द्वारा नहीं आ सकती। इसे ज्यादा गहरा जाकर मन और हृदयमें खोजना होगा, क्योंकि जहां फूटके कारण वहीं उन्हें दूर करनेका उपाय भी ढूंढना होगा। इसका समाधान ढूंढते हुए यह याद रखना जरूरी है कि हमारी कठिनाइयोंका, हमारे भेद-भावका सबसे बड़ा कारण है गलतफहमी। प्रेम प्रेमको आ

अग्निशिखा
विसंवर
लिये बा
परस्पर-य
का प्रयास
प्रेमीका
उसमें भी
वदस्यलमें
मिथ्या
खुशामद
कठिनाईका
राजनीतिव
लेकिन रा
पाठकोंके
मुस्लिम इ
राष्ट्रीय वि
उपेक्षा कि
जीवनके स
सरिक-मि
सकती है,
एक दूसरेके
श्रीअरविन्द-
सारे सं
चाहे जितने

विसंवर १९८०

लिये बाधित करता है और बल ही बलवानको मना सकता है। हमें परस्पर-परिचय और सहानुभूतिके द्वारा गलतफहमीके कारणोंको हटाने-का प्रयास करना चाहिये। हमें अपने मुसलमान भाईके प्रति देश-प्रेमीका अविचल प्रेम बढ़ाना चाहिये। हमें याद रखना चाहिये कि उसमें भी नारायणका निवास है, उसे भी हमारी दिव्य जननीने अपने वसस्थलमें स्थायी आवास प्रदान किया है। लेकिन हमें उसकी ओर मिथ्या रूपसे बढ़ना, स्वार्थपूर्ण दुर्बलता या भीरुताके कारण उसकी क्षुभामद करना बंद कर देना चाहिये। हमें विश्वास है कि इस कठिनाईका समाधान करनेके लिये यही एक व्यावहारिक उपाय है। राजनीतिक दृष्टिसे हमें हिन्दू-मुस्लिम समस्यामें कोई रस नहीं है, लेकिन राष्ट्रीय समस्याके रूपमें इसका बहुत अधिक महत्त्व है। हम अपने पाठकोंके सामने मुहम्मद और इस्लामको एक नये प्रकाशमें रखने, मुस्लिम इतिहास और सभ्यताको ज्यादा न्यायपूर्ण दृष्टिसे प्रस्तुत करने, राष्ट्रीय विकासमें मुसलमानोंका ठीक मूल्यांकन करने, कठिनाइयोंकी ज्वाला किये बिना उनके सामुदायिक जीवनका अपने सामुदायिक जीवनके साथ समन्वय करनेका प्रयास करेंगे। भ्रातृभाव और पार-स्परिक-मिलनके उपाय ढूँढ़ेंगे। बौद्धिक सहानुभूति केवल नजदीक ला सकती है, केवल हृदयकी सहानुभूति ही एक कर सकती है। लेकिन एक दूसरेके लिये जमीन तैयार करती है।

(सेटेनरी वाल्यूम, भाग २)

श्रीअरविन्द-वचन :

एकता और विभिन्नता

सारे संसारमें मूल रूपसे एक एकता काम कर रही है। ऊपर चाहे जितनी विभिन्नता हो, जड़में एकता ही है। विकास विभिन्नताओं-

मेंसे होता हुआ एक जटिल एकताकी ओर जा रहा है। मानवजाति एकताकी ओर बढ़ रही है।

लेकिन एकता और एकरूपतामें बहुत फर्क है। जीवन विभिन्नता की भित्तिपर खड़ा है। जीवनकी मांग है कि सार्वभौम एकता होते हुए हर व्यक्ति, हर समुदाय अपने-आपमें सबसे अलग अनोखा हो। सबको मार-पीटकर एक कर देने से एकता एकरूपता आ सकती है। जीवनमें सुव्यवस्था बहुत जरूरी लेकिन यह बाहरसे आरोपित नहीं की जा सकती। सबसे अच्छी व्यवस्था वह होगी जो अधिक-से-अधिक स्वाधीनता आधारपर खड़ी हो। स्वाधीनतामें सजीव विभिन्नता होती है अपने-आपको जाननेकी, खोजनेकी वृत्ति होती है।

प्रकृति हर जातिमें वनस्पति, पशु, पक्षी, आदि, सभीमें छोटे दल बनाती है और दलके हर अंगमें निजी व्यक्तित्व भरता है। इसी तरह मानवजातिकी एकताके लिये भी यह जरूरी है कि उसमें विभिन्न स्वतंत्र समुदाय हों और ये समुदाय स्वतंत्र व्यक्तित्व के स्वाभाविक मेलसे बने हों। अभी या निकट भविष्यमें एकता कर सकना असंभव है, परंतु करनेलायक चीज यही है। हम अपने-आपके जितने नजदीक पहुंचते जायेंगे उतने ही ठीक मार्गपर होंगे। कृत्रिमता मनुष्यकी बहुत-सी बीमारियोंकी जड़ है। उसके कारण मानवजाति अपने प्रति या प्रकृतिके प्रति सच्ची नहीं रहती। इसीलिये बार-बार ठोकरें खाती और कष्ट पाती है।

भाषाओंकी विभिन्नतामें हम स्वाभाविक समुदायोंकी आवश्यकता देख सकते हैं। पिछली शताब्दीके अन्त और इस शताब्दीके आरंभ में सारी दुनियाके लिये एक भाषा गढ़नेके बहुत प्रयास हुए, परंतु उनमेंसे कोई भी सफल नहीं हो पाया। एक सामान्य भाषा की आवश्यकता या उपयोगितासे इंकार नहीं किया जा सकता। पाश्चात्य देशोंमें लैटिन और बादमें फ्रेंचने यह काम किया। इसी प्रकार सारे भारतमें संस्कृतका प्रसार था। यह बात निश्चित है और उसकी

दिसंबर १९८०

एकीकरणका कोई ऐसा प्रयास सफल नहीं हो सकता जो भाषाओं-की विभिन्नताको, उनके स्वतंत्र अस्तित्वको संकटमें डाले।

कहते हैं कि बाबुलके मीनारमें शापके कारण भाषाओंकी विभिन्नता आयी थी। हो सकता है कि इससे कुछ हानियां हुई हों, परंतु सब मिलाकर देखें तो भाषाओंकी विभिन्नता एक वरदान ही है। आज भाषाओंकी विभिन्नता बहुत बड़ी अड़चन नहीं है। पहले जमानेमें भाषाओंकी भिन्नता परकोटा बनकर मनुष्य समुदायोंको एक-दूसरेसे अलग करती थी, उसके कारण आपसमें सहानुभूतिका अभाव था और बहुत सारी गलतफहमियां पैदा होती रहती थीं। लेकिन यह मानवजातिके उस समयके विकासके लिये एक जरूरी कदम था। उस समय व्यक्तिके विकासकी बहुत सख्त जरूरत थी। आज स्थिति काफी भिन्न है। वह संकीर्णता अब उस रूपमें नहीं है, परंतु रेल, जहाज, तार, आदि के कारण कम अवश्य हो गयी है। आजके मनुष्य और आजकी जातियां एक-दूसरेको ज्यादा अच्छी तरह जाननेके लिये उत्सुक हैं, एक-दूसरेके विचार, भाव और व्यक्तित्वसे अधिक परिचित हैं। कोई कारण नहीं कि हमारी संकीर्णता धीरे-धीरे लुप्त न हो जाय।

भाषाओंकी विभिन्नता मानवजातिमें एकता और विभिन्नता लानेका काम करती है। भाषाकी एकता उसे बोलनेवालोंके बड़े समुदायमें विस्तृत हाते हुए विचार, बनते हुए स्वभाव और प्रौढ़ होते हुए भावोंमें एक तरहकी एकता लाती है। यह एक बौद्धिक, सौंदर्यग्राही अभिव्यक्तिशील नाता है जो जहां विभाजन है उसे हल्का करता है और जहां एकता है उसे मजबूत करता है। यह नाता किसी जाति या राष्ट्रको अपनी चेतना देता है, एक प्रकारकी अभिव्यक्ति और उपलब्धिके एक-से वृत्त प्रदान करता है। दूसरी ओर, यह देशों और राष्ट्रोंको अलग करनेवाला सबसे बड़ा तत्त्व है, क्योंकि हर एक भाषा, स्वभावतः, उसे बोलनेवालोंके समुदायकी आत्मा और उसकी शक्तिका चिह्न है। हर भाषा बोलनेवाला समुदाय

एक विशेष भाव, विचार करनेका तरीका, जीवन, ज्ञान और भवके प्रति विशेष प्रकारकी वृत्ति विकसित कर लेता है। वह औरोंके विचार, अनुभव और आध्यात्मिक प्रभावोंको अपना भी है तो उन्हें अपने रंगमें रंग लेता है और इस तरह मानवजाति एक नया तत्त्व पा लेती है। इसलिये किसी देश या जातिके लिए यह बहुत महत्त्वपूर्ण है कि वह अपनी भाषाको न सिर्फ बनाये बल्कि मजबूत जीवित-जाग्रत सांस्कृतिक उपकरणका रूप दे। जाति अपनी भाषा खो देती है वह अपनी वास्तविक जीवित-पूर्णताके साथ नहीं जी सकती। भाषाके कारण राष्ट्रीय जीवन जो लाभ होता है वह मानवजातिके लिये भी लाभदायक है।

अपनी भाषा खोकर जातियां कितना कुछ खो देती हैं इसका अच्छा उदाहरण अंगरेजी साम्राज्यसे मिल सकता है। अंगरेजी उपनिवेश चारों ओर फैले हुए थे, लेकिन भाषा, संस्कृति, जाति की दृष्टिसे वे इंग्लैंडके हिस्से ही बने रहे। दक्षिण अमरीका में भी स्पेनका और उत्तर इंग्लैंडका प्रदेश-सा है। अपनी भाषाके कारण वे इंग्लैंडके प्रदेश जैसे हैं। उनमें चाहें जितनी विशेषता हों, फिर भी वे राजनीतिक, आर्थिक शक्तिके होते हुए संस्कृति-सौंदर्यबोध या कलाकी दृष्टिसे अपना अलग-अलग स्थान नहीं बना पाये हैं।

इसका एक बड़ा कारण यह है कि जो भाषा आत्माभिव्यक्ति का उपकरण होती है, जो राष्ट्रीय मनको गढ़ती और उसके द्वारा जाती है वह उस भूमिकी नहीं है। उसे अपनी प्रेरणाके साथ समुद्र-पार जाना पड़ता है। अमरीका अपनी प्रतिभाशक्ति-क्षमताके द्वारा अंगरेजीको बदलकर एक नयी ओजस्वी भाषा बना सकता था जो उसकी जातीय विशेषताओंके अनुकूल हो, उसे पुराने जमानेमें हुआ करता था; परंतु आधुनिक साधनोंके कारण अब यह संभव नहीं है।

आइरलैंड की अपनी भाषा थी; अपनी संस्कृति थी। जब

दिसंबर १९८०

रेजोंने उसपर कब्जा कर लिया और वहांपर अंगरेजी लाद दी गयी तो केवल आइरलैंड ही नहीं, सारी मानवजातिको हानि हुई। इस केन्ट जातिमें चैत्य रूझान, सूक्ष्म बुद्धि और नाजुक कल्पना-शक्ति थी। उन सबपर एक साथ पानी फिर गया और एक जीती-बागती जाति सदियोंके लिये मर-सी गयी। इस क्षतिके बदले अंगरेजों और उनकी संस्कृतिपर केल्टिक जातिका कुछ हल्का-सा प्रभाव पड़ा और कुछ आइरलैंडवासी अपनी अपनायी हुई भाषा, अंगरेजीमें सुन्दर चीजें लिख गये, परंतु यह लाभ क्षतिकी तुलनामें बहुत कम है। इसके कारण आइरलैंड सदियोंतक मूक पड़ा रहा। आधुनिक भारत इसका एक और उदाहरण है। यहां भी साहित्यिक अभिव्यक्तिके लिये विदेशी भाषाको बहुत अधिक महत्त्व मिला।

कहा जाता है कि भाषाकी एकता मानव समाजकी एकताकी ओर एक बड़ा कदम है। उस एकताको प्राप्त करनेके लिये अभी तब जितना नुकसान उठाना पड़े, भविष्यमें उससे लाभ ही होगा। लेकिन भाषाकी एकता तभी लाभदायक हो सकती है जब वह जाति-की स्वाभाविक अभिव्यक्ति हो या बहुत लंबे अरसेतक उपयोगमें लाये जानेके कारण स्वाभाविक बना ली गयी हो और आंतरिक विकासमें भाग लेने लगी हो। इतिहास बतलाता है कि ऊपरसे आरोपित की गयी भाषाओंके परीक्षण कभी सफल नहीं हुए, वे मरकर रहीं। जबतक उन्होंने अपना शुद्ध रूप रखा तबतक वे निष्फल रहीं। वे सफल तभी हो पायीं जब उनमेंसे गल-सड़कर नये रूप निकले जिनपर मौलिकताकी मुहर थी।

लैटिनका कुछ समयतक सारे यूरोपपर आधिपत्य रहा, लेकिन वह काफी जल्दी निष्फल, निर्वीर्य और बंध्या हो गयी। वह किन्हीं नयी संस्कृतियोंको जीवन देनेमें असमर्थ हो गयी। मृत लैटिनमेंसे नयी-नयी भाषाएं निकलीं जिनमें पत्र-पुष्प और नया जीवन आया। भाषा और बोलीमें यह बड़ा फर्क है कि बोली रोजमर्राके कामकी

चीज तो है, पर उसमें उच्चतर जीवन और उच्चतर विकासकी अभिव्यक्तिका सामर्थ्य नहीं है।

आजके संसारमें एकता लानेका बहुत प्रयास हो रहा है। संस्कृतिके आधारके लिये शांति, योग क्षेम और सुव्यवस्थाकी जरूरत है। लेकिन यह न भूलना चाहिये कि इस एकताके विभिन्नताकी, व्यक्ति और समुदायोंकी स्वाधीनताकी आवश्यकता कम नहीं है। उनके बिना एकरूपता आ सकती है, एकता नहीं हमें सीधी-सादी, वैज्ञानिक रूपसे चुस्त, सुन्दर, साफ एकरूपता आवश्यकता नहीं है। हमें आवश्यकता है एक जीवित-जागृत स्वस्थ स्वाधीनता और विभिन्नतासे भरपूर एकताकी।

लेकिन इस कठिन आदर्शको कैसे सिद्ध किया जाय ? और केंद्रीकरण अधिक हो जाय तो आवश्यक विभिन्नताएं और आवश्यक स्वाधीनताएं गायब हो जाती हैं। उधर शक्तिशाली विभिन्नता हो तो समुदायोंका अपना व्यक्तित्व इतना बढ़ जायगा कि मातृ-जातिकी एकता या पूर्णता संभव ही न रहेगी। इतना काफी है कि संगठनके विभिन्न घटकोंमें एक औपचारिक दृष्टिसे, या कानूनकी दृष्टिसे कुछ भिन्नता हो, पर वास्तवमें सभी मूल-चीजोंके लिये वे केंद्रपर आश्रित हों या यह कि वे एक ही शक्ति के हाथ-पैर हों, पर दिमाग केंद्रमें हो जो सबपर अनुशासन कर रहे।

यूनान, इटली और प्राचीन भारतमें बहुत-से छोटे-छोटे राज्य थे जो सांस्कृतिक दृष्टिसे बहुत विकसित, परंतु राजनीतिक प्रशासकीय दृष्टिसे बहुत पिछड़े हुए थे। वे ज्यादा समय न पाये। छोटे-छोटे मिलकर बड़े राज्य बन गये। लेकिन उन बहुतोंका सांस्कृतिक जीवन अब भी बाकी है।

आज हमारी बहुत बड़ी आवश्यकता यह है कि एकतामें विभिन्नता और विभिन्नतामें एकताको पनपने और फलने-फूलने दें, ताकि नाश, विद्रोह, विजय, पराजय, आदि, में पड़े बिना मानवजाति

दिसंबर १९८०

१५

ऐसा संतुलन पा जाय जो नयी समस्याएं पैदा किये बिना वर्तमान समस्याका हल कर सके, मानवजातिमें व्याप्त कलहोंको समाप्त कर सके।

(‘आइडियल आफ ह्यूमन यूनिटी’ के आधारपर)

तीन प्रश्न

मयूर मां,

क्या बच्चोंको काम करने और उनमें रुचि जगानेके लिये कोई पुरस्कार या इनाम देना अभीष्ट है ?

यह तो स्पष्ट है कि बच्चोंके लिये यह श्रेयस्कर होगा कि वे अपनी चेतनाके विकासके लिये अध्ययन करें और उन विषयोंके बारेमें सीखें जिन्हें वे नहीं जानते; लेकिन उन्हें पुरस्कार देनेमें कोई हर्ज नहीं जो विशेष रूपसे अध्ययनशील, अनुशासनमें रहनेवाले और काम-मी शरीरमें एकाग्र रहे हों।

आशीर्वाद।

१७-१२-१९६९

मयूर मां,

यहां माता-पिता और अभिभावकोंकी क्या भूमिका है ? छात्रोंकी अधिक अच्छी शिक्षामें वे किस तरह मदद दे सकते हैं ?

यहां, माता-पिता या अभिभावकोंका पहला कर्तव्य है अपने बच्चोंको सीखनेवाली शिक्षाका उदाहरण या शब्दोंके द्वारा विरोध न करें। निश्चय ही, जो सबसे अच्छा काम वे कर सकते हैं वह यह है

कि वच्चोंको आज्ञापालन करने और अनुशासनमें रहनेके लिये प्रोत्साहित करें।

आशीर्वाद।

मधुर मां,

वेष-भूषा, फैशन और गहनेके बारेमें आपकी क्या राय है?

आपके विचारमें आश्रम-जीवनमें सुसंस्कृत अभिरुचि कैसे होनी चाहिए?

सौभाग्यवश मेरी कोई राय नहीं।

मेरे लिये सुसंस्कृत रुचिका अर्थ है सरल और सच्चा होना।

आशीर्वाद।

संकटके समय

राजा भोज अपनी उदारताके लिये बहुत प्रसिद्ध थे। कभी भी याचक उनके द्वारसे खाली हाथ नहीं लौटता था।

उदार होनेके साथ-ही-साथ वे विद्या-प्रेमी बल्कि, विद्या-व्यसनी भी थे। उदार लोगोंके साथ उनके पिछलग्गुओंमें ऐसे भी रहते हैं जिनकी उदारता सालती है, जिन्हें डर रहता है कि इन्होंने सब कुछ दे दिया तो कल क्या होगा। ऐसे लोग शुक्राचार्यके समयसे आ रहे हैं। भोज भला उनसे कैसे बचते!

भोजके दरबारमें एक मंत्री था जिसका नाम था रोहल।

दिसंबर १९८०

ही बुद्धिमान, आगेकी सोचनेवाला और भोजका सच्चा हितैषी। उसे चिंता हुई कि भोज इस तरह चलते रहे तो लक्ष्मी रुठ जायेगी और इनका घर छोड़कर कहीं और जा बसेगी, चंचला जो ठहरी। पूरी सम्भावना होते हुए भी राजाके सामने उसका विरोध कौन कर सकता है? शुक्राचार्यको भी तो राजा बलिकी रक्षा करनेके लिये जल-यात्राकी टोंटीमें घुसना पड़ा था।

शुक्राचार्यके इस वंशज रोहलके पास गुह्य-शक्तियां न थीं। उसने एक और तरीका अपनाया। राजाके सभामंडपमें दीवारपर मोटे-मोटे अक्षरोंमें लिख दिया, "अपदार्थे धनं रक्षेत्" यानी, संकटके समयके लिये धन बचाकर रखना चाहिये।

राजाने यह संदेश देखा। उसे बड़ा मजा आया। वह भी क्यों पीछे रहता। उसने आगे लिख दिया "भाग्यभोजः क्व चापदः" यानी, भाग्यशालीपर संकट नहीं आता।

मंत्रीने यह देखा। उसे राजाकी बात जंची नहीं। भाग्यका क्या भरोसा, न जाने कब बिगड़कर दगा दे जाय। बुरे दिनोंके लिये कुछ तो सेंतकर रखना ही चाहिये। उसने फिर लिखा, "दैव हि कुर्यते कदापि" शायद कभी भाग्य ही पलटा खा जाय।

राजा इसके लिये तैयार था। उसने आगे बढ़ाया, "संचितोऽपि विनश्यति" तब तो संचित किया हुआ धन भी नष्ट हो सकता है।

मंत्रीको बात जंच गयी। उसने सामने आकर राजासे क्षमा मांग ली।

बिना जाने भगवान्की सेवा

माताजी, हमारी चेतनामें ऐसे बहुत-से तत्त्व हैं जिनके बारेमें हम सचेतन नहीं हैं। है न ऐसा?

हां, बहुत-से।

क्या कुछ ऐसे भाग हो सकते हैं जो हमारे जाने बिना भगवान की सेवा करते हैं ?

हां, हां। वास्तवमें, कुछ ऐसे भाग हैं जिन्हें हमेशा न केवल भगवान की खोज रहती है, बल्कि जिनमें तीव्र अभीप्सा होती है, और तुम्हें उसका पता भी नहीं होता। चैत्य पुरुष ऐसा ही है, वह हमेशा रहता है। लेकिन तुम्हें कभी-कदास ही उसका पता होता है। वह बहुत ज्यादा छिपा रहता है। मैंने कुछ समय पहले बाहरी पपड़ीकी बात की थी। वह पपड़ीके जैसी ही चीज है, वह बहुत कड़ी, मोटी, अपारदर्शक चीज है जिसमेंसे कोई सत्य पार नहीं हो सकते और आदमी हमेशा इसके अंदर ही रहता है इसलिये उसे पता भी नहीं होता कि कोई और चीज भी है। लेकिन सत्ताकी गहराईके बीचोंबीच और यह तो सीधी-सी बात है कि लोगोंके अन्दर जो पूर्व निश्चित है — एक ऐसी सत्ता होती है केवल उनकी नियतिकी अध्यक्षता ही नहीं करती, केवल भगवान के साथ तादात्म्यके लिये अभीप्सा ही नहीं करती, उसमें जीवन समस्त परिस्थितियोंपर नियंत्रण रखनेकी क्षमता भी होती है वास्तवमें, प्रायः विद्रोह करनेवाली बाहरी इच्छाके बावजूद जो आंतरिक चेतनाके अनुसार परिस्थितियोंकी व्यवस्था नहीं चाहती वह सत्ता चीजोंको संगठित करती है। इसकी दृष्टि बिल्कुल स्पष्ट होती है। बहुत आगे चलकर जब आदमीको भान होता है और पीछे अपने जीवनको देखता है, तो मालूम होता है कि सब निर्दिष्ट स्थानतक जानेके लिये जो कुछ जरूरी था उसे नज़रमें रखा हुए बहुत स्पष्ट दृष्टिके साथ विलक्षण रूपसे व्यवस्थित किया गया

बहुधा जिन बातोंको तुमने संयोग मान लिया था, दुःखद बातें नाएं दुर्भाग्य या नियतिके प्रहार या फिर विरोधी शक्तियोंके आ

अग्निवि

विशंब

मण सम

योजना

तुम छोटे

हां, र

की परि

इसलिये,

"पूर्व नि

पूरा कर

करनेमें

हो सकता

पर पूरा

व्यवस्थित

का पता

नी बढ़क

अपनी मु

आपसे मू

दुखी हूं।

तो बा

अच्छा,

काममें

निश्चित

श सकता

अग्निविस्मर १९८०

मण समझ लिया था, वे सब, बिना अपवादके, अद्भुत् रूपसे कुशाग्र योजना थी जिसे प्रशंसनीय ढंगसे कार्यान्वित किया गया था, ताकि तुम छोटे-से-छोटे मार्गसे ठीक अपने गंतव्य स्थानतक जा पहुंचो।

हां, यह हमेशा निरपेक्ष बात नहीं होती, क्योंकि यह आस-पास-की परिस्थितियोंके महत्त्वके संबन्धमें व्यक्तिके महत्त्वपर निर्भर है।

केवल मैंने शुरूमें ही कहा था: "हर पूर्व निश्चित सत्ता।"

"पूर्व निश्चित" से मेरा मतलब है जो धरतीपर कोई यथार्थ उद्देश्य पूरा करनेके लिये आयी है, जिसकी स्वभावतः, इस उद्देश्यको पूरा करनेमें सहायता की जायगी। वह बहुत ही सामान्य-सा उद्देश्य

हो सकता है, लेकिन वह एक यथार्थ उद्देश्य होगा जिसे उसे धरती-पर पूरा करना है। तो, इन सभी सत्ताओंका... जीवन इस तरह

अवस्थित होता है, लेकिन उनमेंसे साढ़े निम्नानवे प्रतिशतको इस-का पता नहीं होता। वे विद्रोह करते हैं, रोते-झींखते हैं... उससे

है। लेकिन बढ़कर, अपने ऊपर दया करते हैं और अपनी कठिनाइयों, है कि अपनी मुसीबतों, अपने दुःखोंके लिये विलाप करते हैं और अपने-

ती है आपसे मृदु दुलार करते हुए कहते हैं: "आह, बेचारा मैं, मैं कितना दुखी हूँ।" लेकिन यह सब उनकी आंतरिक सत्ताका काम होता है।

तो बात ऐसी है।

अच्छा, बच्चो, फिर मिलेंगे।

(‘श्रीमातृवाणी’से)

मार्गदर्शन

काममें नियमित होनेकी अपेक्षा बुद्धि और समझनेकी क्षमता निश्चित रूपसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। स्थिरता बादमें प्राप्त की जा सकती है।

*

माताजी, आलस्यसे कैसे छुटकारा पाया जा सकता है?

आलस्य दुर्बलता या रसके अभावसे आता है। पहली चीज उपचार करनेके लिये — तुम्हें मजबूत होना चाहिये।

दूसरी चीजको ठीक करनेके लिये — कुछ रुचिकर काम करना चाहिये।

*

मधुर मां,

आपने मुझसे कहा है कि दुर्बलताको दूर करनेके लिये बनना चाहिये। माताजी, क्या आप मुझे बतायेंगी कि कैसे बना जाता है?

पहले तुम्हारे अंदर समग्र संपूर्ण रूपसे उसके लिये चाह चाहिये और फिर जो कुछ जरूरी है वह करना चाहिये।

*

मानसिक जड़तासे कैसे पिंड छुड़ाया जाय?

इसका इलाज मनको जगानेका प्रयास नहीं है। उसे नीरव अवस्थामें ऊपरकी ओर, अंतर्भासिक ज्योतिके क्षेत्रकी स्थिर, शांत अभीप्सामें मोड़ो और नीरवतामें प्रतीक्षा करो ज्योति नीचे उतरे और तुम्हारे मस्तिष्कमें बाढ़ ला दे। मस्तिष्क थोड़ा-थोड़ा करके इस प्रभावकी ओर खुलेगा और भासिको ग्रहण और प्रकट करने योग्य बनेगा।

प्रेम और आशीर्वाद।

*

अनिच्छित
सितंबर १९८०

संकल्प-शक्तिको मजबूत बनानेके लिये क्या करना चाहिये ?

उसे प्रशिक्षित करो, जैसे मांसपेशियोंसे काम लेकर उनसे कसरत करवायी जाती है, वैसे ही इससे कसरत करवाओ।

(२३-३-१९३४)

*

एकाग्रता और संकल्प-शक्तिको मांसपेशियोंकी तरह विकसित किया जा सकता है; वे नियमित प्रशिक्षण और कसरतसे विकसित होते हैं।

*

स्पष्ट समझ, अंतर्दर्शन और उचित क्रियाके लिये एक बहुत-बहुत स्थिर, शांत मस्तिष्क अनिवार्य है।

*

कृपया मुझे विचारोंके बुदबुदों और आवश्यकताओंके अंतर्दर्शन-के बीच भेद कर सकनेमें सहायता दीजिये।

ऊपरसे प्रेरणा पानेके पहले मनको स्थिर-शांत और नीरव होना चाहिये।

*

मनको स्थिर शांत रहना चाहिये ताकि संपूर्ण अभिव्यक्तिके लिये 'शक्ति' उसके द्वारा प्रवाहित हो सके।

*

हम विद्यार्थीको ठीक तरह सोचना कैसे सिखा सकते हैं?

मानसिक क्षमता नीरव ध्यानमें विकसित होती है।

(२३-३-१९३३)

*

मैं अंतर्भासकी सहायतासे काम करनेकी कोशिश करूंगा।
प्रयासमें सहायता कीजिये।

प्राणको अचंचल बनाओ।

(श्रीमातृवाणी)

कुछ करनेका निश्चय

माताजी, उदाहरणके लिये, जब हम कुछ करनेका निश्चय
हैं, तो हमें लगता है कि हम औरोंकी भावनाओंके साथ टकरा
हैं। ऐसी हालतमें क्या करना चाहिये ?

कब... ?

जब हमने कुछ करनेका निश्चय कर लिया हो तो...

हां।

...तो कभी-कभी ऐसा लगता है कि हम किसी औरकी भावनाओं
के साथ टकरा रहे हैं।

अनिष्ट
ते हैं?
दिसंबर १९८०
टकरा रहे हैं।

मतलब...

हां, हां, मैं बहुत अच्छी तरह समझ रही हूं।

हां, तो क्या करना चाहिये ?

यह पूरी तरह अवस्थापर निर्भर है। कहना मुश्किल है...
पहले पहल... (मौन) अगर वह केवल एक बाहरी और ऊपरी
निश्चय है जो तुम्हारे थोड़े-से ज्ञानपर निर्भर है, और तुम्हारे थोड़े-
थोड़े गुणों और थोड़े-थोड़े दोषोंपर निर्भर है तो स्वभावतः, अगर
तुम्हारी समान गुणोंवाली इच्छा-शक्ति से टक्कर हो — अगर
इच्छाएं भिन्न हों पर समान गुणवाली हों, तो तुम्हें अपने वांछित
आंतरिक परिणाम के अनुसार और परिस्थितियों के अनुसार निश्चय
करना चाहिये। यह कहना बहुत मुश्किल है। हर मामले में
निश्चय निश्चय अलग होना चाहिये।

लेकिन अगर तुम उन लोगों में से हो, जो तभी काम करते हैं
जब उन्हें अपने अंदर यह लगे कि यह सत्य चेतना की आज्ञा है :
"मैंने यह करने का निश्चय किया है क्योंकि यही करना चाहिये,
परिणाम चाहे कुछ क्यों न हो", तब यदि तुम्हारी पसंदों, इच्छाओं
और दूसरों के विरोध के साथ टक्कर हो तो तुम्हें केवल यही करना
चाहिये (माताजी मुंह मोड़कर चलने की मुद्रा करती हैं), और
अपनी राह पर चलते रहना चाहिये। लेकिन इसी हालत में तुम्हें
यह करने का अधिकार है।

जब यह केवल एक व्यक्तिगत क्रिया हो जो निजी पसंद, निजी
कामनाओं या निजी धारणाओं से भी परिचालित हो, तो जैसे ही
तुम्हें विरोध दिखायी दें तुम्हें समस्या को तोलना चाहिये, तथ्य देखने

चाहिये और... (मौन) अपनी अधिक-से-अधिक सद्भावना, अच्छे-से-अच्छे बोधके अनुसार कार्य करना चाहिये। और यह पूरी तरह इसपर निर्भर है कि विरोध कैसा था कि तुम करना चाहते थे। इसलिये एक सामान्य नियम बनाना असंभव है।

केवल एक ही चीज है जो तुम्हें किसी चीजकी परवाह बिना अपने मार्गपर सीधा जानेका अधिकार देती है : और वह ऐसी स्थिति, जिसमें तुम्हें उच्चतर सत्यने आगे बढ़ाया हो, दी हो। लेकिन, तुम्हें उसका विश्वास होना चाहिये। अपनी कामनाको उच्चतर सत्य न मान बैठना चाहिये, समझे, कि यह भूल आसानीसे बहुत हो सकती है। तुम्हें उसे जान चाहिये, उसकी पुष्टि करनेके लिये तुम्हारे पास ठोस प्रमाण चाहिये। और यह जानना चाहिये कि सामान्यतः यह ऐसी चीज है जो व्यक्तिगत रूपसे तुम्हें नहीं छूती। अगर तुम्हें उसमें भी, इस ओर या उस ओर, रस है तो सावधान ! यह किसी करनेसे पहले कि यह उच्चतर संकल्प और सत्यकी अभिव्यक्ति फिरसे सोच लो।

फिर भी, ऐसे अवसर होते हैं जब ऐसी अवस्था आती है। वह चीज है जो करनी चाहिये; वास्तवमें यही सत्य है। तब चाहे जितना विरोध हो, तुम सीधे अपनी राहपर चलते जाओ, परिस्थितियों या परिणामोंकी चिंता न करो। लेकिन अधिकार तुम्हें उसी अवस्थामें है, यानी, उस समय जब तुम्हारे द्वारा काम करते हैं, तब तुम्हें भगवान्की इच्छाके किसी भी चीजकी परवाह न करनी चाहिये। परंतु यदि वह भगवान्की इच्छा नहीं है, तो प्रत्येक समस्याका समाधान करनेके परिस्थितियों और...

उदाहरणके लिये, हमने गप्पें न लगानेका निश्चय फिर...

अग्नि
द्विंशत् १९८०

कोई ऐसा आदमी मिल जाता है जो गप्पें लगाता है ?

नहीं...

तुम वस वहांसे मुंह मोड़ लो और चल पड़ो ! (हंसी)
बहुत आसान है !

तो वह आदमी बहुत नाराज होगा।

क्या ?

वह आदमी बहुत नाराज होगा।

यह उसीके लिए बुरा है। (हंसी), उसीके लिए बुरा है। यह
ऐसा उदाहरण है, ऐसे उदाहरणोंमेंसे एक है जिनके बारेमें
कहा था : परवाह न करो। अगर तुम उस व्यक्तिको बहुत
नाराज हो और उसे बहुत नाराज नहीं करना चाहते हो तो बड़ी
साधना कि साथ उससे कह सकते हो : "जी, नहीं हम लोग व्यर्थकी
करें। यह सबके लिये बुरा है।" वस। अगर वह ऐसा
व्यक्ति है जिसकी तुम परवाह नहीं करते, या जो तुम्हारे लिये
लेकिन हितपूर्ण नहीं है, तो वस, उसकी ओरसे मुंह मोड़ लो और चल
जब भरो।

विशेष रूपसे, अगर वह तुम्हारा मित्र है, ऐसा व्यक्ति है जिसे
तुम्हारी तरह जानना चाहिये कि यह नहीं करना चाहिये...।
करनेके लिये तरहके मामलेमें तुम्हें ज्यादा सुस्पष्ट होना चाहिये। अगर
कोई ऐसा व्यक्ति है जिसे किन्हीं परिस्थितियोंके कारण, तुम्हारी
तुम्हें यह जानना चाहिये कि यह एक ऐसी चीज है जो नहीं करनी
चाहिये, फिर भी, अगर वह उसे करना शुरू करता है तो वह
मान्य है, क्योंकि जब कोई ऐसी चीज करता है जिसके बारेमें

उसे मालूम है कि यह नहीं करनी चाहिये तो उस क्षणसे वह मान हो जाता है; और ऐसे व्यक्तिके लिये तुम्हें कोई होना चाहिये। तुम्हें केवल मुंह मोड़कर चल देना चाहिये, और वह गुस्सा होता है तो इसमें उसीका बुरा होगा। उसे... नाम यह होगा कि उसे अपने गुस्सेपर विजय प्राप्त करनी पड़ेगी। वस। शायद इससे उसका कुछ भला हो।

सामाजिक संबंधोंमें एक बड़ी कमजोरी होती है, एक बहुत कमजोरी; और इसीलिये, वास्तवमें, आदमी गुस्सा करता है, वह जाता है और ऐसी चीजें कहता है जो नहीं कहनी चाहिये। अगर आदमी कमजोर न हो तो वह कभी उग्र न होगा। जो उग्रता या हिंसा ऐसी चीजें हैं जो हमेशा साथ ही होती हैं। जो सचमुच बलवान् है वह कभी उग्र नहीं होता। ऐसी बात है जिसे हमेशा याद रखना चाहिये। उग्रता या हिंसा हमेशा कहींपर कमजोरीका लक्षण है। हां, तुम देखते हो कि निकली हुई मांसपेशियोंवाला एक आदमी, जो बहुत मजबूत है, एक दूसरे आदमीको अपनी पूरी शक्तिसे गिरा देता है और कहते हैं: "वह मजबूत है।" यह सच नहीं है। उसमें मांसपेशियां हैं पर नैतिक दृष्टिसे वह बहुत कमजोर है। वह जगह मजबूत और दूसरी जगह कमजोर हो सकता है। साधारणतः ऐसा ही होता है।

लेकिन मैं कहती हूं, और जिन लोगोंने जानवरोंका अवलोकन किया है वे भी कहते हैं, कि उदाहरणके लिये, जो जानवर मजबूत होते हैं, वे बड़े शांत होते हैं। स्वभावतः, जब वे किसीका पीछा करते हैं तो अपनी सारी ऊर्जा लगा देते हैं; परंतु उग्रता या हिंसा नहीं, ऊर्जा है। लेकिन अगर तुमने कभी किसीको ऐसी अवस्थामें देखा है—जब उसे कुछ भी न करना हो, वह जरा भी नहीं चुलबुलाता। अगर वह बीमार हो तो बेचैन होता है। लेकिन अगर वह भला-चंगा हो, स्वस्थ हो

दिसंबर १९८०

उसे कुछ करना न हो तो वह हिलेगा भी नहीं, वह बिलकुल अचंचल होगा। वह एक सन्त जैसा दीखेगा। (हंसी)

बेचैनी, उग्रता, क्रोध, यह सब चीजें हमेशा, बिना अपवादके, दुर्बलताकी सूचक हैं। और विशेष रूपसे, जब आदमी अपनी भाषामें वह जाता है और ऐसी चीजें कहता है जो न कहनी चाहिये तो यह निश्चय ही भयंकर मानसिक दुर्बलताका चिह्न है — मानसिक और प्राणिक — भयंकर। अन्यथा, तुम दुनिया-भरकी गाली-गलौज सुन सकते हो, लोग तुमसे सब तरहकी बेवकूफी-भरी बातें कह सकते हैं; अगर तुम कमजोर नहीं हो तो शायद तुम बाहरसे न भी मुस्कराओ, क्योंकि मुस्कराना हमेशा सुरुचिपूर्ण नहीं होता, लेकिन अपने अन्दरकी गहराईमें तुम मुस्कराते रहोगे, और उसे गुजर जाने दोगे। वह तुम्हें छू तक न पायेगी...। अगर तुम्हारे मनने, जैसा यहां कहा गया है वैसा शांत-स्थिर होने-की आदत डाल ली है, और तुम्हें अपने अन्दर सत्यका बोध प्राप्त हो तो तुम कुछ भी सुन सकते हो। उससे स्पंदन जैसी कोई भी चीज नहीं पैदा होती — तुम्हारे अन्दर सब कुछ अचंचल, स्थिर, शांत रहता है। और तब अगर वह साक्षी वहां हो, जिसकी हम थोड़ी देर पहले बात कर रहे थे, और इस हास्यजनक स्थितिको साधारण रहा हो तो वह निश्चय ही मुस्कराता है।

लेकिन अगर तुम उस दूसरे व्यक्तिसे आते हुए स्पंदनोंका अनुभव करो जो तुम्हारे ऊपर अपना समस्त क्रोध और उग्रता फेंक रहा है, अगर तुम उसे अनुभव करो... शुरूमें ऐसा होता है... और फिर, तुम्हारे अन्दरसे अचानक प्रत्युत्तर उठता है; और फिर, तुम स्वयं क्रुद्ध हो उठते हो तो विश्वास रखो, तुम भी उसीकी तरह कमजोर हो।

तो ऐसी बात है, मेरे बच्चो।

मेरा ख्याल है, आजके लिये इतना काफी है।

(श्रीमातृवाणीसे)

माताजीने कहा

(माताजीके साथ प्रश्नोत्तरमेंसे चुने हुए शब्द)

सत्य और भ्रांति

मेरा अनुभव तो यह है कि तुम जब कभी सचाईके साथ को जानना चाहो तो जान सकते हो। हमेशा कोई-न-कोई ऐसी होती है जो तुम्हें भूल दिखा देती है और सत्यकी पहचान करवा देती है। अगर तुम ध्यानसे अपने-आपको देखो तो पता लगेगा कि अगर तुम सत्यको नहीं जान पाते तो इसका यह है कि तुम भ्रांतिको ज्यादा पसंद करते हो।

जीवनके बड़े-बड़े निर्णयोंकी बात जाने दो, व्योरेकी छोटी-छोटी चीजोंमें भी अगर तुम्हारे अन्दर सत्यके लिये सच्ची अभीप्सा तो तुम्हें संकेत जरूर मिल जाता है। अगर तुम आग्रहके भ्रांतिके कारण ढूँढ़ना चाहो तो तुम्हें यही पता लगेगा कि चाहते हो कि अमुक प्रकारसे अनुभव करो, अमुक प्रकारसे अमुक प्रकारसे कार्य करो। इसीलिये भ्रांति आती है। यह यह आसक्ति ही तुम्हें सत्यको देखनेसे रोकती है।

अपना वातावरण

जब तुम वह करते हो जो तुम्हें नहीं करना चाहिये तो के लिये भारी दाम चुकाना पड़ता है। जो झूठ बोलता है यह डर रहता है कि उसका झूठ खुल न जाय, जो गलत करता है उसे डर रहता है कि कहीं उसे दंड न मिले। जो

दिसंबर १९८०

देता है उसे भय रहता है कि कहीं उसकी पोल न खुल जाय। पूरी तरह स्वार्थकी दृष्टिसे भी देखें तो भी शुभ, न्यायसंगत, सरल, ईमानदारी भरा काम करना ज्यादा अच्छा है। इससे तुम शांत रह सकते हो, चिंतासे बड़ी हदतक मुक्त रह सकते हो। और अगर तुम स्वार्थ भाव, निजी प्रयोजन, अहंकारसे दूर रहो तो मनुष्य सुखी होना संभव है।

तुम अपने चारों ओर अपने कर्मोंका वातावरण लिये रहते हो। अगर तुम्हारे कर्म शुभ, सामंजस्यपूर्ण और सुन्दर हों तो तुम्हारा वातावरण भी शुभ, सामंजस्यपूर्ण और सुन्दर होगा।

(२)

जब तुम भले हो, उदार हो, उदात्त और निष्काम हो तो तुम अपने अन्दर और अपने बाहर एक खास तरहका वातावरण बना लेते हो जो प्रकाशमय और सुखद होता है। तुम मुक्त श्वास लेते हो, फूलकी तरह धूपमें खिलते हो, कोई कटुता नहीं होती, कोई विरोध नहीं होता, तुम अपनी ही पूँछको नहीं कुतरते रहते, कोई दुःख या दुःख तुम्हारे पास नहीं फटकता। सहज स्वाभाविक रूपसे सारा वातावरण प्रकाश और आनन्दसे भर जाता है। तुम भी हवामें सांस लेते हो। शरीरके अंदर और शरीरके बाहर, जिते-जागते तुम इसी वातावरणमें रहते हो।

हर एक गलत क्रिया चेतनाके ऊपर एक ऐसी आंधीका असर डालती है जो जीवनको मुरझा देती, ठंडसे जमा देती या लपटोंसे जलसा देती है।

हर शुभ और सत्य क्रिया प्रकाश, विश्राम, आनन्द लेकर आती है वह ऐसा आलोक है जिसमें फूल खिलते हैं।

जो जीवन लक्ष्यहीन होता है वह सुखहीन भी होता है।
तुम्हारा लक्ष्य होना चाहिये उच्च और विशाल, उदार और ऊँचा
और फिर तुम्हारा जीवन तुम्हारे लिये और दूसरोंके लिये
बहुमूल्य हो जायगा।



सहारन सर्विस स्टेशन

पेट्रोल पम्प, देहरादून रोड

सहारनपुर

है।
र उम्
लिये
— श्री
Courage and love are the only indispensable
virtues; even if all the others are eclipsed or
fall asleep, these two will save the soul alive.

Sri Aurobindo



INDIAN TEA STORAGE AGENCY

24, Ganesh Chandra Avenue, Calcutta-700 013

केंद्रीय उपभोक्ता सहकारी भंडार लि० सुलतानपुर

मुख्यालय-गल्लामंडी सुलतानपुर (अवध) उत्तर प्रदेश

थोक शाखाएं सुलतानपुर, कुड़ेभार, जगदीशपुर

हमारी प्रगति की एक झलक:—

कार्य विवरण	वर्ष 1977-78	वर्ष 78-79	वर्ष 79-80
1. सदस्यता में वृद्धि	1459	1487	1600
2. अंशधन में वृद्धि (रुपयों में)	3,55,438	4,05,748	4,08,000
3. व्यापार में वृद्धि	25,17,800	40,24,200	66,92,000
4. लाभ क्रमिक	19,980	69,990	1,05,500
5. विनियोजन	2,38,550	2,51,550	2,57,600
6. कोष एवं प्रविधान	1,18,060	1,53,120	1,65,500

भंडार अपनी 25 दुकानों से शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र में साधारण को दैनिक उपयोग की वस्तुएं उचित मूल्य पर उपलब्ध करा रहा है। जनपद-निवासियों के लिये सदस्यता सदैव खुली रहती है। सदस्यों को क्रय करने पर छूट दी जाती है और प्रबंध में भागीदारी भी रहती है। एक अंश 10 रुपये का है।

अपने निकट की सहकारी दुकान पर पधारें, सेवा से लाभ उठाएँ।

मुख्य व्यवसाय:— नियंत्रित

- हैंडलूम एवं मिलों का कपड़ा * टायर ट्यूब एवं चाय
- * नहाने धोने के साबुन व पाउडर * अरहर दाल, चावल
- * सोडा ऐश, कंट्रोल कापी, माचिस
- * पाम आयल, रेपसीड आयल, डालडा
- * एच० एम० टी० घड़ियां आदि।

(बी० डी० शर्मा)

सचिव

(रामपाल मिश्र)

उपाध्यक्ष

(उमाकांत मिश्र)

अध्यक्ष

सोसायटी समाचार

पहली दिसंबर १९८० आश्रमके अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा केंद्रका ३७ वां जन्मोत्सव है। उस दिन माताजी और श्रीअरविदकी कृतियोंमेंसे कोई चीज विद्यालयके रंगमंचपर दिखलायी जाती है।

२ दिसंबरको इसी सिलसिलेमें शारीरिक शिक्षण विभागका उत्सव होता है। हर वर्ष अलग-अलग कार्यक्रम किये जाते हैं और नवंबरका पूरा महीना उनकी तैयारीमें लग जाता है। इसमें उम्रकी कोई कैद नहीं होती। बच्चे बूढ़े, सभी भाग ले सकते और लेते हैं।

५ दिसंबर श्रीअरविदके महाप्रयाणका दिन है। उस दिन अथमवासी और दर्शक श्रीअरविदके कमरेमें जाते हैं। सवेरे शाम आत होता है। किसीने माताजीसे पूछा था कि इस दिन हमें क्या करना चाहिये तो उन्होंने कहा यह समझनेकी कोशिश करो मैं जै मृत्यु क्या है।

१ दिसंबरके दिन श्रीअरविदका शरीर समाधिस्थ किया गया। उस दिन समाधिके चारों ओर बैठकर ध्यान किया जाता है।

केंद्रके समाचार

मदुरै (तमिलनाडु) के श्रीअरविद नेत्र चिकित्सालयमें श्रीअरविदके निवृत्त अवशेष पधराये गये। इस पांच मंजिल वाले हस्पतालमें डेढ़ सौ रोगियोंके लिये व्यवस्था है।

भडूचजिले (गुजरात) में नर्मदा किनारे एक शिक्षा न्यासकी स्थापना हुई है जो वर्तमान शिक्षा प्रणालीके स्थानपर श्रीअरविद

और माताजीके द्वारा बतलायी हुई शिक्षा-पद्धति लाना चाहता।
श्री अम्बा प्रेमी शाहने इसके विद्यालयकी आधार शिला रखी।

फूलबनी (ओडीसा) और हल्दिया (पश्चिम बंगाल) में श्रीअरविद
योगके बारेमें श्री प्रहरज और मजूमदारके भाषण हुए।

कपड़वणज (गुजरात) में श्री छोटे नारायण शर्मनि श्रीअरविद
दायन सी एन विद्यालय तथा केवणी कालिजमें भाषण दिये।
वल्लभ विद्यानगर और महमदाबाद गये थे।

हरदा (मध्यप्रदेश) में हर रविवारको नियमित रूपसे
और सत्संग होता रहा है।

विश्व संस्कृत प्रतिष्ठानकी गुजरात शाखाने अहमदाबादमें संस
सम्मेलनका आयोजन किया। श्रीजयेंद्र सरस्वती, शंकराचार्य का
कामकौटि, मुख्य अतिथि थे। न्यायमूर्ति भट्टने सभापतिका
ग्रहण किया।

घोषणा

श्रीअरविद सोसायटीके नारी पक्षकी ओरसे बड़ौदामें तीनसे
जनवरी १९८१ तक आध्यात्मिक जीवन विषयक स्वाध्याय नि
होगा। रेलवे कंसेशन मिलनेकी संभावना है, आनेवालोंका
खानेका खर्च दस रुपया रोज होगा।

जिन्हें इसके बारेमें जानना हो वे श्रीमती पूरवी पांडे, अका
हाउस, पांडिचेरी ६०५००२ को जवाबी लिफाफेके साथ पत्र लिखें।



उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जाग्रहि

अखिल भारतीय पत्रिका

कृष्ण बहुत-सी अभिव्यक्तियोंमेंसे कृष्ण भी। इस वाक्यका अर्थ यह हो सकता है कि कृष्णमें सबसे एक अभिव्यक्ति हुई थी। जब कभी कोई अवतार आता है तो किसी खास उद्देश्यको पूरा करनेके लिये आता है। वह एक राको प्रवाहित करता है जिसमें बहुत सारी लहरें उठती हैं। एक अवतारको लेकर हमेशा पूजते रहनेसे अवतारका उद्देश्य

श्रीअरविंद सोसायटीकी मासिक पत्रिका

सितंबर १९८०

अग्निशिखा वर्ष ११, अंक २, पूर्णांक १२२

विषय-सूची

श्रीअरविन्दके साथ बातचीत
 माताजीने कहा : काम-वासना
 जीवनमें प्रेम
 प्याला प्रेम अमीरसका रे
 शिक्षा
 विद्यार्थियोंकी समस्या
 विद्यार्थियोंके प्रश्न
 बढ़ती हुई आवादीकी समस्या
 आशा-किरण
 देशके लिये सार्वजनिक शिक्षा
 सोसायटी समाचार

वार्षिक : ८.००

आजीवन १२५.००

घोषणा

श्रीअरविन्द सोसायटीके नारी पक्षकी ओरसे वड़ौदामें तीनसे
 जनवरी १९८१ तक आध्यात्मिक जीवन विषयक स्वाध्याय वि
 रेलवे कंसेशन मिलनेकी संभावना है, आनेवालोंका

संपादक : रवींद्र

प्रकाशक : श्रीअरविन्द सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-६०५००२

श्रीअरविन्दके साथ बातचीत

प्रश्न — यह क्यों कहा जाता है कि वैष्णव साधना सर्वांगीण नहीं है?

श्रीअरविन्द — यह बात मैंने अपने पूर्णयोगकी दृष्टिसे कही थी। वैष्णव-साधना भक्तिपर आधारित है, कहा जा सकता है कि और भक्तों के भक्तिमें आ गयीं। फिर भी वैष्णव पूरी तरह भक्तिका महारा लेता है। मेरी साधनामें सभी तत्त्वोंको महत्त्व दिया जाता है और वे सब किसी और ऊँचे तत्त्वमें जाकर मिल जाते हैं।

प्रश्न — क्या कलियुगमें केवल भगवान्‌का नाम जपना काफी है। हरेनामैव केवलम्।”

श्रीअरविन्द — यह केवल एक प्रकारकी साधना है, लेकिन एक-मात्र नहीं। इसका प्रभाव तभी हो सकता है जब यह ठीक ढंगसे की जाय। यांत्रिक ढंगसे भगवान्‌का नाम जपना बेकार है।

प्रश्न — अगर यह ठीक है कि “कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्” तो फिर शैवोंकी पूजा करनेका क्या लाभ?

श्रीअरविन्द — भगवान्‌की बहुत-सी अभिव्यक्तियोंमेंसे कृष्ण भी एक है। इस वाक्यका अर्थ यह हो सकता है कि कृष्णमें सबसे अधिक अभिव्यक्ति हुई थी। जब कभी कोई अवतार आता है तो वह किसी खास उद्देश्यको पूरा करनेके लिये आता है। वह एक रास्तेको प्रवाहित करता है जिसमें बहुत सारी लहरें उठती हैं। एक अवतारको लेकर हमेशा पूजते रहनेसे अवतारका उद्देश्य पूरा होगा। कोई भी अवतार हमेशा पूजे जानेके लिये नहीं आता। और फिर भगवान्‌की विभिन्न अभिव्यक्तियोंको पूजना विभिन्न कृतियोंके अनुकूल हो सकता है। इसलिये ऐसा कोई कठोर नियम नहीं बनाया जा सकता कि कृष्णकी पूजा ही उचित है।

प्रश्न — कुछ लोग मोक्षकी जगह स्वराज्यकी खोज क्यों करते हैं ?

श्रीअरविंद — मनुष्यको जो बहुत-सी कामनाएं संचालित करती हैं, स्वराज्य प्राप्ति की कामना भी उनमेंसे एक है। जब स्वराज्य लहर आती है तो लोग उसमें वह जाते हैं। मोक्षकी कामना मानव लोकसे ऊपर उठनेकी कामना है। ये दोनों एकदम अलग-अलग हैं और लोगोंकी अंतरात्मा और उनके व्यक्तित्वके विकासके अनुकूल आती है।

प्रश्न — क्या हमारी मातृभूमि की स्वाधीनता का निजी मोक्षके साथ कोई संबंध है ?

श्रीअरविंद — आध्यात्मिक साधना और व्यावहारिक कार्योंमें अनिवार्य संबंध नहीं है। आदमी मातृभूमिके बारेमें सोचे बिना निजी मोक्षके लिये प्रयास कर सकता है, और बड़ा देश-प्रेमी होकर बावजूद निजी साधनासे अलग-थलग रह सकता है और कोई दोष नहीं मिला भी सकता है जैसा कि हममेंसे कुछ लोग कर चुके हैं। राजनीतिक कार्य कर्मयोगकी भावनासे किया था। आदमी कौन-सा मार्ग अपनाये यह स्वयं उसीको अपनी आवश्यकताओं और आंतर्निष्ठ प्रकाशको नजरमें रखते हुए ठीक करना चाहिये।

प्रश्न — शुभ और अशुभ शकुनोंका क्या महत्त्व होता है ?

श्रीअरविंद — अगर तुम इन चीजोंपर विश्वास करो तो शक्तियां पैदा हो जाती हैं जो बताये हुए परिणाम लाती हैं।

प्रश्न — मेरे जीवनमें ऐसी घटनाएं बहुत बार हुई हैं जिन्होंने मुझे आनेवाली घटनाओंकी सूचना दे दी।

श्रीअरविंद — यह बहुत आम बात है। इसे पूर्व-सूचना या बोध कहते हैं। थोड़ी बहुत शक्तिशाली असंख्य शक्तियां तुम्हें चारों ओरसे घेरे रहती हैं और तुम्हारे काममें रस लेती हैं। वे तुम्हें सहायता करती हैं। उन्हें पता होता है कि क्या होनेवाला है और वे चेतावनी देती हैं। अगर तुम्हारे अंदर क्षमता हो तो तुम इन संदेशोंको समझ सकते हो। ऐसे लोग हैं जो इन्हें समझ सकते हैं और अगर वे इनकी अवहेलना कर जाएं तो कष्ट पाते हैं।

कामवासना

साधारण मान्यता यह है कि कामवासना भी एक प्रकारकी क्षुधा और जैसे शरीरको स्वस्थ रखनेके लिये खाना-पीना जरूरी है उसी तरह कामवासनाकी तृप्ति भी स्वास्थ्यके लिये आवश्यक है। इसके बिना शरीर और मन दोनोंपर बुरा प्रभाव पड़ता है। गुफाओंमें रहनेवाले साधुओंकी बात जाने दीजिये, साधारण जीवन वितानेवाले आदमीके लिये तो ब्रह्मचर्य एक असंभव-सी और हानिकर चीज है। वैद्योंका मत भी इसी पक्षमें है।

बात एक हदतक ठीक है, पर ऐसे लोगोंके बारेमें जो अपने वर्तमान स्तरसे संतुष्ट हैं, "यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं जीवेत्" ही जिनका मूल मंत्र है। जो लोग शारीरिक सुख-सुविधा और क्षुधाओंकी तृप्तिको ही सब कुछ मानते हैं, उनसे तो हम यही कहेंगे कि पशुओंमें कामवासना केवल संतान उत्पन्न करनेका ही काम करती है, वहांपर इसे इतना अधिक महत्त्व नहीं दिया गया है जितना मनुष्यने दे दिया है। इसलिये यदि हम शुद्ध रूपसे शारीरिक क्षुधा-बात करें तो भी इसे हमारे जीवनमें इतना अधिक महत्त्वपूर्ण मान नहीं मिलना चाहिये जितना उसने हथिया लिया है।

हम यह नहीं कहते कि हमें सेक्सको — या अन्य किसी भी इच्छा और वासनाको — दबाकर उसपर बैठ जाना चाहिये : इसके परिणाम घातक हो सकते हैं। जब लोग संयमके दुष्परिणामोंकी बात करते हैं तो उनका आशय इसी प्रकारके जबरदस्ती संयमसे होता है। जब कामकेलिसे दूर रहना ब्रह्मचर्य नहीं है। ब्रह्मचर्यके लिये श्रद्धा और त्याग दोनोंकी जरूरत है। हमें यह जान लेना चाहिये कि निम्न प्रकृतिकी यह लहरें हमारे व्यक्तित्वका अंग नहीं हैं, हमारे अंदर बाहरसे आती हैं और यदि हम इन्हें अपने अंदर आनेकी स्वीकृति न दें, इन्हें अपनेसे बाहर फेंक दें और जब-जब का आक्रमण हो तब-तब इन्हें बाहर धक्का देते जायं तो धीरे-धीरे

इनके आक्रमण कम होते जाते हैं; लेकिन यह जरूरी है कि वासनाको मन और प्राणसे भी दूर रखा जाय। मन और प्राणसे आश्रय देकर शरीरसे दूर रखना ब्रह्मचर्य नहीं है। वह अपने आपको धोखा देना है।

श्रीअरविन्द कहते हैं कि कामवासनाको कोई भयंकर पाप साथ ही साथ आकर्षक और मोहक वस्तु न समझो। वह प्रकृतिकी एक भूल या गलत गति है। उसे पूरी तरह दूर कर लें, परंतु उसके साथ युद्ध करके यह जान लो कि यह तुम्हारी चीज नहीं है, इसे बाह्य प्रकृतिने तुम्हारे ऊपर लाद दिया है। तरह तरह की क्रियाको न होने दो, यदि तुम्हारे प्राणका कोई इसे स्वीकार करता है तो उसे समझाओ कि वह अपनी जिद दे। इस काममें सहायता करनेके लिये भागवत शक्तिका आश्रय करो। अगर तुम दृढ़ताके साथ धीरज खोये बिना यह प्रयास तो तुम्हारी संकल्पशक्तिकी विजय अवश्य होगी।

अपने प्रयासमें कभी-कभी या बार-बार असफलता पाकर भी न हारो। कई बार जागृत अवस्थामें प्रयासके परिणामस्वरूप चीज नीचे छिप जाती है और स्वप्नमें उभरती है। सच्चाईके प्रयास करनेवाला देखता है कि उसकी सारे दिनकी मेहनत दो क्षण में बरबाद हो गयी क्योंकि स्वप्नावस्थामें सेक्सका जोरदार आक्रमण है और वह अपने भौतिक परिणाम भी दिखाता है। लेकिन भी निराश होनेकी कोई बात नहीं है। हार माननेके लिये तैयार न होओ। लड़ाईमें हार भी जाओ तो भी पराजय स्वीकार न करो, लड़ते जाओ। ऊपरसे भागवत चेतनाको निमंत्रण भगवतीकी सहायता मांगो, यह सहायता कभी हारना जानती ही अपने शरीरके तंतुओंमें उच्चतर चेतनाको उतार लानेका प्रयास सोनेसे पहले उसका विशेष आवाहन करो और दृढ़ताके साथ कह दो कि उसमें उत्तेजना नहीं पैदा होनी चाहिये। निश्चय दृढ़ताके साथ किया जायगा उतना ही प्रभावकारी भी होगा। हो सकता है कि शुरूमें उल्टे परिणाम दिखायी दें और शरीर

वित्त हो उठे या अन्य दुष्परिणाम दिखायी दें। इनसे डरे बिना भगवान्में श्रद्धा रखकर अपना प्रयास जारी रखो, कई बार असफलता होनेपर भी हार न मानो; हिम्मत न हारो, विजय अवश्य होगी। हो सकता है कि प्रयाससे स्वप्न न रुक सके परंतु अवांछनीय परिणामसे पहले नींद खुल जायगी और अपने-आपको शांत करनेका अवसर मिल जायगा।

यहां फिरसे एक बार इस बातपर जोर देनेकी जरूरत है कि इस प्रयासमें सफल होनेके लिये दृढ़ निश्चयके साथ-साथ यह भी जरूरी है कि प्राण, मन और शरीरकी हर ऐसी क्रियासे दूर रहा जाय जो उत्तेजना पैदा करती हो अथवा सेक्सके अंदर मजा लेनेकी प्रवृत्ति पैदा करती हो। इस गलत परंतु प्रचलित धारणाको एकदम निकाल फेंकिये कि सेक्स प्रेमकी परिणति है। सच्चे प्रेमका सेक्सके साथ किसी प्रकारका संबंध नहीं है। और सबसे बढ़कर है भगवान्-पर श्रद्धा और भागवत शक्तिकी सहायता। यह प्राप्त हो तो दुनिया-की कोई चीज असंभव नहीं रह जाती।

जीवनमें प्रेम

लड़का हो या लड़की, हर एकके जीवनमें प्रेमकी कठिन समस्या स्वाभाविक रूपसे पैदा होती है। बचपनकी देहली पार करते ही प्रायः सभी-को, चाहे जल्दी हो या देरमें, प्रेमका सामना करना पड़ता है और ही इसके कारण मानव हृदयमें जो नाजुक स्थिति पैदा होती है उसकी करोड़ों तीव्र अनुभूति होती है। बालक उसे समझनेकी कोशिश करता है और यह जानना चाहता है कि इस परिस्थितिमें उसे क्या करना चाहिये। इस विषयमें बड़े भी लगभग उसी नौकामें होते हैं। वे भी उन शक्तियोंके हाथमें खिलौना होते हैं जो उनपर कब्जा कर लेती हैं। वे परिस्थितिके साथ समझौता करके ऐसी तरकीब

निकाल लेते हैं जिसमें उनके तथा समाजके जीवनमें खलवें मचे।

प्रेमकी समस्या ऐसी अजीब है कि इसे हल करनेके लिये से सहायता नहीं मिलती। बालकको अपनी पाठ्य पुस्तकोंके बारेमें कोई जानकारी नहीं मिलती। वह अपने माता-अध्यापक या किसी और बड़ेसे इस बारेमें बात करते हुए सन्तुष्ट है और अगर बात छेड़ भी दे तो उनके उत्तर और भी मुश्किल पैदा करनेवाले होते हैं। वे या तो चुप रहनेके डांट देते हैं या उससे कहा जाता है कि अभीसे इन बातोंमें पड़ो, बड़े होकर अपने-आप समझ जाओगे — लेकिन यह बात नहीं है। बड़े इस विषयमें बच्चोंसे अधिक नहीं जानते, उनमें से हां, उनके लिये यह विषय अपना नयापन खो देता है इसलिए उनकी जिज्ञासा मर-सी जाती है। और अगर बालक अपने माता-पिताओंके साथ इस विषयमें बात करे तो... शायद इस विषयमें न कहना ही ज्यादा अच्छा है।

कभी-कभी मां-बाप बालककी सहायता करनेकी कोशिश करते हैं परंतु उनके उत्तर बालककी समझसे बाहर होते हैं और उसका समाधान करनेकी जगह नये प्रश्न पैदा कर देते हैं। बालक का एक ऐसी दुनियासे परिचय होता है जिसे वह देख तो पाता पर उसका प्रभाव छिपा नहीं रहता। ऐसा लगता है कि उसे एक नीरव शक्तसे काम पड़ा है जिसे कोई नहीं समझ सकता जिसपर कोई अधिकार नहीं कर पाता फिर भी उसके साथ बातचीत है और उसके साथ समझौता करना है। उसके चारों ओर उसकी सहायता करनेकी जगह उसे दबाने या छिपानेकी कोशिशें करते हैं।

बालक जैसे-जैसे बड़ा होता है वह देखता है कि प्रेमकी समस्या संसारकी सबसे बड़ी समस्याओंमेंसे है। वह देखता है कि बड़े लेखकों और कवियोंने उसके माधुर्यकी प्रशंसामें या उसकी उग्रताकी निंदामें या उसकी तरंगोंके बखानमें पुलंदके पुलंदे

मारे हैं। उन चीजोंको पढ़ाते हुए उसके अध्यापकोंको इस विषयमें काफी गाल बजाना होता है परन्तु वस्तुतः उसे समझनेवाला कोई नहीं मिलता।

फिर बालकको कुछ ऐसी पुस्तकें मिल जाती हैं जो इस विषय-पर प्रकाश डालनेका दावा करती हैं। उससे कहा जाता है कि वह अपने स्वप्नोंका विश्लेषण करे और अपनी उपचेतनाके द्वार खोले। परिणामस्वरूप उसके आगे एक गंदी नाली खुल जाती है। उसके द्वारा आये हुए नये समाधान और नये प्रश्न और नयी कठिनाइयोंको जन्म देते हैं। अंतमें बालकको यह स्वीकार करना पड़ता है कि प्रत्येक जीवित प्राणीकी तरह उसमें भी एक गुप्त शक्ति काम कर रही है जिसका आरंभ और विकास शायद जानवरोंमें हुआ है इसलिए, फिर भी उसे इसके परिणामोंको दुनियाकी आंखोंसे छिपाये अपने मन रखना चाहिये।

श्रीमाताजी तथा श्रीअरविन्दने अपने ग्रंथोंमें अनेक स्थानोंपर प्रेमका उल्लेख किया है। उन्होंने बताया है कि प्रेम भगवान्का ही एक रूप है और इस विश्वके आधारभूत तत्त्वोंमेंसे है। हां, अभी-तक वह भली भांति अभिव्यक्त नहीं हुआ है और उसका अधि-कांश परदेके पीछेसे ही काम कर रहा है, इसलिये हम यह नहीं जान पाते कि उसने सृष्टिके अन्दर हर व्यक्तिके विकासमें कितना योगदान दिया है।

भगवान् एक होते हुए भी अनेक हैं। “एक” और बहु एक साथ हैं। वे सृष्टिमें चेतनाके भिन्न-भिन्न केन्द्रोंद्वारा अभिव्यक्त होते हैं। प्रेमके बिना ये केन्द्र हमेशा अलग ही रहेंगे, उनमेंसे प्रत्येक किसी दूसरेके साथ किसी प्रकारका संबंध रखे बिना विकसित होगा। प्रेमके बिना उसके अन्दर भगवान्के साथ तादात्म्य तथा अन्य सब केन्द्रोंके साथ आन्तरिक संबंधका भाव न पैदा होगा। भगवान्का वह रूप जिसने चिर विरोधको पाटनेका काम अपने ऊपर लिया है प्रेम कहाता है; विकासमें प्रेम ही वह छिपी हुई शक्ति है जो इस महान् कार्यको पूरा करेगी। ध्यानसे देखनेवाला (वच्चे इसे

प्रायः ध्यानसे देखा करते हैं) हर जगह प्रेमकी अभिव्यक्ति इसके प्रारंभिक रूप कीड़े पतंगोंमें तथा निम्नश्रेणीके जानवरोंमें दिखायी देंगे। लैंगिक वृत्ति, सहकार वृत्ति (जैसे चींटियों या मक्खियोंमें) आदिके रूपमें वह नैसर्गिक या यांत्रिक रूपमें दिखता है। भूख भी एक प्रकारसे प्रेमकी ही एक अभिव्यक्ति है। व्यक्ति अपने प्रेमपात्रको आत्मसात् करनेके लिये हड़प जाता है।

आगे चलकर वह भौतिक शास्त्रमें पढ़ेगा कि पदार्थके निर्माण लिये आकर्षण शक्ति (विकर्षण शक्ति इसीका दूसरा रूप है) आवश्यक है। अणु और परमाणु अपने अन्दर स्थित अमुक शक्ति कारण ही अपनी स्थितिमें रह सकते हैं। श्रीमाताजीने कहा है कि पत्थरोंमें भी सचेतन प्रेम विद्यमान है।

उच्चतर श्रेणीके प्राणियोंमें जैसे पक्षियोंमें या स्तनपायी जानवरोंमें प्रेम यांत्रिक या नैसर्गिक रूपसे उठकर जरा ऊंचा रूप लेता है। उसमें विकासशील आत्मिक अंश भी आ जाता है। इसके रूप हैं बच्चोंका पालन-पोषण, अपने साथीके प्रति वफादारी, झुण्डके प्रति लगाव आदि; उच्चतर प्राणियोंमें और मनुष्योंमें दिशामें बहुत अधिक भेद नहीं है। अपने मानसिक विकास के चितन शक्तिके कारण ही मनुष्य प्राणियोंसे अधिक भिन्न होता है।

प्रकृतिने अपना उद्देश्य पूरा करनेके लिये ही लैंगिक भेदकी रचना की है। यह प्रजननके लिये अनिवार्य नहीं है क्योंकि हम सृष्टि अलैंगिक और उभय लैंगिक जातियां भी पाते हैं। यह भेद कामके लिये उपयोगी अवश्य है।

हममेंसे हर व्यक्ति धरतीपर बार-बार जन्म ले-लेकर विकसित कर रहा है। हमारे विकासका उद्देश्य है तत्त्वतः भगवान्के तादात्म्य पाना या एकताका अनुभव करना, साथ ही दूसरोंके प्रेमके संबंधको भी जान सकना। तब दूसरोंका विरोध करने जगह हममेंसे हर एक दूसरेके साथ अपने स्वाभाविक लगावका अभिव्यक्त कर सकेगा। विकासके साथ चेतना भी हमेशा विकसित होती

रहती है और एक दिन आता है जब व्यक्ति दूसरोंमें भी उसी चेतना-
को देख सकता है जो उसके अपने अंदर है। वह दूसरोंको भी
अपनी ही आत्माके अनेक रूप मानता है, वह अपने-आपको दूसरोंमें
और सबमें देख पाता है। और अंतमें वह उपनिषद्के इस रहस्यको
समझ सकता है जिसमें कहा गया है — आत्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं
भवति — सब कुछ इसीलिये प्रिय होता है कि उसमें भी अपनी आत्मा-
का ही प्रसार है। इस बातको आदमी तभी समझ सकता है जब
वह हर जगह, हर एकमें उस “एक” को देख सके।

इसके आधारपर हम मनुष्योंका दो श्रेणियोंमें विभाजन कर
सकते हैं: पहले बहिर्मुख जिन्हें दूसरोंके साथ संबंध रखनेसे लाभ
होता है। उनके लिये कोई समस्या नहीं है। वे स्वभावतः अपनी
प्रकृतिके चुने हुए मार्गपर चलते हैं। उनसे उच्चतर मार्गका आग्रह
करना या उन्हें बदलनेका प्रयास करना व्यर्थ होगा। ये बातें उन-
की समझसे परेकी हैं। दूसरी श्रेणीको हम अंतर्मुख कह सकते हैं।
यह अपने विकासमें कुछ अधिक आगे बढ़े हुए होते हैं, और उन्हें
अपने अंदर बैठे हुए भगवान्की ओर जोरदार आकर्षण होता है।
उनके लिये दूसरोंके साथ गठबंधन, उनकी अपनी आध्यात्मिक नियति-
से उलटा पड़ेगा और उनकी अंतरात्माके विकासमें रुकावट डालेगा।
वे अपने-आपको बांधकर अपनी मौलिक स्वाधीनताको नहीं खो सकते।
परंतु इन दोनों श्रेणियोंको अलग करनेवाली लकीर बहुत स्पष्ट
नहीं होती। बहुत-से स्त्री-पुरुष अनिश्चित स्थितिमें इस लकीरके
आसपास ही रहते हैं। इनके अंदर बड़ी लंबी और कष्टदायक
लड़ाई चलती है। वे साधारण मानव जीवन तथा भागवत जीवन-
के बीचमें इधरसे उधर खिंचते रहते हैं। परंतु फिर भी चाहे कुछ
भी क्यों न हो, उन्हें आगे बढ़ना ही होगा।

योग वैयक्तिक विकासकी प्रक्रियाको तेज कर देता है। योगके
द्वारा अंतर्मुख जीवन चाहनेवाले, और सीमाके आसपास अनिश्चित
क्षेत्रमें संघर्ष करनेवाले एक ही जीवनमें बहुत-सा रास्ता पार करके
भागवत ऐक्यके पास पहुंच सकते हैं। योग करनेकी इच्छा इस

वातका प्रमाण है कि व्यक्ति अंतर्मुख मार्गपर या उसके दिल्कुल ही है।

इस बातको ध्यानमें रखते हुए हम समझ सकते हैं कि जो योगमार्गको अपनाना चाहते हैं उन्हें माताजी और श्रीअरविद्वारा यह क्यों कहा करते हैं कि प्राणके, भावनाके ये लैंगिक मार्गकी सबसे बड़ी बाधाओंमें से हैं। इसीलिये बाहरके लोग जो योगको नहीं अपनाना चाहते — माताजी और श्रीअरविद्वारा पुस्तकें पढ़कर यह समझ लेते हैं कि उन्होंने मानव मात्रके लिये प्रेम, लैंगिक संबंध आदिका निषेध किया है। परंतु यदि कोई व्यक्ति जीवन बितानेवाला व्यक्ति माताजीसे व्याहृके बारेमें अनुमति तो साधारण अवस्थामें उत्तर नकारमें नहीं होता। और अनुमति उन करोड़ोंके लिये अवश्य ही होगी जिन्हें कभी यह भी नहीं आता कि अपने जीवनके बारेमें, किसी आध्यात्मिक व्यक्ति सलाह लें।

ये बातें जानकर हममेंसे हर एक अपने-आपको ध्यानसे देखकर कम-से-कम मोटे तौरपर यह जान सकेगा कि उसकी क्या स्थिति और वह विकासकी इस लंबी सीढ़ीपर किस जगह खड़ा है। अपनी नैसर्गिक प्रतिक्रियाओंको भली-भांति समझ सकेगा और भी कि वह चाहे कहीं भी क्यों न हो अंतमें — चाहे देर हो या न हो — वह सारी सीढ़ी पार करके मोक्षतक अवश्य जा पहुंचेगा। जानकर उसके अंदरसे भय भाग जाता है और यह खटका रहता कि उसे हमेशाके लिये अपूर्ण, तिरस्कृत और घृणित अवस्था रहना ही होगा। वह हिम्मत हारे बिना अपने अंदर देखेगा और समुचित निर्णयपर पहुंच सकेगा।

प्याला प्रेम अमीरसका रे

संसारके सभी कष्टों और दुन्दुओंका अन्त करनेकी क्षमता केवल प्रेममें है। इन सब कष्टोंके पीछे भगवान्से पृथक्ता छिपी है और प्रेम ही इस पृथक्ताको दूर कर सकता है। लेकिन भगवान्के लिये प्रेम ऐसा होना चाहिये जिसमें और किसीके लिये कोई स्थान न हो। प्रेम देना जानता है। भगवान्के लिये प्रेम हो तो अपने-आपको पूरी तरह भगवान्को देना होगा, यह नहीं कि हम रुपयेमें पच्चीस पैसे परिवारको, पच्चीस पैसे इष्ट मित्रोंको, पच्चीस पैसे अन्य समस्त अधिकारियोंको देनेके बाद बाकीके पच्चीस पैसे बड़ी उदारतासे भगवान्के अर्पण कर दें। भगवान्के लिये सच्चा प्रेम अभी जागता है जब अन्य सब बंधन कट जाते हैं। भगवान्के साथ पूर्ण ऐक्यका अनुभव करनेपर ही हम सृष्टिका रहस्य जान सकते हैं और उसकी सार्थकता सिद्ध कर सकते हैं।

भागवत प्रेम अपनी पूर्ण धनताके साथ, अपनी पूरी शक्तिके साथ और हमारे वातावरणमें व्याप्त है परंतु हम अपने-आपको अपने बनाये हुए ढांचेमें बन्द किये रहते हैं इसलिये उसे देख नहीं पाते। हम-जैसे बहुतोंके जीवनमें कभी-कभी ऐसे क्षण आते हैं जब उन्हें अचानक इस प्रेमकी अनुभूति होती है और चिल्ला उठते हैं, आह भगवान्के बड़ी कृपा की। भगवान्की कृपा तो हमेशा ही रहती है, हम कभी कदास ही उसे अपने अन्दर प्रवेश करने देते हैं। हम धार न खोलें तो प्रकाश कैसे आ सकता है? हम अपने अंधकार-कवचको एक सुईके बराबर भी छेद दें तो उसमेंसे भगवान्का प्रेम और उनकी चेतनाका प्रवेश हो जाता है। हम जितना अधिक खुल सकें उतनी अधिक अनुभूति हो सकती है। भागवत करुणा, भागवत ज्योति आदि सभी हर समय हमारे चारों ओर हमारे खुलनेकी प्रतीक्षामें रहती हैं लेकिन हम अपनी ही क्षुद्रताओंमें, अपने

क्षुद्र अहंमें इतने व्यस्त होते हैं कि भगवान्‌के लिये जगह नहीं होता। समय नहीं होता।

हमारा यह दृष्टिकोण हर बातमें गड़बड़ पैदा करता है। विश्वको देखते हैं तो अपने-आपको उसका केंद्र मानकर। कहानी तो सभीने सुनी होगी कि एक आदमी नदीमें डूबा जा था। वह चिल्लाया : बचाओ बचाओ, मुझे बचाओ, जगत् बचा जा रहा है। लोगोंने उसे नदीसे बाहर निकाला और जगत् बचानेका रहस्य पूछा। उसने कहा आप मुआ तो जगत् बचावात कुछ ऐसी ही है। मनुष्य सारे जगत्में अपने-आपको देखता है और किसीके लिये जगह ही नहीं रहती।

यदि हम सच्ची दृष्टि प्राप्त करना चाहें, वस्तुओंको उनके परिपार्श्वमें देखना चाहें तो उसका सबसे सच्चा उपाय है आपको भगवान्‌के अर्पण कर देना। यह कहना जितना सरल करना उतना सरल नहीं है। लोग इसके बारेमें इतने हल्के से बात करते हैं मानों यह भी एक गुलाबजामुन या रसगुल गटक लेना है। लोग बड़ी आसानीसे कह देते हैं हमने तो आपको भगवान्‌के हाथोंमें सौंप दिया, अब जो कुछ होता है उसकी मरजीसे होता है। परंतु दसमेंसे नौ उदाहरणोंमें यह आपको धोखा देना और अपनी जिम्मेदारीसे बचना होता है। यदि हम सच्चाईके साथ अपने-आपको देनेका प्रयास करें तो कम कुछ हदतक तो अपने क्षुद्र अहंमेंसे निकलना ही पड़ता।

साधारणतया मनुष्य जब भगवान्‌के बारेमें सोचते हैं तो आपको देना नहीं चाहते बल्कि स्वयं भगवान्‌को अपने पास लाना चाहते हैं। हम कितनी बार सुनते हैं मैंने भगवान्‌को कितना पुकारा पर दीनदयालके कानमें भनकतक नहीं पड़ी। का एक रहस्य है। हमारी पुकारको प्रत्युत्तर अवश्य मिलता पर बहुत बार हम उसे स्वीकार करनेके लिये तैयार नहीं होते हम अपने अंधेरे घरींदेमेंसे बाहर निकलनेके लिये तैयार नहीं होते और शिकायत करते हैं कि भागवत ज्योति हमारे ऊपर

नहीं कर रही। उपाय यही है कि हम अपने-आपको अपने घरीब-
 घरे बाहर निकालें, अपने लिये कुछ भी रखे बिना अपना सब कुछ
 बिना किसी मांगके भगवान्‌के अर्पित कर दें। आत्म-समर्पणका
 मानन्द हमारे दरवाजे खोलेंगा और तब हमें कुछ स्पर्श मिलनेकी
 संभावना होगी। जब हम केवल प्रेमके लिये प्रेम करते हैं, उसके
 बदलेमें कुछ नहीं मांगते, बदलेमें प्रेम पानेकी परवाह नहीं करते,
 तब सच्चे प्रेमका आरंभ होता है।

जब हम इसलिये प्रेम करते हैं कि हम प्रेम किये बिना नहीं
 रह सकते, इसलिये नहीं कि हमें उसका प्रत्युत्तर मिलता है अथवा
 हमारा प्रेम दूसरी ओरके प्रेमके प्रत्युत्तरके रूपमें होता है बल्कि
 इसलिये कि प्रेम ही हमारा सब कुछ है, हम प्रेम करनेमें ही पूरा-
 पूरा संतोष पाते हैं, इसमें किसी प्रकारका वाणिज्य व्यवसाय नहीं
 करते। और इस प्रकारके प्रेमका रस मिल जाय तो सब प्रश्न
 अपने-आप चुप हो जाते हैं, हमें किसी उत्तरकी आवश्यकता नहीं
 रह जाती, हम स्वयं प्रेम बन जाते हैं, प्रभु प्रेमका पथ पढ़ाई दिया
 अब पढ़नेको नहीं कुछ बाकी।

लेकिन यहां एक बड़ी मुश्किलसे सामना होता है। भागवत
 प्रेमका अनुभव करनेके लिये अन्य सब प्रेमोंसे अलग होना जरूरी
 है। कई प्राचीन मार्ग प्रेम मात्र का बहिष्कार सिखाते हैं और
 हमारे अन्दरके प्रेमको पूरी तरह सुखा डालनेकी कोशिश करते हैं
 लेकिन यह ठीक उपाय नहीं है क्योंकि इससे मनुष्यका हृदय विल-
 कुल सूख जाता है, उसके अन्दर प्रेम करनेकी या प्रेमको अनुभव
 करनेकी क्षमता ही नहीं रह जाती इसलिये वह भागवत प्रेमसे भी
 विलकुल कोरा रह जाता है। मनुष्यकी क्षमताएं इतनी सीमित हैं
 कि हम निम्नतर चीजको हटाने जाते हैं तो उच्चतरकी संभावना-
 को भी खो बैठते हैं। और इसे ठीक करनेके लिये बहुत वर्षों-
 की, कई बार कई जन्मोंकी जरूरत होती है।

मानव प्रेम चाहे वह कितना ही स्वाभाविक और शुद्ध क्यों न
 हो, जैसे मां-बापका अपने बच्चोंके प्रति, बच्चोंका मां-बाप-

के प्रति, भाई वहनका, प्रेमी युगलका — बिना अपवादके अविद्या, अज्ञान और अंधकारपर आधारित होते हैं और उनमें नाधिक मात्रामें स्वार्थ छिपा रहता है। इसलिये यदि मानव का भी सच्चा रूप देखना है तो उसमेंसे अधिकार-लिप्साके रूपोंको ईर्ष्या आदिके सभी रूपोंको निकाल बाहर करना होगा हमें अपने प्रेमपात्रको अपने वशमें करनेकी, उसपर अपनी मानी चलानेकी, उसपर अपनी इच्छाएं या सनक लादनेकी या अपना लेनेकी बात भी न सोचनी चाहिये। प्रेममें लेना देना मुख्य है। प्रेमका पुरस्कार स्वयं प्रेम है। प्रेमके किसी प्रकारकी मांग करना या किसी प्रकारकी आशा रखना है, कोई शिकायत करना गलत है।

इतना हो जाय तो यह अपने-आपमें एक बहुत बड़ा कदम इस मार्गपर प्रगति करते हुए हमें पता लगेगा कि प्रेम हम व्यक्तिगत चीज नहीं है, प्रेम दिव्य और सार्वभौम है और हम द्वारा प्रकट होनेका प्रयास कर रहा है। प्रेमके लिये यह जरूरी है कि हम अहंकारको तिलांजलि दे दें। सिर्फ योगके साधक लिये नहीं सामान्य प्रेमियोंके लिये भी यह जरूरी है कि वे अहंकारके बिना प्रेमपात्रके चरणोंमें अपना उत्सर्ग कर दें। आपको बिना किसी मांग या शर्तके दे दें। 'जब लग मेरी करे, तब लग काज एकहु नाहि सरे' लेकिन प्रेमीका जहां समाप्त होता है साधकका क्षेत्र वहां शुरू होता है। प्रेमके प्रेमके पुजारीमें यह इच्छा होनी चाहिये कि वह प्रेमके बाह्य को छेदकर, उसकी मानव सीमाओंको लांघकर उसके पीछे दिव्य प्रेमतक पहुंच सके और उसके बाद तो —

पी ले प्याला हो मतवाला
प्याला प्रेम अमीरसका रे।

शिक्षा

माना यह जाता है कि शिक्षकका काम है विद्यार्थीको शिक्षा देना। विद्यार्थीके अन्दर जो चीज नहीं है वह उसमें भरना। परंतु वह बात भ्रामक है। एक ही अध्यापक पांच विद्यार्थियोंको बड़ी लगनसे पढ़ाता है, उनमेंसे एक बहुत होशियार निकलता है और दूसरा एकदम कूड़मग्न जिसके दिमागमें कुछ घुसता ही नहीं। कहा जाता है कि एककी बुद्धि तीक्ष्ण है, दूसरा बुद्धिहीन है। काम-चलाऊ भाषामें ये बातें ठीक हो सकती हैं पर वास्तविकता इनसे दूर है।

सच्ची बात तो यह है कि सच्चा ज्ञान हमारे अन्दर होता है। हम बाहरसे बहुत सारी जानकारियां प्राप्त कर सकते हैं परंतु ये जानकारियां निर्जीव होती हैं। इनमें हमारी चेतना ही प्रकाश और जीवन भरती है। सच्ची शिक्षा, सच्ची संस्कृतिका काम है इस आंतरिक प्रकाशको बाहर लाना। अफलातूनका यही मतलब था जब उसने कहा था कि शिक्षाका मतलब है याद करना, जो चीज हमारे अन्दर छिपी हुई है, हमारी हृदय-गुहामें पड़ी है उसे बाहरी चेतनाके प्रकाशमें लाना ही शिक्षाका काम है। केवल जानकारियां प्राप्त कर लेना, किताबोंको रट लेना, शिक्षा नहीं है। अमरीकाके आदिम निवासियोंके पास बहुत अधिक सोना हुआ करता था परंतु उन्हें न तो उसका मूल्य मालूम था न उपयोग, अतः उन्हें भीर नहीं कहा जा सकता। इसी तरह जिस आदमीके पास जानकारियोंका ढेर हो, जो तोतेकी तरह ग्रंथोंको दोहरा सकता है उसे "भारस्य वेत्ता" भार वहन करनेवाला गधा भले कह लें, विद्वान् या शिक्षित तो नहीं कह सकते।

सच्ची शिक्षा चेतनाका विकास है। चेतना ही ज्योति और ज्योतिकी शक्तिका वहन करती है। हमारे जीवनमें चेतनाका सब-

से अधिक महत्त्व है, हमारा सब कुछ उसीके चारों ओर उर्वर आदेशसे नाचता है। बालक क्या है? चेतनाका विकसित हुआ पुंज। चेतनाका विकास ज्योतिकी प्रखरता और विस्तारको बढ़ाता है। परंतु हमारा जीवन कुछ इस तरहका हुआ है कि वह चेतनाको विकसित होनेके लिये पूरा क्षेत्र ओ पर्याप्त अवसर नहीं देता। जीवनकी बाह्य आवश्यकताएं इस प्रकारके दबाव डालती हैं कि वह सत्य मार्गसे विचलित जाती है। उससे इस प्रकारकी मांगें की जाती हैं जिन्हें पूरा करने उसके स्वभावके विपरीत है। यदि एकदम पार्थिव भाषामें तो उसे तोड़ा, मरोड़ा और खींचा-ताना जाता है ताकि उसे योगी बना, उसके अपने सच्चे मार्गपर नहीं, हमारी दृष्टिमें मार्ग उसके लिये ठीक है उसपर चलाया जा सके।

हमारे मस्तिष्कको इस चेतनाका एक उपकरण होना चाहिए उसे हर बातमें आंतरिक चेतनाके नेतृत्वमें चलना चाहिये यन् कहें कि उसका यंत्र होनेके साथ-साथ उसके विकासमें सहाय होना चाहिये। हमारी शिक्षाका कार्य यह होना चाहिये कि हमारे चेतनाकी प्रज्वलित अग्निमें समिधाएं डालें, लेकिन ऐसी समिधा जो अग्निको और अधिक तेज कर सकें, केवल जानकारियोंकी समिधाएं नहीं जो अपने भारसे ही अग्निको लगभग बुझा दें। सच्चे विद्यार्थी वह है जो इस चेतनाको जगाना चाहता है, सच्चा पक वह है जो इसमें सहायता कर सकता है और विद्यार्थीको मार्ग दिखा सकता है।

लेकिन हम देखते क्या हैं? हम दूसरोंकी बात न करके घरकी बातको ही लें। आज भारतमें शिक्षा-प्रसार जोरोंपर विद्यालयों और विश्वविद्यालयोंमें इतने विद्यार्थी पहले कभी रहे। शिक्षा समाजके निचले स्तरतक इतने व्यापक रूपसे फैली ही कभी पहुंची हो। परंतु उसका उद्देश्य क्या है और परिणाम क्या-क्या दिखायी देते हैं? पहले हम सब गुलाम भारतीय थे आज आजाद बंगाली, मराठा, तमिल आदि। जूतियोंमें दाल

आज मामूली बात है। हमारे सुशिक्षित कहानेवाले वर्गको गाली-
 मलौज और जूती-पैजार करते जरा भी संकोच नहीं होता। आपस-
 की एकता बढ़ानेके लिये जो उपाय सोचे गये हैं वे इतने अधिक
 छिछले और बनावटी हैं कि बस भगवान् ही रक्षा करे। हमसे
 कहा जाता है कि धार्मिक शिक्षाके कारण आपसमें मनमुटाव पैदा
 होता है। हमारा धर्मनिरपेक्ष राज्य है अतः यहांकी शिक्षा भी
 धर्मनिरपेक्ष होनी चाहिये। रामायण महाभारत पढ़ते हुए या कृष्ण
 मुद्रामाकी बात करते हुए हम एक धर्मवालोंका पक्षपात करते हैं,
 संस्कृत पठन-पाठन पर जोर देकर हम दूसरे धर्मवालोंको ठेस पहुंचाते
 हैं। इसलिये इस प्रकारकी चीजोंको हमारे शिक्षा-क्षेत्रमें स्थान न
 मिलना चाहिये। गंगाको गंगा जी कह दिया तो अमुक लोगोंका
 दिल दुखेगा और अमुक ऋषिने मांस खाया कहनेसे एक और दल-
 का दिल टुकड़े-टुकड़े हो जायगा। इतिहास पढ़ाते समय भी साव-
 धानी बरतनी जरूरी है क्योंकि प्रताप और शिवाजीकी प्रशंसा करने-
 से अमुक लोग विगड़ बैठेंगे और अकबर और औरंगजेबकी प्रशंसा
 करनेवालोंको रास न आयेगी।
 हमसे कहा जाता है कि हमारी शिक्षा ऐसी होनी चाहिये जो
 जनताकी आवाजका उत्तर दे सके, जनताकी मांगको पूरा कर सके।
 लेकिन जनताकी आवाज है क्या? सुकरात जैसे मनीषीको जनता-
 की आवाज, और वह भी सुशिक्षित जनताकी आवाज, के कारण
 ही विषका प्याला पीना पड़ा। गेलिलियोकी बलि चढ़ानेके लिये
 भी जनताकी आवाज काफी दूरतक जिम्मेदार थी।
 कहनेका आशय यह कि ऊपरी लीपापोतीसे अब काम न चलेगा।
 भारतको अपनी अन्तरात्माके प्रति सचेत होकर अपने अन्दरसे पथ-
 दर्शन पाना होगा, भारतको दूसरोंकी नकल करनेकी जरूरत नहीं
 है। हमें अपनी शिक्षाको शुद्ध भारतीय अर्थात् आध्यात्मिक आधार
 देना होगा। अध्यात्म-शिलापर जो मन खड़ा होगा वह सचमुच
 अजडूत होगा और हमारी समस्याओंका हल दिखा सकेगा।

विद्यार्थियोंकी समस्या

आजके नवयुवक कल राष्ट्रके कर्णधार बनेंगे। इसलिये प्र
राष्ट्रका यह कर्तव्य है कि उनकी भली-भांति देख-भाल करे। आजकल सारे संसारमें ही महाविद्यालयोंके विद्यार्थियोंमें अपनी
की एक लहर फैली हुई है और वे बड़ी ही ऊटपटांग बातें
रहते हैं। कोरिया, वियतनाम, मिश्र आदि देशोंमें जो उथल-पुथल
हुई है उसकी बात जाने दीजिये, हम अपने ही देशमें देखें तो ल
से सिर नीचा कर लेना पड़ता है। हमारे राजनीतिक नेता
संभव और असंभव आंदोलनमें विद्यार्थियोंको उकसाकर आगे कर
हैं। हिंदीविरोधी आंदोलन, ट्रामके किरायेके विरुद्ध आंदोलन, भा
संबन्धी आंदोलन, खाद्यान्न-संबन्धी आंदोलन आदि अनगिनत आंदोल
भिन्न-भिन्न प्रकारकी हड़तालोंमें विद्यार्थियोंका उपयोग किया जा
है। विद्यार्थी उन्मत्त होकर राष्ट्रकी संपत्तिका विनाश करते
और गरीब देशको और भी अधिक गरीब बनानेमें सहायता दे
हैं। विद्यार्थी-आंदोलनके विरुद्ध सरकार भी बेबस-सी हो जाती
क्योंकि किसीका बेटा, किसीका नाती, किसीका भाई, किसी
भतीजा उसमें भाग ले रहा होता है।

फिर इस प्रकार अनुशासनहीनताका पाठ पढ़कर विद्यार्थी
शिक्षण-संस्थाओंपर भी उसी अस्त्रका प्रयोग करते हैं। परी
प्रश्न-पत्र कठिन लगा तो हड़ताल, किसी शैतान लड़केको नि
दिया तो हड़ताल, शुल्क बढ़ा तो हड़ताल, किसी बस कंडक्टर
टिकट न होनेपर सख्ती की तो हड़ताल — पग-पगपर हड़ताल
लिये तैयार। विद्यार्थी-जीवन शक्ति संचयके लिये होता है।
हड़तालें होती रहें तो पढ़ाईका वातावरण क्या खाक बनेगा?
स्वाभाविक है कि परीक्षाके समय कुंजियोंसे और नकलसे काम
कर किसी तरह पास होनेकी धुन लग जाती है और जो
बाधक हो तो वह शत्रु बन जाता है। जरा गंभीरतासे सोचें

देखा जाय कि इस सबसे हानि किसकी होती है ? शिक्षाका स्तर गिरनेसे किसे नुकसान होता है ?

नवयुवकमें शक्ति होती है, उत्साह होता है और कुछ करनेकी हवस होती है। उसे ठीक मार्ग-दर्शन न मिले तो वह गलत रास्ते-पर चल पड़ता है। और गलत रास्तेपर चलनेमें, या यूँ कहिये भ्रमणमें ज्यादा आसानी होती है। धारासे उल्टा तैरना तो बस मिहोंका ही काम है। यदि समाज खून लगाकर शहीदोंमें नाम करनेका अवसर दे तो फिर कमर कसकर परिश्रम करनेकी क्या जरूरत ?

पहले विद्यार्थी केवल अभिजात कुलोंसे आया करते थे। उन्हें अपने घरकी मान-मर्यादाका ख्याल होता था, उनके मां-बापको कुलकी प्रतिष्ठा और अपनी नौकरीकी चिंता होती थी और यूँ भी घरके संस्कारोंके कारण बहुत सी चीजें उन्हें अपनेसे नीची लगती थीं। आज विद्यार्थी समाजके प्रत्येक स्तरसे आते हैं। घरपर कुलीनताका कोई प्रश्न ही नहीं होता। मां-बाप समाजके निम्नतम स्तरके हो सकते हैं या फिर नये-नये अमीर जिन्हें दिखावा ही प्रिय होता है। इस तरहके कारणोंसे विद्यार्थीमें सदाचार, शिष्टता, अध्ययन आदिकी जगह उत्पात, विद्रोह और उत्तेजनामें रस लेनेकी प्रवृत्ति जाग जाती है। उसमें एक प्रकारकी हीनता-ग्रंथि बन जाती है, जिसके कारण वह अपने-आपको ऊँचा और चमकदार दिखानेकी कोशिश करता है। वह देखता है कि समाजमें ईमानदार, सच्चे और परिश्रमी लोगोंके लिये जगह नहीं है। बेईमानी, चोरबाजारी और धोखाधड़ी किये बिना जीवन बिताना असंभव-सा है इसलिये वह भी इन्हीं चीजोंको सीखता है और इनमें पेशेवर लोगोंसे भी जागे बढ़ जानेमें गर्वका अनुभव करता है। अभी उस दिन हमें एक धर्म-भीरु विद्यार्थीसे बातचीत करनेका अवसर मिला। वह भविष्यमें व्यापारी बननेका स्वप्न ले रहा है। बातचीतमें उसने कहा, धर्म और संसार दो अलग चीजें हैं। अपने जीवनमें वह धर्म-तत्त्व आदिका पालन करेगा और व्यापारमें सांसारिक वृद्धि लगायेगा।

आज विद्यार्थीको आप शिष्टाचारकी बातें सिखाइये, वह घर पहुँचते आपकी बातें भूल जायगा। उसे याद रहेगा कि किस लोक-सभा और विधान सभाओंके सदस्य — जो देशके नेता कहलें हैं — एक-दूसरेको गाली-गलौज देते हैं और अभद्रताका नंगा दिखाते हैं।

अभी कुछ दिन पहले एक पत्रकारने दिल्लीमें बहुत-से कालिगं विद्यार्थियोंसे बातचीत की थी। उनसे पूछा गया कि वे अपने समयका उपयोग कैसे किया करते हैं। उनमेंसे ३२% ने कहा कि वे कनाट सर्कसमें चहलकदमी करते हैं। १६% ने कहा कि वे घूमने जाते हैं। खाली समयमें पढ़ाई करनेवाले केवल १०% थे। कसरत आदि करनेवाले इससे भी कम। लड़कियोंके छेड़खानी उनका एक विशेष शगल है। ४२% विद्यार्थी कहते कि वे सिगरेट पीते हैं और ४१% ने स्वीकार किया कि वे शराब से अपरिचित नहीं हैं। उनमेंसे बहुतोंको देशकी समस्याओंके बारे में कुछ भी नहीं मालूम था। एकने इन्दिरा गांधीको महान् गांधीकी लड़की बता दिया। हमारे बहुत-से विद्यार्थी जब बड़े होते हैं तो वहाँके प्रकाशसे उनकी आंखें चुंधिया जाती हैं और हमेशाके लिये यूरोप और यूरोपीय जीवनके पतंगे बन जाते हैं।

पहले घरोंमें धर्मका वातावरण होता था, पाप-पुण्यका होता था और स्वर्ग-नरककी चिन्ता होती थी। आजके समाज धार्मिक लोग भी अपने धर्मको जीवनपर प्रभाव नहीं डालने लगे। पूजा पाठके लिये पैसा देकर स्वर्गमें अपने लिये स्थान निर्धार करवा लेते हैं और वस। स्वर्ग-नरकके चित्र आजके युवकका ध्यान नहीं खींचते, वह पाप-पुण्यके झमेलेमें नहीं पड़ना चाहता इसलिए आज हम फिरसे पुरानी जड़ी-बूटियोंसे काम न चला सकेंगे। समय बीत चुका वह वापिस नहीं आया करता। नये जमाने की नयी समस्याएं हैं और उनके लिये नये उपचार ढूँढने होंगे। यूरोप की तरह अधिकाधिक भौतिक सुख-सुविधाएं देनेसे भी काम चलेगा। हम प्रायः ही सुनते रहते हैं कि वहाँके नवयुवकोंमें हम

यहाँसे भी ज्यादा कुण्ठा घर करती जा रही है, मानसिक और स्ना-
यिक रोग इसका परिणाम है।

हमें विश्वास है कि जबतक देशकी चेतनाको न उठाया जायगा
तबतक इस समस्याका कोई हल नहीं हो सकता। यह काम
लेखरवाजियोंसे कभी न होगा। हमें अपने जीवनके मूल्य बदलने
होंगे। तथाकथित सफलता और धनने हमारे सर्वोच्च सिंहासनको
हथिया लिया है। हमें उन्हें उचित स्थानपर बिठाना होगा। इस
विषयमें हम श्रीमाताजीके दो सूत्र यहां उद्धृत करते हैं:

भारतमें शिक्षाका लक्ष्य — “भारतकी संतानको असत्यके बहिष्कार
और सत्यकी अभिव्यक्तिके लिये तैयार करना।”

इसकी तैयारीके लिये — “भौतिक तत्त्वको आत्माकी अभिव्यक्ति-
के लिये तैयार करो और रुढ़ियोंसे बाहर निकलो और आत्माके
विकासपर बल दो।”

हममेंसे जो अध्यापक हैं या शिक्षाके साथ और किसी तरहका
संबन्ध रखते हैं, या जो माता-पिता हैं जिनके बच्चे पढ़ रहे हैं या
जो ऐसे विद्यार्थी हैं जिनपर अभी यह भूत विजयी नहीं हुआ है,
उन सबका कर्तव्य है कि वे इस दिशामें भरसक प्रयास करें।
अपने किये जानेवाले कार्यका अपना मूल्य है, परंतु जिस भावसे
काम किया जाता है उस भावका मूल्य कहीं अधिक है।

विद्यार्थियोंके प्रश्न

(मैं अब यौवनकी देहलीपर खड़ी हूँ। मेरी आयुकी कई लड़-
कियां सां वन चुकी हैं परंतु मेरे घरवाले आज भी मुझे नन्हें मुन्नी
समझते हैं, बल्कि यूँ कहें कि आज मेरे साथ ऐसा व्यवहार करते हैं
जैसा पहले कभी नहीं किया। मैं किसी लड़केसे मिलना चाहती हूँ
तो उन्हें आपत्ति होती है। मैं किसी लड़केको पत्र लिखूँ तो पहले

उन्हें दिखाना पड़ता है। उन्हें मालूम है कि मेरे पत्रोंमें उनके की कोई बात नहीं होती फिर भी उन्हें पत्र देखनेका आप्रह है। आप ही बताइये मेरी आयुकी लड़कीके लिये यह अवस्था सह्य हो सकती है, खासकर ऐसी हालतमें जब मुझे अभीतक विषयमें पूरी-पूरी आजादी मिलती रही है। जबसे उन्हें पता है कि मैं "क"के साथ ज्यादा हिलती-मिलती हूं...। "क" अच्छा लड़का है। सुना है और लड़कियोंके साथ उसका संबंध अच्छा नहीं है पर मेरी बात मानिये, मेरे लिये तो वह सगे समान है। उसने भी मुझे बहनके रूपमें स्वीकार कर लिया फिर किसीको क्यों आपत्ति होती है? मेरा दम घुट रहा है। का उत्तर जल्दी देनेकी कृपा करें।)

मेरा ख्याल है कि किसी एक लड़कीकी नहीं बल्कि आजकल अधिकतर लड़कियोंकी समस्या है। हमारे समाजने प्राचीन शिष्टाचार आदिको तिलांजलि दे दी है पर उनके स्थानपर नये उनसे अच्छे नियम नहीं आये हैं अतः हम त्रिशंकु बनकर रह है। यूरोपीय रंगढंग हमें बड़े आकर्षक और मनमोहक लगते हैं जब हम उन्हें अपने जीवनमें बिठाते लगते हैं तो बात बनती परिणामस्वरूप घरोंमें मनमुटावसे लेकर कहलतक घर कर लेता जब घर ही से अशांति मिले तो आदमी जाये कहां? यह बढ़ती और फैलती रहती है। जो आदमी घरसे लड़-भिड़कर है उससे आप यह आशा नहीं कर सकते कि वह सभामंचपर शांति का दूत बन जायेगा।

हमें इस लड़कीकी समस्याको एक सामाजिक समस्याके रूपमें देखना होगा और वह भी उसके समाजको पृष्ठभूमिमें रखते आदर्शरूपमें तो हम नहीं मानते कि अमुक व्यक्ति स्त्री है अमुक पुरुष। हमारी यह मनोवृत्ति ही कलुषित है जो हमेशा ताकती रहती है कि यह लड़का है, मैं लड़की। आदर्श अनुसार हमें यही ख्याल रहना चाहिये कि मैं भी आत्मा हूं और भी आत्मा। आत्मामें लिंग-भेद नहीं होता। प्राचीन वैदिक

जीवन कुछ इसी तरहका था और मानवका पूरा विकास होनेपर यह समस्याएं न रहेंगी। परंतु जबतक यह समस्याएं हमारे गले पड़ी हुई हैं तबतक हमें अपने समाजको और अपने चारों ओरकी परिस्थितिको नजरमें रखते हुए कोई तात्कालिक उपाय ढूंढ निकालना चाहिये।

हम समाजके बंधनों या प्राचीन परिपाटियोंकी गुलामीके पक्षपाती नहीं हैं। पर साथ ही यह भी मानते हैं कि इन नियमोंको तोड़नेका अधिकार उसीको है जो ज्यादा अच्छे और सच्चे नियमोंको अपने जीवनमें ला सके। हमारे समाजमें कई नियम ऐसे हैं जो सच्चे मनोवैज्ञानिक तत्त्वोंपर आधारित हैं, परंतु अब समय बीत जानेपर, परिस्थितियां बदल जानेपर उनमें परिवर्तन और परिमार्जनकी जरूरत है। उनके साथ चिपके रहनेसे सड़ांध और उन्हें बिना सोचे-समझे उठा फेंकनेसे उच्छृंखलता पैदा होनेका डर है।

इस लड़कीके घरवाले अभीतक उसे पूरी आजादी देते आये हैं इससे यही लगता है कि वे पुराण-पंथी नहीं हैं। “क”के बारेमें उन्हें कुछ ऐसा अनुभव हुआ होगा जिसके कारण उन्हें अपनी नीति बदलनी पड़ी। उठती जवानीमें लड़के लड़कियोंको एक दूसरेकी ओर स्वाभाविक आकर्षण होता है। उस आकर्षणको बहुत अच्छी नजरसे नहीं देखा जायगा इसलिये वे जाने-अजाने इस आकर्षणको भाई-बहन-के संबंधका नाम देकर अपनी और समाजकी नजरमें अच्छा प्रमाणित करना चाहते हैं। पर भाई-बहनके संबंध ऐसे सड़कपर पड़े हुए नहीं मिलते कि जो चाहे उठाकर अपना ले। इससे एक मुखौटेका काम देनेकी जगह हमें समस्याको सीधा उसके वास्तविक रूपमें देखना चाहिये।

प्रेमकी खिलती कलियोंको न तो गंदा मानकर दूर-दूर करना चाहिये, न उनके कारण अपने-आपको दोषी और अपराधी ही मान लेना चाहिये। यह एक ऐसी चीज है जो हर एकके जीवनमें आती है, इसे छिपाकर बनावटी साधु बननेकी भी जरूरत नहीं है। मानव प्रेम साधारणतः मोटे रूपसे तीन प्रकारका होता है — एक तो विशुद्ध

रूपसे भौतिक जिसमें केवल शरीरका आकर्षण और शरीरकी होती है, दूसरे जिसमें एक दूसरेके साथ प्राणके स्तरपर आदान-प्रदान होता है, एक दूसरेके ऊपर अधिकार जमाता है या एक दूसरेको विशेष मांगको पूरा करता है और तीसरा जिसमें किसी लक्ष्य आदर्शके लिये दोनों इकट्ठे होते हैं और वह आदर्श ही दोनोंको दूसरेके साथ बांधे रखता है। इन तीनोंके अलग-अलग भेद होते हैं और एक-दूसरेके साथ नाना प्रकारके सम्मिश्रण भी होते हैं। यह सबके सब सच्चे प्रेमसे बहुत दूर हैं। सच्चा प्रेम सिर्फ आत्मा तक सीमित है और वह प्रेम भगवान्‌के प्रति ही होता है। अन्य सब इसके विकार हैं।

व्याहसे पहले प्रेमी युगलकी परीक्षा लेनेका भी एक हंगामा गांधीजीके पुत्र देवदासको राजाजीकी पुत्रीसे प्रेम हो गया था। दोनों जीने दोनोंको काफी समयके लिये अलग कर दिया। पत्रव्यवहार भी आज्ञा न थी। उसके बाद भी जब दोनोंका प्रेम बना रहा उन्होंने बड़ी खुशीसे व्याहकी आज्ञा दे दी।

रही बात पत्रव्यवहार आदिमें स्वाधीनता की। पत्र-लेखन जिस प्रकारकी मनोदशा है उसे देखते हुए यह ज्यादा वांछनीय होता है कि वह अभी कुछ समयके लिये अपने ऊपर यह प्रतिवद्ध ले कि वह अकेलेमें लड़कोंसे न मिलेगी और अपना पत्रव्यवहार किसी ऐसे व्यक्तिको दिखा लेगी जिसपर उसे पूरा-पूरा भरोसा है। यह इसलिये कि वह अजानेमें किसी गर्तमें न जा गिरे। प्रेम अपना चुना हुआ हो तो खलता नहीं है। लेकिन कुछ समयके बाद यदि वह जानबूझकर गर्तमें गिरना पसंद करे तो उसकी भी आज्ञा होनी चाहिये।

हां, इससे भी सुन्दर और सशक्त एक और उपाय है। काममें भगवती माताको सचाईके साथ सहायताके लिये पुकारें और यह विश्वास हो कि भगवती हर समय हमारे साथ है तो बहुत-सी फालतू और हानिकारक चीजोंसे बच सकते हैं। यहां सचाई शब्दको बार बार रेखांकित करना जरूरी है।

हमारा यह उत्तर सिर्फ उस मिलने-जुलनेके बारेमें है जो घनिष्ठता या आकर्षणके कारण हो। साधारण काम-काज, पढ़ाई-लिखाई आदि-के लिये मिलने-जुलनेमें जरा भी संकोच न होना चाहिये। हम पढ़ाई-प्रथा या पार्थक्यके हामी नहीं हैं।

मालूम नहीं हमारी पत्र-लेखिकाको अपने पत्रका उत्तर मिला या नहीं। यह विषय बहुत बड़ा है और इसमें बहुतसे प्रश्न उठते रहते हैं। यदि और कोई प्रश्न हों तो हम उनका उत्तर देनेका भरसक प्रयास करेंगे।

बढ़ती हुई आबादीकी समस्या

आज भारतवर्षमें बढ़ती हुई आबादीकी समस्या बहुत जटिल हो गयी है। अभी बहुत समय नहीं बीता जब भारतकी आबादी बत्तीस करोड़ थी। तब बर्मा और पाकिस्तान अलग देश नहीं बने थे। अब उन देशोंके बन जानेके बाद बचे हुए हिस्सेकी आबादी साठ करोड़से ऊपर पहुंच गयी है। यह बढ़ती हुई आबादी केवल भारत-के लिये ही नहीं सारे संसारके लिये एक समस्या बन गयी है। देश-रोमा की उन्नतिका कोई मार्ग ऐसा नहीं है जिसमें इसके कारण बाधा न पैदा हुई रही हो। इनके पेट भरनेकी समस्या तो है ही उससे भी बढ़-भर शिक्षाकी समस्या है। यद्यपि अन्न-संकटने सारे देशका ध्यान अपने ऊपर खींच लिया है जिससे शिक्षाकी समस्या अपने पूरे उग्र रूपमें नहीं दिखायी देती, फिर भी यह आये दिनकी हड़तालें, घेराव और विद्यार्थियोंके उपद्रव बराबर हमारी आखें खोलनेकी कोशिशमें हैं। भारतीय संस्कृति और धर्मके अनुसार संतान उत्पन्न करना भी एक सामाजिक कृत्य है जिसे उपेक्षाभावसे या गैर जिम्मेदारीके साथ नहीं किया जा सकता। माता-पिता बननेके लिये पहले पूर्ण ब्रह्मचारी होना जरूरी था। पच्चीस वर्षका ब्रह्मचारी गृहस्थाश्रममें प्रवेश

करने योग्य होता था। पूरे धार्मिक भावसे गर्भाधान संस्कार अन्य संस्कार करके आनेवाली आत्माके लिये उसके योग्य वातावरण पैदा किया जाता था। गर्भिणी स्त्रीके चारों ओर खुशीका सुन्दर वातावरण होता था। बालक शुरूसे ही एक जीवनके लिये तैयार किया जाता था।

आजके मां-बाप किसी आत्माको शरीर देनेके उद्देश्यसे नहीं, बल्कि अपने स्वार्थके लिये, अधिकतर अनजाने एक अंधकारमय वातावरणमें एक देह तैयार कर देते हैं। वह देह आत्माका मंदिर की जगह उसका कैदखाना होती है। गर्भमें रहते हुए भी बाहर आनेके बाद भी बालकको समुचित वातावरण नहीं मिलता उसका अधिकांश परिस्थितियोंका ऋणी होता है। बालकके ओरका समाज, उसका लालन-पालन करनेवाले और उसकी शिक्षा पद्धति — सबके सब उसके ऊपर अपना-अपना कूड़ा फेंकते रहते हैं। परिणामस्वरूप एक विकसित होनेवाली आत्माको दूर-दूर तक झड़-झंखाड़ और चारों ओरसे लपेटे हुए मकड़ीके जालोंको बनानेमें बहुत परिश्रम और समय लगाना पड़ता है। मां-बाप शिक्षक अपने अज्ञान, स्वार्थ और लापरवाहीके कारण उसका और भी कठिन बना देते हैं। इस स्थितिमें यह स्वाभाविक कि जनसंख्या बढ़ती ही जाय और उसकी समस्याएं भी दिन-दूनी चौगुनी होती जायं।

आज हमने भगवान्, धर्म और उच्चतर जीवनकी बातको दूर रखना ही फैशन समझ लिया है। हम हर चीजका कारण और भौतिक इलाज ही ढूँढ़ते हैं इसलिये कई बार रोगसे भी अधिक खराब होता है। सिरमें दर्द हो रहा हो तो खाली लेना उसका इलाज नहीं है, हमें दर्दके कारणको दूर करना चाहिये।

जब कोई अंतरात्मा धरतीपर आनेका निश्चय करती है तो ऐसा स्थान ढूँढ़ती है जो उसके अनुकूल हो। विकास पाती हुई आत्माके कई स्तर होते हैं, कहीं वह एक छोटी-सी चिनगारी होती

कहीं जरा-सा प्रकाश और कहीं पूर्णतया सचेतन और समुचित रूपसे संगठित सत्ता। स्वाभाविक रूपसे इस विकास-क्रममें हजारों वर्ष लग जाते हैं। जब विकसित अंतरात्मा किसी शरीरको स्वीकार करती है तो वह उसकी सब कठिनाइयों, त्रुटियों और गन्दगियोंको भी जानबूझकर, देख-सुनकर स्वीकार करती है। लेकिन फिर भी उसका काम काफी कठिन होता है। मनुष्यके अंदर जबतक पाशविकता और पाशविक प्रजननकी प्रक्रिया बाकी है तबतक उसके शरीरमें आनेवाली अंतरात्माको विभिन्न प्रकारकी कठिनाइयोंका सामना करना ही पड़ेगा। शरीरके माता-पिता किसी खास ढंगसे गढ़े हुए होते हैं। उनके स्वास्थ्यकी समस्याएं होती हैं, उनकी रुढ़ि-प्रियता, सचेतन या अवचेतन ग्रंथियां, उनके जन्मकी और जीवनकी समस्याएं, उनका वातावरण, इनमेंसे हर चीज वच्चेके लिये समस्या बन जाती है। फिर इतना ही नहीं, वह जिन-जिनके संपर्कमें आता है उनकी भी छाप पड़ती जाती है, उनकी समस्याओंका भी प्रसाद मिलता जाता है।

जो माता-पिता सचमुच अपने वच्चेका हित चाहते हैं उन्हें अपनी पूरी जिम्मेदारीको समझना चाहिये और किसी नयी आत्माको शरीर प्रदान करनेसे पहले अपने-आपको उसके योग्य बनाना चाहिये। इस दिशामें प्रयास करनेसे ही हमारी बहुत-सी समस्याएं हल हो जायंगी। हम यह नहीं कहते कि यह चीज जन-साधारणके लिये आसान तो क्या संभव भी है। आज उनका जीवन जिस ढर्रेपर चल रहा है उसके लिये तो यह ख-पुष्पसे कम नहीं है। परंतु जिनके अंदर चेतना है, जो जरा ऊंचा उठना चाहते हैं, जो वर्तमान जीवन-पद्धतिसे संतुष्ट नहीं हैं उन्हें तो इस दिशामें प्रयास करना ही चाहिये। यहां जन-साधारणसे हमारा आशय उन लोगोंसे है (उनकी आर्थिक स्थिति, शिक्षा-दीक्षा आदि चाहे जैसी हो) जो मनुष्य-योनिमें होते हुए भी ऊपर उठनेका प्रयास नहीं करते, जो धरतीपर पांव जमाये हुए हैं, आकाशमें उड़नेके स्वप्न नहीं देखते, खाने-पीने और ऐश करनेमें ही जिनके जीवनकी इतिश्री हो जाती है।

यह होते हुए भी कम-से-कम भारत-संतानको अपनी दृष्टि उच्चतर लक्ष्यकी ओर रखनी चाहिये। आज न सही, कल से समस्याका सच्चा हल तो ढूंढना ही होगा और वह बाह्य उपकरण नहीं, आंतरिक चेतनासे आयेगा। वह भारतीय उपाय है। यूरोपका अंधा अनुकरण नहीं। हम देशमें होनेवाले प्रयासोंका कि नहीं करते पर वह तो केवल घावपर कपड़ा ढक देने जैसे है। उपायसे घावपर मक्खियां नहीं बैठेंगी पर इतना तो काफी नहीं है।

आशा-किरण

ढापरका अंत नजदीक था। संसारमें आसुरी शक्तियोंका बोलबाला था। चारों ओर त्राहि-त्राहि मची थी। ऐसे समय कुरु-वनके एक ग्वालेके घर सारे अत्याचारोंका अन्त करनेवाला पल हुआ था। आकाशवाणीने कंसको सावधान किया, नारद मुनिने चेतावनी दी, बुरे-बुरे स्वप्न आते रहे परंतु कंस न चेता। उसे विश्वास था कि उसकी आसुरी शक्ति अपने सभी विरोधियोंको कुचल डालेगी। उसे विश्वास था कि वह अमर रहेगा।

वृन्दावनसे अजीब-अजीब समाचार आने लगे। कंस जो विश्वास तो न करता था फिर भी बुद्धिमानी इसीमें थी कि हर उठते हुए सिरको कुचलता जाय और अपना रास्ता साफ करे अत्याचार बढ़ने लगे। निर्दोष लोगोंका खून मथुरामें खलना मचाने लगा। लोगोंके अन्दर जो तामसिक सहिष्णुता धरती रही थी वह खूनकी बाढ़में बह गयी। फिर समय आया, कुरु-वनका वह नगण्य-सा गोपाल मथुरा लाया गया और लानेवाला कौन था? कंसका दूत अक्रूर! उसके आनेसे कुब्जा जैसी निर्दोष नारी अपने सब कण्ठोंसे देखते-देखते छूट गयी। उसका कूबड़ जाने कहां चला गया और वह अनुपम सुन्दरी बन गयी। उधर कुरु-

मुष्टिक जैसे महा मल्ल बालकके थपेड़ोंके आगे न टिक सके। उन्हें परलोककी राह लेनी पड़ी। कंसको अब भी आशा थी। आखिर वह भी सांवरे सलौनेके मुष्टि-प्रहारके आगे ढेर हो गया। मयुराने जाना कि उसका चाता आ गया है।

जब-जब मनुष्य जातिके उठनेका समय आता है तब-तब यही किस्सा दुहराया जाता है। जब-जब भागवत चेतना धरतीपर प्रकट होती है तब-तब विरोधी बौखला उठते हैं और इधर-उधर प्रहार करने लगते हैं, निर्दोषोंके रक्तकी नदियां बहाते हैं और आशा करते हैं कि इससे नयी ज्योतिको बुझा सकेंगे। श्रीकृष्णके साथ यही हुआ, ईसाके साथ यही हुआ। लेकिन भागवत चेतनाको हराना असंभव काम है। वह जितने अंशमें जिस कामको पूरा करनेके लिये आती है उसे पूरा किये बिना लौटना उसने सीखा ही नहीं।

इन सब परिस्थितियोंमेंसे गुजरनेके बाद ही द्वारका-राज्य स्थापित हो पाया। आज धरतीपर फिरसे इसीकी पुनरावृत्ति हो रही है। भागवत चेतना मनुष्यको ऊंचा उठानेके लिये प्रयत्नशील है। उसका विरोध करनेके लिये चारों ओर हथियार उठ रहे हैं और भगवान्की विरोधी शक्तियोंका बोलवाला हो रहा है। भौतिक क्षेत्रमें नहीं, प्राण और मनके क्षेत्रोंमें भी विरोध बढ़ता जा रहा है। यह विरोध मनुष्य जातिको जगानेका काम करता है, उसके अन्दर फैले हुए तमस्को झकझोरता है और उसे भागवत चेतना-की ओर अभिमुख होनेके लिये बाधित करता है।

भागवत चेतनाने कारावासमें जन्म लिया है, उसका विरोध करनेवाली शक्तियोंको पता लग गया है कि उनका अंत निकट है इसलिए वे आंधी बनकर इधर-उधर प्रहार कर रही हैं। अत्याचारके नये-नये अस्त्र निकलते आ रहे हैं। आततायीको यह भय है कि उसके हथियार छिन जायेंगे, पंडित, पादरीको भय है कि उसकी गद्दी डोल जायगी, नयी ज्योति उसके अंधकारको और भी अंधेरा कर रही है, उसके खोखलेपनको सबके सामने प्रकट कर रही है। लेकिन इस सबके होते हुए भी भागवत चेतना

विकसित होती जा रही है। उसे ढोल पीटनेवालोंकी परवाह नहीं है, उसे केशी और शकटासुर, पूतना और प्रद्योत, किसीकी परवाह नहीं है। उसका काम है बढ़ना और बढ़ते जाना। श्रीमाताजी घोषणा की है कि उच्चतम दिव्य शक्ति प्रकट हो चुकी है जो उसकी विजय अवश्यभावी है। वह इस धरतीसे अंधकारका राज हटाकर यहां ज्योतिका, वैमनस्य हटाकर सामंजस्यका, अशांति हटाकर शांतिका, एक शब्दमें कहें तो भगवान्का राज्य स्थापित करनेके लिये आयी है। जो उसका विरोध करेगा उसे राख हटा दिया जायगा। आज हमारे लिये आवश्यक है कि उसकी विजयमें श्रद्धा रखें, उसका आह्वान करें, कि वह आये और हम अन्दरसे असत्यको हटाकर सत्यकी स्थापना करे, यह विश्व मानवान्की ज्योतिका पुंज बन जाय और हम सबके अन्दर भगवान्की इच्छा पूरी हो।

देशके लिये सार्वजनिक शिक्षा

किसीने श्रीअरविदसे पूछा : क्या देशके लिये सार्वजनिक शिक्षा उपयोगी है ?

श्रीअरविद : यह तुम्हारे दृष्टि-विंदुपर निर्भर है। अगर तुम आधुनिक अर्थोंमें एक राष्ट्र खड़ा करना चाहते हो तो सार्वजनिक शिक्षा जरूरी है ताकि लोग सार्वजनिक उद्देश्यके लिये मिल-जुलकर काम कर सकें। लेकिन व्यक्तिके विकासकी दृष्टिसे वर्तमान सार्वजनिक शिक्षा भलाई करनेकी जगह बुराई ही करती है।

साधारणतः भारतके विद्यार्थियोंमें बहुत क्षमता होती है लेकिन शिक्षा-पद्धति उसे नष्ट कर देती है। पढ़ाईके कमरोंकी व्यवस्था बच्चेको इतने घंटे वहां बैठना ही होगा और इतनी किताबें पढ़ेंगी, यह सब बहुत हानिकर है। आवश्यकता है वातावरणकी

सितंबर १९८०

३१

है जो सीखनेके वातावरणकी। विद्यार्थी स्वयं शिक्षा ग्रहण करे। पहले अपनी क्षमताका पता लगाये और फिर उसी दिशामें प्रगति करे। पहले पढ़ना-लिखना सिखा दिया जाय और फिर विद्यार्थीको अपने-आप आगे बढ़नेके लिये छोड़ दिया जाय। मेरा सुझाव तो यह है कि उचित शिक्षा-पद्धतिमें व्यक्ति और राष्ट्र दोनोंकी आवश्यकताएं पूरी होनी चाहिये। मैं यह नहीं कहता कि यह चीज अभी व्यावहारिक है परंतु यदि कोई सच्ची प्रगति करती है तो यही भावी शिक्षा-पद्धति होगी। अध्यापकको देखना चाहिये कि विद्यार्थी केवल पढ़ ही नहीं रहा बल्कि उसकी बुद्धिका भी विकास हो रहा है। उसकी सभी क्षमताओंका विकास हो रहा है। वह संसारमें अपना स्थान बनानेके योग्य हो रहा है।

भारतीय विद्यार्थी

३-१९२६

सिद्धान्तः भारतीय विद्यार्थी बहुत तेज होते हैं — उनमें जो भी दिखलायी देते हैं वे शिक्षा-पद्धतिके दोष हैं। सामान्य चीजोंकी तुलनाकारीका अभाव इस कारण होता है कि वे सदा इंग्लैंड और अमेरिकाके बारेमें किताबें घोखते रहते हैं। और फिर शिक्षाका अध्ययन है अंगरेजी। जिन बच्चोंको किसी विदेशी भाषाका ज्ञान हो उन्हें विदेशी भाषाके द्वारा शिक्षा देनेसे ज्यादा हानिकार और फायदा नहीं हो सकता। लेकिन छोटी उम्रमें विदेशी भाषा पढ़नेमें कोई हर्ज नहीं है। भारतीय बच्चोंकी पढ़ाईका विषय जितना व्यापक है उतना ही शोचनीय भी। चलो, हम किसी और विषयकी बात करें।

(श्रीअरविदके साथ वातचीतके आधारपर)

कर्ममें तुम्हारा आदर्श होना चाहिये पूर्णता, उससे कम कुछ नहीं। तब निश्चय ही तुम भगवान्‌के सच्चे यंत्र बन जाओगे

— श्रीमान्



Space donated by

KOOVERJI DEVSHI & CO., PVT. LTD.

**FIREX LEADS TO SAFETY
SAFETY LEADS TO PROSPERITY**

सोसायटी समाचार

१५ अगस्त १९८० को श्रीअरविंदकी १०८ वीं जन्मगांठके उत्सवमें दर्शन हुआ। २६ वर्ष पहले आज ही के दिन श्रीमाताजी अपनी 'भारतीय नागरिक' बननेकी चिर पोषित अभिलाषाकी सार्वजनिक रूपसे घोषणा की थी। परंतु उनकी शर्त यह थी कि केंच नागरिकता छोड़े बिना उन्हें भारतीय नागरिकता प्राप्त हो। यह एक क्रांतिकारी सुझाव था। यदि स्वीकृत हो जाता तो शायद भारतमें दोहरी नागरिकताका सूत्रपात होता।

दर्शनके दिन सुबेरे श्रीअरविंदके कमरेके दर्शन होते हैं, दस बजे गहन ध्यान होता है और सांझको क्रीड़ांगणमें मार्चपास्ट, बैडमिंटन और ध्यान।

श्रीअरविंद सोसायटीकी राष्ट्रीय समितिकी बैठक दिल्लीमें १२, १३ अप्रैलको हुई। श्री नवजातने राष्ट्रके लिये सर्वांगीण शिक्षा-व्यवस्थाके बारेमें निबंध पढ़ा। मानव एकता और हर विकास खंडमें श्रीअरविंदकी दृष्टिसे विकास कार्यकी व्यवस्थाके बारेमें विचार किया गया। इस कामको आगे बढ़ानेके लिये कई समितियां बनायीं गयीं। मानव एकतासंबन्धी सभाकी तारीखके बारेमें अभी निश्चय नहीं हुआ है।

कलकत्तेके श्रीअरविंद भवनमें भारतीय पर्यटन विभागके श्री एन. ए. "नये क्षितिजकी खोजमें" पर भाषण दिया।

गुलावाट केंद्रमें "श्रीअरविंदका जीवन और शिक्षा" पर सेमिनार हुआ जिसमें श्रीगोपाल भट्टाचार्य आदिने भाग लिया।

गुलबर्ग केंद्रने एक सप्ताहके कार्यक्रमकी व्यवस्था की।

फरवरी-मार्चमें दिल्लीमें विश्व पुस्तक मेला हुआ था जिसमें भारतीय और विदेशी प्रकाशनोंकी अच्छी प्रदर्शनी हुई। अगर

हमारे केंद्र भी इस तरहके पुस्तक मेलोंका आयोजन कर सके
 जनताको आश्रमके प्रकाशनोंका परिचय मिलेगा।

अनन्तपुर (आ० प्र०) में श्री माधव पण्डितने श्रीअरविदके
 योगपर भाषण दिया।

हमारी मद्रास शाखामें श्रीशंकर नारायणने माताजीकी पुस्तिका
 जीवन-विज्ञानके आधारपर भाषण दिया, डा. श्रीनिवास अयंगर
 साधनाके बारेमें बतलाया और श्रीवेंकट रमणने "श्रीअरविद
 वेद" पर भाषण दिया।

कटकमें इंस्टिट्यूट आफ ओरियेंटल स्टडीज "समाजोंका संस्कृति
 भविष्यके लिये विकल्प" विषयपर १९८१ में सेमिनार करनेका
 है। विद्वानोंको इसमें भाग लेनेका निमंत्रण है। जो लोग
 रखते हों वे व्यवस्थापकोंसे पत्र-व्यवहार करें।

सोसायटीके नये केंद्र

वस्ती, पुरिलया, विराटीमें नये केंद्र खुले हैं।

घोषणा

सोसायटीके न्यू स्कूलने सात प्रकारकी अगरवत्तियां बनाती
 किया है। जो लोग खरीदना चाहते हों वे मैनेजर न्यू
 श्रीअरविद सोसायटी, पांडिचेरीसे पत्रव्यवहार करें।



उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

अखिल भारतीय पत्रिका

अग्निशिखा

श्रीअरविंद सोसायटीकी मासिक पत्रिका

सितंबर १९८०

वर्ष ११, अंक ३, पूर्णांक १२३

विषय-सूची

श्रीअरविन्दके साथ बातचीत

माताजीने कहा है

श्रीअरविन्दके आधारपर :

आंतरिक सत्ताकी भागवत संभावना और

बाहरी प्राणिक स्वकी कठिनाइयां

श्रीमातृवाणीसे : अभीप्सा करो, मांगो

इच्छा और वच्चोंकी मांगनेकी आदत

श्रीअरविन्दने कहा है

श्रीमातृवाणीसे : चेतनाकी विशालता

अंतर्भास

सोसायटी-समाचार

वार्षिक : ८.००

आजीवन १२५.००

पत्र, चेक, ड्राफ्ट, आदि, भेजनेका पता :

संपादक अग्निशिखा, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००१

संपादक : रवींद्र

प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-६०५००१

श्रीअरविंदके साथ बातचीत

(स्मृतिके आधारपर)

श्रीअरविंद: सत्य ज्ञान पानेके लिये दर्शन-शास्त्रसे बहुत कम सहायता मिलती है। सच्चा ज्ञान अनुभूति और वास्तविक उप-जिबसे आता है। दर्शन मानसिक व्यायामका काम करता है। यह मनको स्पष्ट और लोचदार बना देता है। वह मनको यह विचार प्रदान करता है कि मनसे ऊपर भी कुछ है जिसे पानेके लिये उसे कोशिश करनी चाहिये। यह एक प्रकारके कूदनेके कस्तेका काम देता है।

अपनी साधनाके एक स्तरपर मैंने अनुभव किया था कि सभी बौद्धिक सत्य मिथ्या हैं। बादमें मुझे पता लगा कि वे अपूर्ण सत्य हैं। अब मैं ऐसी स्थितिमें हूं कि इन सत्योंको उनके अपने श्रेष्ठ-श्रेष्ठ स्थानोंपर रख सकता हूं।

*

विकासकी प्रक्रियामें प्रकृति मानसिक चेतनाको लायी है। अगली स्थिति होगी अतिमानसिक अभिव्यक्ति। हमारे योगका लक्ष्य है अतिमानसको नीचे उतार लाना। साधक केवल अतिमानस तक पहुँच सकता है, यह एक तरहकी समाधि होगी लेकिन हमारा उद्देश्य अतिमानसकी सहायतासे सारे जीवनका रूपांतर करना।

*

१७-७-१९२६

प्रश्न : ऐसा मालूम होता है कि हमारे विचार स्मरण-अवचेतन क्षेत्रोंसे आते हैं। यह कैसे होता है कि विचार आते हैं ?

श्रीअरविंद : विचारोंका आरम्भ विश्वमें लीला करनेवाली शक्तियोंकी गतिविधिसे होता है। कभी विचारका द्रव्य और रूप भी इनसे आता है। मनमें कुछ आदतोंके रूप जमा होनेवाली शक्तियोंके प्रभाव तले मन अपनी आदतके अनुसार क्रिया में लगा रहता है। कभी-कभी औरोंके मनमें रूप ग्रहण करनेवाले विचार उसमें घुस आते हैं। योगीको इन बाहरी शक्तियोंके प्रभाव से छुटकारा पाना होता है। उसमें यह क्षमता होनी चाहिये वह इन बाहरी शक्तियोंको अपने अंदर कोई रचना न बनाने। इसी कारण तुम्हें यह सलाह दी जाती है कि बाहरसे आनेवाले विचारों और अपने बाहर क्रियागत विचार-शक्तियोंका अवलोकन करो।

प्रश्न : क्या हमारे ऊपर क्रिया करनेकी वजहसे इन शक्तियोंका कोई परिवर्तन आता है ?

श्रीअरविंद : अगर योगीने कुछ शक्ति पा ली है तो वह शक्तियोंकी स्थिति और व्यवस्था बदल सकता है। वातावरण बनानेका यही मतलब है। योगी एक ऐसा वातावरण बना सकता है जिसमें अमुक प्रकारकी शक्तियां खुल खेल सकती हैं। और अन्य शक्तियां प्रवेश भी नहीं पा सकतीं। योगी काफी दूर तक जाकर ले तो वह अनुभव करता है कि उसकी चेतना केवल भौतिक शरीरतक सीमित नहीं है। उसकी एक प्रकारकी प्रवेशकी सत्ता होती है जिसे वह शांत रखता है ताकि शक्तियोंकी लीलाका उसकी केंद्रीय सत्तापर कोई प्रभाव न पड़े।

कुछ लोगोंके साथ एक प्रसन्नताका वातावरण रहता है

अक्तूबर १९८०

प्राणिक वातावरण है। यह प्राणिक वातावरण बहुत सामान्य चीज है। इसी तरह मानसिक वातावरण हो सकता है, योगीके चारों ओर शक्तिका वातावरण होता है जिसे और लोग भी अनुभव कर सकते हैं, वह औरोंको अपनी ओर आकर्षित भी कर सकता है या उन्हें दूर भी हटा सकता है, उसमें कोई प्राणिक चीज नहीं होती।

प्रश्न: जो व्यक्ति अतिमानसिक चेतनामें रहता हो उसके अंदर क्या होता है?

श्रीअरविंद: उसमें सब कुछ समाया रहता है, मानसिक, प्राणिक आदि सब कुछ।

प्रश्न: एक प्रकारकी घृणा घृणाके पात्रको अपनी ओर खींचती है दूसरी उसे परे हटाती है — यह कैसे होता है?

श्रीअरविंद: घृणाके भी अलग-अलग प्रकार होते हैं, जैसे भयके अनेक प्रकार होते हैं। तुम भय और आतंकके कारणसे दूर भाग सकते हो और उसकी ओर आकर्षित भी हो सकते हो।

*

६-७-१९२६

प्रश्न: गीताके पहले अध्यायमें अर्जुन कुलधर्म, जातिधर्मकी बात बताते हैं। यह कुलधर्म क्या है?

श्रीअरविंद: कुल परिवार या उसका बड़ा रूप है जैसे कुरुकुल: और एक कुलका अपना आचार-व्यवहार और अपना आदर्श होता है। इसे ही कुलधर्म कहते हैं। ठीक नहीं कहा जा सकता कि अर्जुनका जातिसे क्या मतलब है। इनके भेदका कोई महत्त्व नहीं। अर्जुनका मतलब प्रचलित सामाजिक मानदण्डसे था।

प्रश्न: वहां अर्जुन स्त्रियोंके भ्रष्ट होनेसे वर्ण संकरोंकी उत्पत्ति बहुत ज्यादा बुरा मानते हैं, स्वयं व्यक्तिके भ्रष्टाचारको इतना महत्त्व नहीं देते।

श्रीअरविंद : उन दिनों वैयक्तिक नैतिकताको इतना महत्त्व दिया जाता था — समाजका कल्याण प्रधान था। सामाजिक नियमों और आचार-व्यवहारके मानदण्डोंको मानना पड़ता था। व्यक्तिगत मोक्षके विचारने बौद्ध धर्मके आनेपर जोर पड़ा। मुमुक्षुओंके लिये बौद्ध और ईसाई धर्मोंने नैतिकताके कड़े नियम बनाये थे। आजका समाज बहुत ज्यादा व्यक्ति-प्रधान है।

माताजीने कहा है

(माताजीके साथ प्रश्नोत्तरमेंसे)

इस क्षणका उपयोग करो

जब तुम्हारे पास थोड़ा समय हो, भले वह एक घंटा हो, कुछ मिनट, अपने-आपसे कहो, “आखिर, एकाग्र होनेके लिये पास कुछ समय है, अपनी वृत्तियोंको इकट्ठा करके, अपने जीवन-उद्देश्यको जीनेके लिये, अपने-आपको सत्य और शाश्वतको जीनेके लिये कुछ समय है।” तुम जब-जब बाहरी परिस्थितियोंमें न हो तब-तब यह कर सको तो तुम देखोगे कि तुम मार्गपर तेजीसे बढ़ रहे हो। बक-बक करने, व्यर्थकी चीजोंमें अपना नष्ट करने या चेतनाको नीचा करनेवाली चीजें पढ़नेकी जगह शांत, संतुलित और संयत होना ज्यादा अच्छा है। लेकिन जो अवसर मिले उसे कभी हाथसे न जाने दो, अपने एक-एक क्षणको उस काममें लगाओ जिसके लिये वह तुम्हें दिया गया है। आकाशके सामने, समुद्र तटपर या वृक्षोंके बीच बैठ जाओ जो भी संभव हो — यह समझनेकी कोशिश करो कि तुम

नवम्बर १९८०

जिते हो, यह सीखनेकी कोशिश करो कि कैसे जीना चाहिये, तुम क्या करना चाहते हो और क्या-क्या करना चाहिये उसपर विचार करो, यह सोचो कि अज्ञानसे छूटने और पीड़ासे बचनेका क्या उपाय है।

वही बोलो जो जरूरी हो

मेरा प्रस्ताव है कि तुममेंसे हर एकको यह कोशिश करनी चाहिये — ज्यादा नहीं, बस दिनमें घंटे-भरके लिये — कि बस उतना ही बोलो जितना एकदम जरूरी हो, एक शब्द भी कम या ज्यादा नहीं।

अपने जीवनका एक घंटा लो, ऐसा घंटा जो तुम्हारे लिये सबसे अधिक सुविधाजनक हो, और उस घंटेमें अपने-आपको निकटसे देखो और केवल वही शब्द बोलो जो नितांत अनिवार्य हों।

शुरुमें यह जाननेकी ही कठिनाई होगी कि क्या एकदम जरूरी है और क्या नहीं। यह अपने-आपमें एक शिक्षा है और इसमें तुम हर रोज ज्यादा अच्छा करोगे।

फिर तुम देखोगे कि जबतक तुम कुछ नहीं बोलते तबतक बिलकुल चुप रहना आसान है लेकिन जैसे ही तुम बोलना शुरू करते हो, तुम दो-चार या दस-बीस फालतू शब्द बोल जाते हो, जिनका बोलना बिलकुल आवश्यक न था।

मैं तुम्हें शुक्रवार तकके लिये यह कसरत देती हूं। देखो, तुम सफल होते हो।

अच्छा होनेके लिये अच्छे बनो

इस भ्रममें न रहो कि अगर तुम सन्मार्गपर चलना चाहते हो, अगर तुम संयत हो, अगर तुम शुद्ध होना चाहते हो, अगर तुम सदा सक्त हो, अगर तुम एकांतका जीवन बिताना चाहते हो और

तुम्हारी निर्णय-शक्ति स्पष्ट है तो चीजें आसान हो जायंगी — बिल्कुल उल्टी है ! जब तुम भीतरी और बाहरी पूर्णताकी ओर लगते हो तो साथ ही कठिनाइयां भी बढ़ने लगती हैं।

मैंने बहुत बार लोगोंसे सुना है आह, अब मैं अच्छा बनने की कोशिश कर रहा हूं तो लगता है कि सभी खराब हैं। यह तो यह सिखानेके लिये होता है कि तुम्हें स्वार्थके लिये अच्छा नहीं बनना चाहिये। तुम्हें इसलिये अच्छा न बनना चाहिये कि लोग तुम्हारे साथ अच्छा व्यवहार करें। तुम्हें अच्छा होनेके लिये अच्छा बनना चाहिये।

हमेशा यह पाठ याद रखो : तुम जितना अच्छा कर सकोगे करो, अपना अच्छेसे अच्छा करो लेकिन परिणामकी आशा न करो। परिणामकी दृष्टिसे न करो। अपनी अच्छाईका पुरस्कार स्वयं इच्छा, यह विचार कि अच्छा बननेसे जीवन ज्यादा आसान जायगा, तुम्हारे अच्छे कामोंका मूल्य खतम कर देता है।

यह रास्ता

अगर — तुम अपनी कामनाओंके पीछे दौड़नेका लंबा, कष्टकर, निराशाजनक मार्ग छोड़कर पूरी तरह सरलताके साथ आपको परम सद्बस्तुकी शरणमें ले जाओ, अपने-आपको उसके सौंपकर उसकी इच्छाके अनुसार चलनेकी कोशिश कर अपनी सत्ताको बिना मोल-तोलके उसे सौंप दो तो यह अहंकारसे पिड़का का सबसे सरल और सबसे छोटा रास्ता होगा।

— मैं इस रास्तेको सकारात्मक मार्ग कहती हूं, इसमें पूर्ण गीण समर्पण होता है, जिसमें कुछ बचाकर नहीं रखा जाता। मोल-तोल नहीं होता।

अपने बारेमें न सोचनेका तथ्य, अपने लिये ही न जीना, परम सुंदर, ज्योतिर्मय, आनंदमय, शक्तिमान, करुणामय,

अनिवार्य १९८०

वारेमें सोचना — वस यही एक चीज है। इसमें ऐसा आनंद मिलता है जिसकी कोई तुलना नहीं। वस इसीके लिये प्रयास करना चाहिये, बाकी सब तो समय काटना है।

भीतरी नियम

भीतरी नियम, सत्ताका सत्य, हर एक मनुष्यके अंदर विद्यमान भागवत उपस्थिति है। जब तुम इस भीतरी नियमको सुननेकी आदत डाल लो, जब तुम उसकी आज्ञा मानो और उसके अनुसार चलो, कोशिश यह करो कि यह तुम्हारा अधिकाधिक पथ-प्रदर्शन करे, तो तुम अपने चारों ओर सत्य, शांति, सामंजस्य, करुणा, सहानुभूति, पूर्ण सद्भावनाका वातावरण पैदा कर लेते हो। यह भीतरी वृत्ति जितनी सच्ची, सर्वांगीण होगी, उतना ही वह बाहरी परिस्थितियोंपर असर डालेगी। यह जरूरी नहीं है कि यह जीवनकी कठिनाइयोंको कम कर दे लेकिन यह उन कठिनाइयोंको एक नया अर्थ देती है और इस कारण तुम एक नये बल और नयी बुद्धिमत्ताके साथ उनका सामना कर सकते हो।

अगर कोई तुम्हारा मजाक उड़ाये

लोग तुम्हारे वारेमें जो दुर्भावनापूर्ण, मूर्खताभरी बातें कहते हैं उनसे अगर तुम चिंतित, दुःखी या हतोत्साह होते हो तो तुम कभी उत्तर पर आगे न बढ़ सकोगे। ये चीजें तुम्हारे पास इसलिये नहीं आती कि तुम अभागे हो बल्कि इसलिये कि भगवान्ने तुम्हारे निश्चयोंको गंभीरताके साथ लिया है और वे तुम्हारी परिस्थितियोंको ऐसा रूप देने देते हैं कि वे मार्गपर तुम्हारे लिये कसौटीका काम करें, देखें कि तुम्हारे निश्चयमें सच्चाई है या नहीं, तुम कठिनाईका सामना करनेके लिये काफी बलवान हो या नहीं।

इसलिये अगर कोई तुम्हारा मजाक उड़ाता है या कहता है तो तुम्हें पहली चीज यह देखनी चाहिये कि तुम्हारी कमजोरी, कौन-सी अपूर्णताके कारण यह चीज संभव हुई। क्षुब्ध मत होओ, नाराज मत हो। दुःखी मत हो। तुम वारेमें जो सोचते हो उसके अनुसार तुम्हारा मूल्य नहीं आका वात उल्टी होती है। तुम्हें भगवान्‌का कृतज्ञ होना चाहिये कि की कृपाने तुम्हारी कमजोरी, तुम्हारी त्रुटि, तुम्हारी विकृति दी ताकि तुम उसे ठीक कर सको।

सच्ची सचाई या निष्कपटता

अगर सचमुच तुम इस पथपर चलना और योग करना चाहते तो यह तुम्हें सराहना या आदर पानेके लिये नहीं करना चाहिये तुम्हें योग इसलिये करना चाहिये कि यह तुम्हारी सत्ताकी आवश्यकता है। इसका कुछ भी महत्त्व नहीं है कि तुम तुम्हारी सराहना करते हैं या नहीं करते, तुम पहलेसे ही अपने-अपने कह रखी कि तुम साधारण लोगोंसे जितनी दूर होगे, साधारणों से जितने अलग-होगे, तुम्हें लोग उतना ही कम समझ पाएंगे। मैं फिरसे कहती हूं : इसका कोई महत्त्व नहीं।

सच्ची सचाई या निष्कपटता इसमें है कि तुम दिव्य मार्गपर चलो क्योंकि तुम और कुछ कर ही नहीं सकते, अपने-आपको वान्‌के प्रति अर्पित करो क्योंकि और कोई रास्ता ही नहीं है। सत्ताके रूपांतरकी चाह करो, अपने-आपको प्रकाशमें लाओ यही एकमात्र मार्ग है। तुम्हारे जीवनका यही उद्देश्य है।

जब ऐसा हो तो विश्वास करो कि तुम ठीक रास्तेपर हो।

भीतरविदके पत्रोंके आधारपर :

आंतरिक सत्ताकी भागवत संभावना और बाहरी प्राणिक स्वकी कठिनाइयां

मेरे ख्यालसे तुम्हारे आध्यात्मिक जीवन और तुम्हारी कठिनाइयों-
के बारेमें दो-तीन चीजें कहनी आवश्यक हैं।

सबसे पहली चीज यह है कि मैं चाहूंगा कि तुम इस विचारसे
झुटकारा पा लो कि कठिनाइयोंके ये सभी कारण तुम्हारे अपने
अभित्वके भाग हैं और तुम्हारे लिये सच्चा आंतरिक जीवन असंभव
है। आंतरिक जीवन हमेशा संभव है अगर तुम्हारी प्रकृतिमें —
वाहे वह दूसरी चीजोंसे कितनी भी ढकी हो — भागवत संभावना
हो जिसके द्वारा आत्मा अपने-आपको अभिव्यक्त कर सके और मन
और जीवनमें अपना सच्चा रूप — भगवान्का एक अंश बना सके।
तुम्हारे अंदर यह भागवत संभावना विशेष और असाधारण स्तरपर है।
तुम्हारे अंदर सहज प्रकाश अंतर्भासिक अंतर्दर्शन, सामंजस्य और
मृनात्मक सौंदर्यकी आंतरिक सत्ता है जिसने हर बार, जब वह
तुम्हारे प्राणिक स्वभावमें इकट्ठे हुए बादलोंको दूर फेंकनेमें सफल
हुआ है, अपने-आपको स्पष्ट रूपसे खिलाया है। यही है जिसे माताजी-
ने तुम्हारे अंदर विकसित करानेकी और इसे सामने लानेकी कोशिश
की है। जब तुम्हारे अंदर वह हो तो निराशाका कोई आधार ही
नहीं रहता, असंभवकी बात करनेका कोई कारण नहीं रह जाता।
एक बार अगर तुम इसे दृढ़ताके साथ अपने सच्चे स्वके रूपमें स्वीकार
कर लो (जैसा कि वह सचमुच है, क्योंकि आंतरिक सत्ता तुम्हारा
सच्चा स्व है और बाहरी स्व, जो सभी कठिनाइयोंका कारण है,
हमेशा प्राप्तकी हुई और अस्थायी वस्तु होता है जिसे बदला जा

सकता है), अगर तुम इस प्रगतिको अपने जीवनका स्थिर और लक्ष्य बनाओ तो रास्ता साफ हो जायगा और तुम्हारा आध्यात्मिक भविष्य एक दृढ़ संभावना नहीं बल्कि निश्चिति बन जायेगा।

बहुत बार ऐसा होता है कि जब प्रकृतिमें कोई ऐसी अवस्था शक्ति हो, तो बाहरी सत्तामें कोई विरोधी तत्त्व पाया जाता है अपने-आपको विरोधी प्रभावके प्रति खोलता है। यही है जो आध्यात्मिक जीवनमें प्रयासको बहुधा कठिन संघर्ष बना देता है; इस तरहका विरोध चाहे वह तीव्र क्यों न हो, जीवनको असंभव बनाता। शंका, संघर्ष, प्रयास और असफलता, पतन, सुखी दुःखी, अच्छी या बुरी अवस्थाओंका एकके बाद एक आना, प्रगति और अंधकारकी अवस्थाएं यह मानव जातिके लिये सामान्य जीवन उनकी रचना योगद्वारा या पूर्णताके प्रयासद्वारा नहीं हुई है; केवल योगमें ही व्यक्ति अपनी क्रियाओं और उनके कारणोंको अंधेकी अनुभव करनेकी जगह उनकी गतिविधियोंके बारेमें सचेतन हो जाते हैं और अंतमें उनमेंसे होकर अधिक स्पष्ट और अधिक सुखी चेतना अपना रास्ता बना लेता है। साधारण जीवन अंततक कष्टों और संघर्षोंकी शृंखला रहता है लेकिन योगका साधक कष्टों और संघर्षोंको निकलकर आधारभूत शांतिकी धरतीपर आ जाता है जिसे ऊपर उठकर बढ़ें छूती भले रहें पर नष्ट नहीं कर सकतीं और अंतमें सभी गतिविधियोंपर इतना बिलकुल बंद हो जाती हैं। यहांतक कि वह अनुभव जो हमारे अंदर भयभीत कर देता है, चेतनाकी वह अवस्था जिसमें तुम अपनी इच्छाके प्रतिकूल कहते और करते हो, उनमें भी निराश होनेका कारण नहीं। यह तो उन सभीके लिये किसी-न-किसी रूपमें हुआ एक साधारण अनुभव है जो अपने सामान्य जीवनसे ऊपर की कोशिश करते हैं। केवल उन्हींको नहीं जो योगाभ्यास करते बल्कि धार्मिक पुरुषों, यहांतक कि जो लोग केवल नैतिक और आत्म-विकासकी इच्छा रखते हैं उन्हें भी इस कठिनाईका अनुभव करना पड़ता है। और यहां भी योग या पूर्णताके लिये प्रयास

अनिवार्य
नवम्बर १९८०

११

अवस्थाको पैदा नहीं करता — मानव प्रकृतिमें और हर मनुष्यमें प्रतिकूल तत्त्व होते हैं जो उससे ऐसा काम करवाते हैं जिसे उसका अधिक अच्छा मन नहीं स्वीकारता।

यह सबके साथ होता है, एकदम सामान्य जीवनमें सामान्य मनुष्यके साथ भी होता है। जब तुम अपने साधारण बाहरी स्वसे ऊपर उठनेकी कोशिश करते हो केवल तभी वह मनको स्पष्ट रूपसे दिखायी देता है क्योंकि तब तुम यह देख सकते हो कि निम्न तत्त्वोंसे ही अनेकन रूपसे उच्च संकल्पके विरुद्ध विद्रोह करवाया जा रहा है। जब कुछ समयके लिये स्वभावमें एक तरहका विभाजन आ जाता है, क्योंकि सच्ची सत्ता और उसका समर्थन करनेवाले तत्त्व हट जाते हैं और निम्न तत्त्वोंसे अलग हो जाते हैं। कभी प्रकृतिपर सच्ची सत्ताका राज होता है तो कभी किसी विरोधी शक्तिका यंत्र बनकर प्रकृति उसे पीछे धकेल देती है और मैदान हथिया लेती है — हम इसे देख लेते हैं, पहले यह चीज होती तो थी लेकिन हमारे चेतनेमें स्पष्ट न थी। अगर प्रगति करनेका अटल निश्चय हो तो, उस विभाजनको पार किया जा सकता है और एकीकृत प्रकृतिमें, उस संकल्पके चारों ओर एकत्र होकर, दूसरी कठिनाइयां भले आयें, लेकिन उस तरहके असामंजस्य और संघर्ष गायब हो जायेंगे। मैंने इस विषयपर इतना कुछ इसलिये लिखा है कि मेरा ख्याल है कि जो तुम्हारे अंदर यह गलत विचार आ गया है कि योग ही इन संघर्षोंको दूर करता है और यह भी कि प्रकृतिका यह विरोध या भेद भी स्वीकार्यता या अंततक जानेकी असंभावनाका चिह्न है। यह दोनों विचार बिल्कुल गलत हैं और तुम इन्हें अपनी चेतनामेंसे पूरी तरह निकाल बाहर करो तो चीजें अधिक आसान हो जायेंगी।

लेकिन यह सच है कि औरोंकी तरह तुम्हारे अंदर भी इस परस्पर विरोधको स्नायविक भागकी आनुवंशिक दुर्बलताने विशेष और एक तरहकी बहुत ही असुखकर तीव्रता दे दी है जो तुम्हारे अंदर हमेशा असंतोष, उदासी, क्षुब्धता और स्वयंको संताप देनेवाले अंधकारके

दौरोके रूपमें दिखायी देती है और इसीने तुम्हारे जीवनके विगाड़ दिया है। तुम्हारी भूल यह है कि तुम मानते हो कि कोई ऐसी चीज है जिससे तुम बंधे हो और इससे तुम बचकर निकल सकते, ऐसा भाग्य है जो तुम्हारी प्रकृतिके आध्यात्मिक वर्तनको असंभव बना देता है। मैंने अन्य परिवार भी देखे हैं इस तरहकी आनुवंशिक स्नायविक दुर्बलतासे पीड़ित थे लेकिन ही इनमें बुद्धिकी विशेष प्रतिभा या कलात्मक क्षमता या संभावनाएं थीं। शायद 'क' की तरह दो-एकने इसके आगे डाल दिये हों लेकिन औरोंने कुछ समयकी तीव्र व्याकुलतासे इस दुर्बलताके कारण आयी परेशानीपर विजय पा ली; या एकदम गायब हो गयीं या फिर उन्होंने इतना छोटा और रूप ले लिया कि जीवन और उसकी क्षमताओंके विकासमें बाधा न रह सकी। तो फिर दुःखी क्यों होते हो और बिना सच्चे कारणके यह क्यों मान रहे हो कि तुम बदल नहीं सकते यह चीज हमेशा बनी रहेगी? यह अवसाद, यह प्रतिकूल ही तुम्हारे लिये वास्तविक खतरा है, यह तुम्हें शांत और दृढ़ करनेसे और प्रभावकारी स्थायी प्रयास करनेसे रोकता है इसी कारण इस अंधकारमय अवस्थाकी पुनरावृत्ति तुम्हें जल्दी देती है और उस बाहरी विरोधी शक्तिको जो इस विचारको रूपमें लेती है, तुम्हारे ऊपर अपनी मनमानी करने देती है। विचार ही आधीसे अधिक परेशानीको जन्म देता है। कोई नहीं दीखता कि तुम अपनी सत्ताके इस बाहरी विकारपर न पा लो, जैसे और कई पा चुके हैं। विशेष रूपसे प्राणिक प्रकृतिपर ही प्रभाव पड़ा है हालांकि वह औरोंपर जाया जाता है; लेकिन तुम्हारी सत्ताके शेष भाग सहज रूपसे संभावनाके योग्य यंत्र बन सकते हैं जिसके बारेमें मैंने विशेष रूपसे तुम्हारे अंदर बहुत ही स्पष्ट और सूक्ष्म बुद्धि अगर उचित रूपसे उपयोग किया जाय तो वह प्रकाशका

अक्टूबर १९८०

जाती है और इस प्राणिक दुर्बलताको जीतनेमें तुम्हारे लिये बहुत उपयोगी हो सकती है। अगर तुम इस भागवत संभावनाको, अपनी सत्ताके इस सत्यको स्वीकार कर लो तो यही तुम्हारी मुक्ति-और तुम्हारी बाहरी प्रकृतिके बदलनेकी निश्चिति दे सकती है। अपने अन्दर इस भागवत संभावनाको स्वीकार करो, अपनी आंतरिक सत्ता और उसके आध्यात्मिक ध्येयपर श्रद्धा रखो। भगवान् के अंशके रूपमें उसके विकासको अपने जीवनके लक्ष्यकी तरह मानो— क्योंकि इस तरहकी विचलित और असमर्थ बनानेवाली दुर्बलतासे छुटकारा पानेके लिये जीवनमें महान् और गभीर लक्ष्य से अधिक सशक्त होता है। यह पूरी सत्ताको दृढ़ता, संतुलन और मजबूत आधार देता है और कार्य करनेकी इच्छाको सशक्त करण देता है। हमारी ओरसे दी गयी सहायताको भी स्वीकारो, निर्विश्वास, निराशा या निराधार विद्रोहके द्वारा उस सहायताकी ओरसे अपने-आपको बन्द न कर लो। इस समय तुम डट नहीं सकते क्योंकि तुमने अपने अन्दर एक श्रद्धा, एक लक्ष्य, एक स्थिर निवासको स्थित नहीं किया है; तुम्हारी अन्धकारमय वृत्ति सारी सत्ताको ढक लेती है। लेकिन अगर तुम इस श्रद्धाको अपने अन्दर स्थापित कर लो और उससे चिपके रहो तो यह बादल स्थिर हो सकेगा, आंतरिक सत्ता तुम्हारी सहायताके लिये आ सकेगी। और यहांतक कि तुम्हारा अधिक अच्छा स्व भी ऊपर बना रह सकेगा। वह तुम्हें प्रकाशकी ओर खुला रखेगा और अगर बाहरी शक्ति अधिक रूपसे बादलोंसे घिर जाय या अस्तव्यस्त हो जाय तो वह आंतरिक क्षेत्रको आत्माके लिये ठीक बनाये रखेगा। इतना हो जाय तो विजय प्राप्त हो जायगी और प्राणिक दुर्बलताके पूरी तरहसे निवारणके लिये बस थोड़े-से अध्यवसायकी आवश्यकता होगी।

(‘लेटर्स आफ श्रीअरविंद’ चौथे भागके आधारपर)

— वन्दना

अभीप्सा करो, मांगो

मधुर मां, यहां लिखा है : “व्यक्तिगत प्रयासको उत्तरोत्तर बढ़ाकर शक्तिकी गतिमें रूपांतरित करना चाहिये, अगर तुम आपको भागवत शक्तिके बारेमें सचेतन अनुभव करते हो तो अपने प्रयासका अधिकाधिक परिचालन करने, उसे अपनाकर चीजमें बदलनेके लिये आवाहन करो जो तुम्हारी नहीं, माता का है।” लेकिन अगर कोई भागवत शक्तिके बारेमें सचेतन न हो

तुम्हें सचेतन होना चाहिये। अभीप्सा करो, मांगो, अभीप्सा करो।

देखो, साधारण दृष्टिसे कहा जाय, तो तुम यहां हो, हमारी हो रही है, हमने अभी कुछ पढ़ा है, तुम्हें कुछ प्रश्न पूछने हैं। जब तुम यहां होते हो तो तुम प्रश्न पूछते हो और विषयके बारेमें सोचते हो, लेकिन जैसे ही तुम बाहर जाते हो या घर जाते हो तुम अन्य हजारों बातें सोचते हो, सोचते हो न? तो, तुम आशा कैसे कर सकते हो कि तुम भागवत शक्तिके बारेमें सचेतन हो जाओगे? हमें यहां मुश्किलसे आधा घंटा मिलता है, भागवत शक्तिके बारेमें सचेतन होनेके लिये यह बहुत लंबा समय नहीं है।

लेकिन अगर यह तुम्हारी एकमात्र तल्लीनता है, अगर तुम अपनी पूरी सत्ताके साथ, तुम भागवत शक्तिके बारेमें सचेतन चाहते हो, तो तुम सचेतन हो सकोगे। तुम इसलिये सचेतन हो पाते, क्योंकि तुम समय-समयपर उसके बारेमें सोचा करते हो जब विषय उठता है तो तुम अपने-आपसे पूछते हो : “क्या सच है, मैं कैसे कर सकता हूं?” और फिर, अगले ही क्षण तुम उसके बारेमें बिलकुल नहीं सोचते। तो तुम उसके बारेमें

अक्तूबर १९८०

१५

भाषा कैसे कर सकते हो ? तुम्हें बहुत एकाग्र होना चाहिये, तुम्हें बहुत तीरव होना चाहिये, और बहुत स्पष्ट रूपसे अपना अवलोकन करना चाहिये। और तुम्हें बहुत विनम्र होना चाहिये, यानी, इस कहानीमें कोई बड़ी भूमिका न पानेके लिये भी तैयार रहना चाहिये। दुर्भाग्य यह है कि साधारणतः, प्राणिक सत्ता या मान-निक सत्ता या यहांतक कि भौतिक सत्ता भी भाग लेनेके लिये बहुत आतुर रहती है, बहुत आतुर। इसलिये वह फूल उठती है, बहुत-सा स्थान घेर लेती है और वाकीको ढक देती है; वह उसे जितनी अच्छी तरह ढक देती है कि तुम्हें भगवान्की शक्तिकी उपस्थितिका भानतक नहीं हो पाता, क्योंकि भौतिककी, शरीर, प्राण, मनकी निजी गतिविधि हर चीजको अपने महत्त्वसे ढक देती है।

मुनो : अगर तुम हर रोज सोनेसे पहले केवल एक छोटा-सा मिनट निकालकर, इस तरहसे, और इस छोटे-से मिनटमें अपनी समताके अनुसार पूरी एकाग्रताके साथ यह याचना करो कि तुम दिव्य शक्तिके बारेमें सचेतन हो सको, वस इसी तरह, इससे बढ़ कर कुछ नहीं; और सवेरे जागनेपर अपना दिन शुरू करनेसे पहले अगर तुम यही करो, मिनट-भर निकालकर जितनी एकाग्रता कर सकते हो करो, और यह मांगो कि तुम दिव्य शक्तिके बारेमें सचेतन हो सको, तो तुम देखोगे कि कुछ समयके बाद ऐसा ही होगा और कुछ नहीं, यही छोटी-सी बातें जो कुछ भी नहीं हैं और जिनमें समय भी नहीं लगता।

एक दिन यह होगा। हां, तुम्हें उसे एकाग्रता, तीव्रता और सचाईके साथ करना चाहिये; यानी, यह नहीं होना चाहिये कि जब तुम यह मांग रहे हो, उसी समय तुम्हारा कोई दूसरा हिस्सा अपने-आपसे कह रहा हो : “आखिर, इसका कोई महत्त्व नहीं है।” या, तुम किसी और चीजके बारेमें सोचो, जैसे तुम क्या पहनोगे, किससे मिलोगे, कोई भी चीज, हजारों कामनाएं। तुम्हें एक मिनट-के लिये पूरी तरह वहां होना चाहिये। अगर तुम मिनटोंको

बढ़ाते जाओ, तो काम और भी जल्दी होगा। लेकिन जैसा कि मैं पहले भी कह चुकी हूँ, अगर तुम इस योग्य हो कि पिछले क्षण की अभीप्साका अगले ही क्षण विरोध न करो, तो काम ज्यादा आसान हो जाता है। अगर ऐसा न कर पाओ तो वह सचाई को दूर धकेल देता है।

(श्रीमातृवाणीसे)

इच्छा और बच्चोंकी मांगनेकी आदत

मधुर मां, इच्छा करने (Willing) और कामना करने (Desiring) में क्या फर्क है ?

वे दोनों एक ही चीज बिलकुल नहीं हैं। जब तुम देखते हो कि कोई चीज की जानी चाहिये, उदाहरणके लिये, तुम्हें लगे कि यह करना अच्छा है — अपनी बुद्धिकी बात लो, तुम्हारी बुद्धि निश्चय करती है कि यह करना चाहिये, तो तुम्हारी इच्छा काम करना शुरू करती है, और तुमसे वह सब करवाती है जो इसके लिये जरूरी है। तुम्हारी इच्छा एक कार्यकारी शक्ति है कि बुद्धि या किसी उच्चतर शक्तिकी सेवामें रहना चाहिये। यह एक समन्वित और व्यवस्थित चीज है जो एक योजनाके अनुसार पूर्णतः नियंत्रित ढंगसे यथार्थ रूपमें काम करती है।

कामना एक आवेग है। वह तुम्हें पकड़ लेती है... यह जरूर नहीं है कि वह तुम्हें किसी सचेतन विचारके साथ पकड़ती हो। यह एक ऐसा आवेग है जो तुम्हें किसी चीजपर अधिकार करनेके लिये धकेलता है। तुम अपनी इच्छाको कामनाकी सेवामें लग सकते हो, पर कामना इच्छा नहीं है। कामना एक आवेग है।

नवम्बर १९८०

रहे लोग होते हैं जो कामनासे भरे रहते हैं पर उनमें इच्छा नहीं होती। हम कह सकते हैं कि कामनाएं उन्हें खा डालती हैं; पर उनसे कुछ नहीं होता, क्योंकि उनमें कामनाओंको पूरा करनेकी इच्छा-शक्ति नहीं होती। अधिकतर लोग, उनके पास जो थोड़ी-बहुत इच्छा-शक्ति होती है उसे अपनी कामनाकी सेवामें लगा देते हैं। लेकिन इच्छा एक शक्ति है जिसमें व्यवस्था करनेकी क्षमता होती है और उसे जिस किसी उद्देश्यके लिये काममें लाया जा सकता है। जब तुम्हारे अंदर इच्छा-शक्ति हो तो (यहां कुछ शब्द सुनायी दी दिये) ... किसी निश्चित उद्देश्यके लिये। यह है इच्छा।

तुम्हें कामनाको इच्छा न समझ लेना चाहिये। कामना एक आवेग है वह तुम्हें पकड़ लेती है, जकड़ लेती है, तुमसे चिपक जाती है और अगर तुम कामनाको अपनी मरजीके अनुसार करने दो तो वह तुमसे कुछ भी करवा लेती है और वह तुम्हारी इच्छा-उपयोग करती है। लेकिन कामना साधारणतः, उग्र, आवेग-पूर्ण और कुछ समयके लिये होती है। ऐसा बहुत कम होता है कि वह लंबे समयतक रहे; उसके अंदर सतत प्रयासके लिये न कोई उपादान होता है, न व्यवस्था। जब कोई कामना तुम्हें आकड़ती है तो वह तुमसे कुछ भी करवा सकती है — लेकिन जो इसके अवायेगी आवेगमें, किसी पद्धतिके अनुसार नहीं।

मरु मां, कुछ बच्चोंकी हमेशा मांगनेकी आदत क्यों होती है ?

क्या मांगनेकी ?

भौतिक चीजें, जैसे मिठाई या जो कुछ दीख जाय ...

क्योंकि वे कामनासे भरे होते हैं। शायद वे कामनाके स्पंदनों-निमित्त हुए थे, और चूंकि उन्हें अपने ऊपर अधिकार नहीं होता

इसलिये यह खुलकर प्रकट होती है। बड़ी आयुके लोग भी कामना से भरे होते हैं, लेकिन उनमें एक प्रकारका, क्या कहा जाय? वे अपनी कामना दिखानेमें सकुचाते हैं, उन्हें जरा शरम-सी आती या फिर, उन्हें डर लगता है कि लोग उनपर हंसेंगे, इसलिये वे प्रकट नहीं करते। लेकिन वे भी कामनाओंसे भरे होते हैं। कच्चे ज्यादा सरल होते हैं। जब वे कोई चीज चाहते हैं तो कह देते हैं। वे अपने-आपसे यह नहीं कहते कि शायद इसे न दिखानेसे ज्यादा अकलमंदी है, क्योंकि अभीतक उनके अंदर इस प्रकारकी बुद्धि नहीं आयी। लेकिन मेरा ख्याल है कि साधारणतः, कुछ अपवादोंको छोड़कर लोग सतत कामनाओंमें ही निवास करते हैं। वे उसे बस, प्रकट नहीं करते, और कभी-कभी तो वे उसे स्वयं अपने सामने भी स्वीकार करनेसे शर्माते हैं। लेकिन वह होता तो है, कुछ पानेकी अपेक्षा होती है...। व्यक्ति कोई मुश्किल चीज देखता है और वह तुरंत प्राप्त करनेकी इच्छाका रूप लेती है। और यह बहुत-सी चीजोंमें एक है... यह बिल्कुल बचकानी है। यह बिल्कुल बचकानी और हास्यास्पद चीज है, क्योंकि सौमेंसे कम-से-कम नब्बे बार कामना करनेवालेको जब वह चीज मिलती है तो वह उसे देखता भी नहीं। यह बहुत ही कम होता है कि, चीज भले कैसी भी क्यों न हो, पानेके बाद भी उसमें रस बना रहे।

मधुर मां, हम बच्चेकी हमेशा मांगते रहनेकी आदत छुड़ानेमें कैसे सहायता कर सकते हैं?

इसके कई तरीके हैं। लेकिन सबसे पहले तुम्हें यह जानना चाहिये कि कहीं तुम उसे अपने विचार या अपनी भावना प्रकट करनेसे तो नहीं रोक रहे, क्योंकि अधिकतर लोग यही करते हैं। वे डांटते और कभी-कभी दंड भी देते हैं; और इससे बच्चेको अपनी

अक्तूबर १९८०

कामनाएं छिपानेकी आदत पड़ जाती है। लेकिन इससे वह उनसे छुटकारा नहीं पाता। अगर उससे हमेशा यही कहा जाय : "नहीं, तुम्हें यह चीज नहीं मिलेगी", तो उसके अंदर मनकी यह अवस्था बन जाती है : "जबतक मैं छोटा हूं तबतक लोग मुझे कुछ भी नहीं देंगे...। मुझे बड़े होनेकी राह देखनी होगी। जब मैं बड़ा हो जाऊंगा तो मैं जो चाहूंगा पा लूंगा।" बात ऐसी है। लेकिन इससे बच्चे उस चीजसे छुटकारा नहीं पाते। बच्चेको पालना बड़ा मुश्किल काम है। एक तरीका यह है कि बच्चा जो मांगे उसे चलो; और स्वभावतः दूसरे ही क्षण वह कुछ और मांगेगा, क्योंकि यही तो नियम है, कामनाका नियम यही है : कभी संतुष्ट न हुआ जाय। हां, अगर बच्चा समझदार है तो तुम उससे कह सकते हो : "तुम इस चीजके लिये इतना आग्रह कर रहे थे, अब तुम्हें इसकी परवाह भी नहीं रही। अब तुम कुछ और ही मांग दे हो।" लेकिन अगर बच्चा बहुत होशियार हुआ तो कहेगा : "मुझे छुटकारा दिलानेका सबसे अच्छा उपाय यही है कि मैं जो भी मांगू मुझे देते चलो।"

कुछ लोग सारे जीवन यह विचार बनाये रखते हैं। अगर उसे अपनी कामनाओंको जीतनेके लिये कहा जाय तो वे कहते हैं : "इसका सबसे सुगम उपाय है उन्हें संतुष्ट करना।" इस तरह-का तर्क त्रुटिहीन मालूम होता है। लेकिन तथ्य यह है कि कामनाके विषयको नहीं, कामनाके आवेगको, उसकी गति-विधिको बदलने-को जरूरत है। और इसके लिये बहुत-से ज्ञानकी जरूरत है, और यह बहुत छोटे बच्चेके लिये मुश्किल है।

यह कठिन है। वास्तवमें, उनमें तर्ककी क्षमता नहीं होती; वे कारण नहीं समझ पाते; तुम उन्हें बात समझा नहीं सकते। तो, जब ऐसी स्थिति होती है तो मां-बाप उनसे कहते हैं : "चुप हो, तुम एक मुसीबत हो!" इस तरह वे मुश्किलमेंसे निकल आते हैं पर यह कोई समाधान तो न हुआ। यह बहुत कठिन है।

इसके लिये लगातार प्रयास और अटल धीरजकी जरूरत होती है। कुछ लोग जीवन-भर ऐसे होते हैं; वे अपने सारे जीवन वच्चों जैसे बने रहते हैं और उन्हें कोई युक्ति-युक्त बात बताना असंभव होता है। जैसे ही तुम उनसे कहो कि वे समझदार नहीं हैं, और उनकी कामनाओंको संतुष्ट करनेके लिये उन्हें चीजें नहीं दी जा सकतीं, तो वे, बस, यही समझते हैं: "ये लोग अच्छे नहीं हैं, यह व्यक्ति अच्छा नहीं है।" बस।

वास्तवमें, तुम्हें आरंभमें इस गतिको उन चीजोंकी ओर मोड़ना चाहिये जिन्हें सच्चे दृष्टिकोणसे पाना ज्यादा अच्छा है और जिन्हें पाना ज्यादा कठिन है। अगर तुम कामनाके इस आवेगको उस ओर मोड़ सको, ... उदाहरणके लिये, जब वच्चा कामनाओंसे भरा हो, तो तुम उसे ज्यादा ऊंचे प्रकारकी कामना दे सको — विलक्षण क्षणिक संतोष देनेवाली विशुद्ध भौतिक चीजोंके लिये कामनाकी जगह — अगर तुम उसके अन्दर जाननेकी कामना, सीखनेकी कामना, एक विलक्षण व्यक्ति बननेकी कामना जगा सको... इस तरह शुरू कर सकते हो। चूंकि ये चीजें करना मुश्किल है, तो धीरे-धीरे वह इन चीजोंके लिये अपने अंदर इच्छा विकसित कर लेगा। या फिर, भौतिक दृष्टिसे ही कोई ऐसी चीज करनेकी कामना दो जो ज्यादा मुश्किल हो, उदाहरणके लिये, कोई ऐसा खिलौना बनानेके लिये दो जिसे बनाना मुश्किल हो, या उसे कोई खेल दो जिसमें धीरजकी जरूरत हो, जिसमें बहुत अध्यवसायकी जरूरत हो।

अगर तुम उन्हें दिशा दे सको — इसके लिये बहुत विवेक और धीरजकी जरूरत है, फिर भी यह संभव है — अगर तुम उन्हें किसी ऐसे काममें लगा सको, तुम उन्हें कठिन खेलोंमें सफल होने का किसी ऐसे काममें लगा दो जिसमें बहुत ध्यान और एकाग्रताकी जरूरत है या किसी ऐसी दिशामें चला दो जिसमें अध्यवसायपूर्ण इच्छाका काम हो, तो इसके परिणाम आ सकते हैं: इससे उनका

अक्तूबर १९८०

प्यान अमुक चीजोंकी ओरसे हटकर और चीजोंकी ओर चला जायगा। इसके लिये सतत सावधानीकी जरूरत है — मैं नहीं कह सकती कि यह सबसे आसान तरीका है, क्योंकि यह निश्चय ही आसान नहीं है — पर है सबसे अधिक प्रभावशाली। “ना” कहना कोई इलाज नहीं और “हां” कर देना भी कोई इलाज नहीं है और कभी-कभी यह, स्वभावतः, बहुत कठिन हो जाता है।

उदाहरणके लिये, मैंने ऐसे लोग देखे हैं जिनके बच्चे जो नजर आ जाय उस सबको खा जाना चाहते थे। उन्हें ऐसा करने दिया जाता था। इससे वे बहुत बीमार हो जाते थे। और फिर, उस बीजसे घृणा करते थे। लेकिन यह जरा खतरनाक है। क्यों, है न? कुछ ऐसे बच्चे होते हैं जो हर चीजको लेकर बेचैन हो उठते हैं। एक दिन एक बच्चेको दियासलाई मिल गयी। उन्होंने यह कहनेकी जगह कि मत छुओ उसे अपनी मरजीके मुताबिक करने दिया और उसने अपने-आपको जला लिया। इसके बाद उसने कभी दियासलाई नहीं छुई।

लेकिन यह जरा खतरनाक है। कुछ बच्चे एकदम अचेतन होते हैं और अपनी कामनाओंमें बहुत साहसी होते हैं: उदाहरणके लिये, वे दीवारकी मुंडेरपर या छतपर चलना चाहते हैं या पानी देखते ही उसमें डुबकी लगाना चाहते हैं या नदीमें गोता मारना चाहते हैं...। कभी-कभी यह बहुत कठिन हो जाता है... या फिर, कुछ बच्चोंको सड़क पार करनेका पागलपन होता है; हर बार मोटर आती देखकर उसका रास्ता काटना चाहते हैं, काटनेकी कोशिश करते हैं। अगर उन्हें यह करने दिया जाय तो किसी दिन यह परीक्षण घातक हो सकता है।

हां, मैं ऐसे लोगोंको जानती थी जिन्होंने ऐसे परीक्षण किये थे। पता नहीं वे सफल हुए या नहीं। लेकिन, जैसा कि मैंने कहा, बच्चा झुलस गया, यह एक गड़बड़ हो गयी क्योंकि बच्चे-के शरीरमें जलेके निशान रह गये। और फिर, एक लड़का था

जो बिना सोच-समझे एक जीनेकी रेलिंगपर खेलता हुआ गिर पड़ा और अपना सिर लगभग तोड़ लिया...। तो तुम देखते हो कि इसके अपने परिणाम होते हैं। लेकिन ऐसोंको "ना" करनेसे भी कोई लाभ नहीं होता, उल्टा ही होता है। अगर तुम उनसे कहो: "खास तौरपर यह मत लेना, इससे नुकसान होगा" — तो वे न मानेंगे; वे यही समझेंगे कि यह उनकी कामनासे पिड़ छड़ानेके लिये कहा गया है।

यह बहुत कठिन समस्या है। एक आदमी था जिसके शिक्षात्मक स्वाधीनताके बारेमें कुछ ऐसे ही विचार थे, उसने मुझे बतानेके लिये सिद्धांत बनाये कि व्यक्तिगत स्वाधीनताका मान करना चाहिये, यहांतक कि नये लोगोंके लिये पिछले अनुभवोंका कभी उपयोग करना चाहिये, हमें उन्हें अपने सब परीक्षण अपने-आप करनेके लिये छोड़ देना चाहिये। यह चीज बहुत दूरतक जा पहुंची। उन लोगोंने मेरी बड़ी समालोचना की, क्योंकि मैं दुर्घटनाओंको रोकनेकी कोशिश कर रही थी। उन्होंने मुझसे कहा: "आप इन्हे रोकनेमें बड़ी गलती कर रही हैं।" तो मैंने कहा: "अगर कोई मर जाय तो?" — "तो इसका मतलब होगा उसे मरना था आपको उनकी नियति और उनके विकासकी आजादीमें दखल देने का कोई अधिकार नहीं है। वे बेवकूफियां करना चाहते हैं, तो उन्हें बेवकूफियां करने दो। जब उन्हें पता लग जायगा कि वे बेवकूफियां हैं, तो वे नहीं करेंगे। और ऐसे उदाहरण हैं उस आदमी निश्चय ही उन्हें फिरसे नहीं करता, क्योंकि वह सीमापार निकल जाता है।

अगर तुम इसका कोई सिद्धांत बनाना चाहो तो यह एक बहुत ही कठिन समस्या है। हर मामला एकदम अलग होता है और अलग पद्धतिकी मांग करता है। और सचमुच, अगर तुम बच्चेको अच्छी-से-अच्छी शिक्षा देना चाहते हो, तो तुम्हें अपना सारा समय उसी में लगा देना होगा। तुम और कुछ भी न कर सकोगे।

अक्तूबर १९८०

मानते हुए कि तुम्हें प्रकट रूपसे उसपर निगरानी नहीं रखनी चाहिये, ठीक समयपर ठीक क्रिया करनेके लिये उसके जाने बिना भी उसके ऊपर नजर रखनी चाहिये। तब तुम और कुछ न कर सकोगे।

तो, शायद हमें एक बीचकी अवस्था खोज निकालनी चाहिये जो इन दोनों छोरोंके बीच हो : पहली, जिसमें हमेशा उसपर निगरानी रखी जाय, और दूसरी, जिसमें उसे अपनी मरजीके मुताबिक करनेके लिये पूरी छूट हो, उसे हो सकनेवाली दुर्घटनाओंके बारेमें भी सचेत न किया जाय। हर क्षण समायोजन ! कठिन है।

(श्रीमातृवाणीसे)

श्रीअरविंदने कहा है

(उनके कुछ वचनोंके आधारपर)

भौतिक विज्ञान चाहे कितना भी फैल जाय, दूर-दूरके सौर-जालोंको अपनी भुजाओंमें ले ले, धरतीकी गहरी परतोंको छान गे, भौतिक तत्त्व और ऊर्जाकी वारीकियोंको अपने वशमें कर ले तो भी हमारे लिये बहुत बड़ा लाभ न होगा, वह प्राप्त करने योग्य एकमात्र वस्तु नहीं है। इसीलिये विज्ञानकी सारी चमक-लक के बावजूद जड़वादका सिद्धांत व्यर्थ और असहाय सिद्ध होता है। भौतिक विज्ञान अपनी सभी चमत्कारपूर्ण उपलब्धियोंसे जीवन-को आरामदेह भले बना सके पर उसे सुख और पूर्णता नहीं दे सकता। सच्चा सुख पूरी सत्ताके विकास, जीवनके सभी स्तरों-पर विजय प्राप्त करनेमें अपनी बाहरी भीतरी प्रकृतिपर पूरा प्रभुत्व

पानेमें प्राप्त हो सकता है। हम जीवनके जिस स्तरपर हैं उसी स्तरपर बड़े, बड़े और बड़े चक्र बनानेमें नहीं, उनके परे जानेमें, उनसे ऊपर उठनेसे ही सच्चा सुख मिल सकता है।

(दिव्य जीवन)

मानव प्रकृतिके दोष

मानव प्रकृति दोषोंसे भरी है लेकिन इनके अतिरिक्त और कमल भी हैं, और संभावनाएं भी हैं जिन्हें देखे बिना हम मानवका पूर्ण रूप नहीं देख सकते। मानव प्रकृतिकी वृष्टियोंको देखकर हमें मनोरंजन की तरह निराश न हो जाना चाहिये। हमें सारी वृष्टियोंके हों हुए निराश न होना चाहिये, किसीसे घृणा न करनी चाहिये। मनुष्यकी कमजोरीको जानते हुए भी हम उससे प्रेम कर सकते हैं, उसकी सहायता कर सकते हैं। आध्यात्मिक चेतना अंधी नहीं होती, वह सब तरहके आवरणोंके पीछे छिपे दिव्य तत्त्वको देख सकती है। वह न तो बाहरी रूपोंसे धोखा खाती है और न तत्त्वों के कारण घृणा करती या निराश होती है।

(फ्यूचर पोएट्री)

चेतनाकी विशालता

मधुर मां, हम चेतनाको विशाल कैसे बना सकते हैं?

विशाल? ऐसा करनेके बहुत-से तरीके हैं।

सबसे आसान तरकीब है, अपने-आपको किसी विशाल चीज के साथ एकात्म कर लो। उदाहरणके लिये, जब तुम्हें लगे कि तुम एक

अनुवर १९८०

जो तरह किसी संकरे सीमित विचार, इच्छा और चेतनामें बन्द हो, जब तुम्हें ऐसा लगे कि तुम किसी सीपमें बन्द हो, तो तुम किसी बहुत विशाल चीजके बारेमें सोचने लगे, उदाहरणके लिये, समुद्र-जलकी विशालता, और अगर सचमुच तुम समुद्रके बारेमें सोच लो कि वह कैसे दूर, दूर, दूर, दूरतक सभी दिशाओंमें फैला है, उस तरह (माताजी बाहें फैला देती हैं), कैसे तुम्हारी तुलनामें वह इतनी दूर है, इतनी दूर कि तुम उसका दूसरा तट देख भी नहीं सकते, उसके छोरके आसपास भी नहीं पहुंच सकते, न पीछे जाओ, न दाएं न बाएं... वह विशाल, विशाल, विशाल, विशाल है... तुम उसके बारेमें सोचते हो और यह अनुभव करते हो कि तुम इस समुद्रपर उतरा रहे हो, इस तरह, और कहीं कोई सीमा नहीं है... यह बहुत आसान है। तब तुम अपनी चेतनाको कुछ, कुछ-सा, विस्तृत कर सकते हो।

कुछ लोग, उदाहरणके लिये, आकाशको देखना शुरू करते हैं; और वे कल्पना करते हैं कि इन सब नक्षत्रोंके अंतरिक्ष और वह सारी अनंतता... जिसमें पृथ्वी एक छोटा-सा बिंदु है, और तुम भी पृथ्वीपर एक छोटी-सी चीटीसे भी छोटे बिंदु हो। और जब तुम आकाशको देखते हो तो अनुभव करते हो कि तुम इन अनंत अंतरिक्षोंमें, नक्षत्रोंके बीच उतराते फिर रहे हो, और तुम जैसे-जैसे दूर जाते हो वैसे-वैसे ज्यादा विशाल होते जाते हो। कुछ लोग इस तरह सफलता पाते हैं।

एक और तरीका है, जिसमें तुम पृथ्वीकी सभी चीजोंके साथ संपर्क अनुभव करते हो। उदाहरणके लिये, जब किसी चीजके बारेमें तुम्हारी दृष्टि संकीर्ण हो और तुम्हें दूसरोंकी दृष्टि और उनके दृष्टिकोणसे चोट पहुंचती हो, तो तुम्हें अपनी चेतनाका स्थान बदलने-शुरू करना चाहिये, उसे दूसरोंमें रखनेकी कोशिश करो, और जो-जो अन्य सब लोगोंके सोचनेकी विभिन्न पद्धतियोंसे अपने-आप-को एक करनेकी कोशिश करो। यह जरा ज्यादा... कैसे कहूं? ...

खतरनाक है। क्योंकि दूसरोंके विचारों और संकल्पोंके होनेका मतलब होता है, मूढ़ताओं और दुर्भावनाओंके ढेरके तादात्म्य करना (माताजी हंसती हैं), और इससे ऐसे परिणाम आ सकते हैं जो बहुत अच्छे न हों। फिर भी, कुछ लोग इसे आसानी से करते हैं। उदाहरणके लिये, जब उनका किसीसे मतभेद होता तो अपनी चेतनाको विस्तार देनेके लिये वे अपने-आपको दूसरे स्थानपर रखकर चीजको अपने दृष्टिकोणसे नहीं, दूसरेके दृष्टिकोणसे देखते हैं। इससे चेतनाका विस्तार होता है, यद्यपि उतना जितना पहले बताया गया उपायोंसे, जो बिल्कुल निर्दोष है। उन्हें कोई हानि नहीं होती, उनसे बहुत लाभ होता है। वे तुम्हें बहुत शांत कर देते हैं।

चेतनाको विस्तृत करनेके बहुत-से बौद्धिक तरीके हैं। मैंने अपने पुस्तकमें इन्हें अच्छी तरह समझाया है। लेकिन बहरहाल, जब तुम किसी चीजसे ऊब जाओ, जब कोई चीज तुम्हें कष्टदायक और बहुत अक्रिय लगने लगे, उस समय यदि तुम कालकी शाश्वतताके बारेमें, देशकी अन्ततः के बारेमें सोचना शुरू करो, अगर तुम उस सबके बारेमें सोचो जो हो चुका है, और उस सबके बारेमें सोचो जो होनेवाला है, और यह देखो कि यह सेकेंड शाश्वततामें चलती हुई एक सांसके जैसा है, और एकदम बेहूदा बात मालूम होती है कि कोई ऐसी बातपर परेशान होना जो कालकी अन्तततामें... तुम्हारे पास उससे अवगत होनेके लिये नहीं भी नहीं है, उसका कोई स्थान नहीं है, कोई महत्त्व नहीं है, क्योंकि सचमुच, शाश्वततामें एक सेकेंड क्या है? अगर तुम इसे अनुभव कर सको... इसे कैसे कहा जाय... अगर यह देख सको, अगर अपने अंदर यह चित्र बना सको कि इस छोटी-सी धरतीपर तुम किसी छोटे-से व्यक्ति हो, और चेतनाका वह जरा-सा सेकेंड, जो इस समय तुम्हें कष्ट दे रहा है, यह इतना अप्रिय हो रहा है — वस यही तुम्हारे अपने जीवनमें वस, एक सेकेंड मात्र है; तुम स्वयं बहुत-सी चीजें रह चुके हो, और बहुत-सी चीजें भविष्यमें बनने

नवम्बर १९८०

और अभी जिस चीजका इतना असर हो रहा है, उसे संभवतः तुम पहले दस वर्षोंमें भूल जाओगे, और अगर तुम्हें इसकी याद रही भी तो तुम कहोगे : "मैंने इसे कोई महत्त्व कैसे दे दिया था ?" ... अगर तुम पहले इस चीजका अनुभव कर सको, और फिर यह देखो कि तुम्हारा अपना छोटा-सा व्यक्तित्व जो शाश्वततामें एक सेकेंड या एक मिनटके बराबर भी नहीं है, लगभग अदृश्य, इससे पहले एक पूरा सप्ताह फैलता रहा है और इसके बाद भी फैलेगा, अनिश्चित कालतक — पहले, पीछे — और... तो, अचानक तुम्हें पता लगता है कि तुम्हारे साथ जो हुआ था उसे इतना अधिक महत्त्व देना कितना अस्वाभाविक है। ... सचमुच, तुम्हें लगता है... कि अपने जीवनको, अपने-आपको या अपने साथ बीती बातोंको महत्त्व देना कितना निरर्थक है। अगर और तीन मिनटके अंदर-अंदर तुम इसे ठीक तरह कर लो तो सारी अप्रियता दूर हो सकती है, गहरी पीड़ा भी दूर हो सकती है। सिर्फ इस तरहकी एकाग्रता, और अपने-आपको अनन्तता और शाश्वततामें रखना। सब कुछ चला जाता है। तुम उसमेंसे जो कुछ चाहो निकलते हो। तुम इस तरह सब आसक्तियोंसे भी पिंड हो सकते हो, मैं कहती हूं, गहरे-से-गहरे दुःखसे भी। हर चीजसे मुक्त हो सकते हो, अगर तुम इसे ठीक तरह करना जानो। यह तुम्हें तुरंत अपने छोटे-से अहंकारमेंसे बाहर ले आता है। तो यह लो।

(श्रीमातृवाणीसे)

अंतर्भास

प्युर मां, अंतर्भास किस स्तरकी चीज है ?

यह उनमेंसे एक स्तर है, उन लोकोंमेंसे है, जिनकी बात हम

पिछली बार कर रहे थे, जो उच्चतर मन और अधिमानके बीच है।

मधुर मां, यह अंतर्भास कैसे अभिव्यक्त होता है ?

यह कैसे अभिव्यक्त होता है ? यह एक ऐसी चीज है जो कि तर्क, बिना विश्लेषण, बिना निगमनके पैदा होती है। सहसा तुम एक चीज जान जाते हो, तुमने उसके लिये तर्क नहीं किया, कोई विश्लेषण नहीं किया, निगमन नहीं किया, सोच-विचार नहीं किया, अपने मस्तिष्कका उपयोग किये बिना, समस्याके सभी सूत्रोंको इकट्ठा करके सुलझानेकी कोशिश किये बिना — यह इस तरह नहीं होता। सहसा यह चेतनामें प्रकाशकी तरह आता है; यह सिरमें हो सकता है या कहीं नीचे हो सकता है; यह चेतनामें एक प्रकाश होता है जो कि बिंदु-विशेषपर यथार्थ ज्ञान लेकर आता है, और यह तर्क या विश्लेषणका परिणाम बिल्कुल नहीं होता। वास्तवमें, यह तादात्म्यके द्वारा ज्ञानकी पहली अभिव्यक्ति है। तादात्म्यके द्वारा ज्ञान — तुम स्वयं रूपसे इसका मतलब समझते हो ?

अगर तुम किसी चीजके साथ तादात्म्य सिद्ध कर लो, तो कुछ समयके लिये तुम वही चीज बन जाते हो और वह चीज बनकर तुम अनुमान करने या कुछ गढ़नेकी जरूरतके बिना उसके अंदर जो कुछ है वह सब जान लेते हो। (लंबा मौन) लो, वस अब।

स्वभावतः, पूर्व दृष्टिका एक रूप भी होता है, लेकिन उसकी ठीक-ठीक ऐसी ही प्रकृति नहीं होती। साधारणतः, पूर्वदृष्टि तादात्म्यके द्वारा जाननेकी क्षमतासे आती है। अगर तुम अपनी चेतनाको किसी चीजमें — किसी परिस्थिति या किसी घटनामें या किसी व्यक्ति में प्रक्षिप्त करो — अगर तुम अपनी चेतनाको प्रक्षिप्त कर सको, तो उसके बाद तुम उस चीजके ठीक-ठीक लक्षण या संकेत प्राप्त करोगे जो जिसके साथ चेतना मिली है। और आगे चलकर इससे पूर्ण और निरपेक्ष ज्ञान आता है। वास्तवमें, जाननेका यही एकमात्र उपाय है।

नवम्बर १९८०

और अगर तुम इस चीजको काफी आगे बढ़ा सको और भगवान्‌के
 तब तादात्म्य कर सको, तो तुम्हें भागवत ज्ञान प्राप्त हो जायगा।
 यह असंभव नहीं है। यह चीज संभव है, क्योंकि विश्व इसी तरह,
 चीजोंके लिये बना है। केवल वह ठीक मार्गसे हट गया है; किन्तु
 कारणोंसे यह पता नहीं। आह! हम कैसी अजीब चीजें देखते
 हैं!... यह विश्वास करना कि हम जानते हैं, और साथ ही, यह
 जानना कि यह कैसे होता है।
 तुमने कभी जाननेके लिये कि वहां क्या हो रहा है किसीकी
 चेतनामें प्रवेश करनेका प्रयास नहीं किया? अपनी चेतनाको दूसरेमें
 प्रवेश करके नहीं, क्योंकि तब तुम अपने-आपको उसके अंदर पाते
 और यह मजेदार नहीं होता। इस तरह नहीं बल्कि उसके
 दूसरी चेतनाके साथ संबंध जोड़कर, उदाहरणके लिये, ऐसे समय
 जब किसी कारण तुम किसीके साथ पूरी तरह सहमत नहीं होते;
 वह चीजको एक दृष्टिसे देखता है और तुम किसी और दृष्टिसे।
 अगर तुम समझदार हो तो झगड़ा नहीं करते, लेकिन अगर समझदार
 नहीं हो तो झगड़ने लग जाते हो। झगड़नेकी जगह ज्यादा अच्छा
 है कि तुम दूसरेकी चेतनामें प्रवेश करो और अपने-आपसे पूछो
 कि वह ऐसी बातें क्यों करता है, कौन-सी चीज उसे ऐसा कहने या
 करनेके लिये बाधित करती है? आंतरिक कारण क्या है, चीजोंके
 रोमें उसकी क्या दृष्टि है जिसके कारण वह यह वृत्ति अपनाता है?
 बहुत मजेदार है। अगर तुम यह करो, तो तुम तुरंत गुस्सा
 बना बंद कर दोगे। पहली चीज : तुम गुस्सा नहीं कर सकते।
 अपने-आपमें बहुत बड़ा लाभ है। और यह भी, कि अगर दूसरा
 किसी नाराज बना रहे, तो भी तुमपर असर नहीं होता।
 उसके बाद, तुम ज्यादा पूर्ण रूपसे तादात्म्यके लिये प्रयास कर
 सकते हो और विभाजन और विकारकी गतियोंको रोक सकते हो,
 और झगड़े बंद कर सकते हो। यह बहुत उपयोगी है।
 (एक बालकसे) मेरा ख्याल है मैंने तुम्हें कई बार यह प्रक्रिया

अपनानेकी सलाह दी है। मुझे याद है। तुमने प्रयास किया? तुम, हां तुम, मैं तुमसे कह रही हूं। तुमने प्रयास किया? नहीं? आह, तुम हठी हो। नहीं? (बालक कुछ नहीं कहता) कुछ नहीं निकल रहा।... चलो, हम लोग इस विषयमें और बात नहीं करेंगे। तो, खतम, मेरे बच्चो? और कुछ? और प्रश्न नहीं है? और तरफ, नहीं?

माताजी, क्या केंद्रीय पुरुष चैत्य पुरुष है?

मनुष्योंकी बहुत बड़ी संख्याके लिये चैत्य पुरुष ही केंद्रीय पुरुष है लेकिन केंद्रीय पुरुष किसी और चेतना या किसी और अवस्थाके साथ एक हो सकता है जो अधिक केंद्रीय हो और शुद्ध रूपसे मानव न हो। और यह — मैं यह तो न कहूंगी कि यह बहुत ही विरल है पर हां, बहुत सामान्य नहीं है।

बस, हो गया?

अब नौ बजे है, बस, खतम?

अच्छा, बस, खतम।

(मातृवाणी)

सोसायटी समाचार

श्रीअरविंद सोसायटीका वार्षिक अधिवेशन १० से १४ अगस्त तक पांडिचेरीमें हुआ। आरम्भमें माताजीका संगीत बजाया गया। पहले दो दिन कार्यकर्ता शिविर होता रहा। श्रीकिशोरिण्डाढनियाने सबका स्वागत करते हुए यह इच्छा प्रकट की कि आपसमें विचार-विनिमय करें और कार्यमें एक-दूसरेकी सहायता करें। उन्होंने श्रीअरविंदका देव-मुहूर्त भी पढ़कर सुनाया।

नवंबर १९८०

श्री नीरदवरणने श्रोताओंके आग्रहपर श्रीअरविदके विनोदपर दिया।

श्री महेश्वरीने 'श्रीअरविद सोसायटी' के कामपर दो भाषण दिये। उन्होंने बतलाया कि सोसायटीका उद्देश्य है श्रीअरविदके द्वारा नूतन भविष्यकी तैयारी करना। उन्होंने कहा कि सोसायटीके केंद्रोंको स्वाध्याय, साधना और आध्यात्मिक कार्यका केंद्र बना चाहिये।

श्री छोटे नारायण शर्माने भावी समाज और श्री प्रपत्तिने भारतमें समाजिक कार्यके बारेमें बतलाया।

श्री नवजातने ११ की शामको कार्यकर्ता शिविरका उद्घाटन करते अपने देश-विदेशके कुछ अनुभव सुनाये और बतलाया कि हमारे समाजमें बहुत बड़ा काम है। उन्होंने भविष्यकी अकादमीकी योजना बतलाते हुए उसमें सहयोगकी मांग की। उन्होंने संक्षेप-ओरोवीलकी समस्याओंपर भी विचार प्रकट किये। खुली सभा-यह निवेदन किया कि वह इस विषयपर सोच-विचार कर अपना नाम भारत सरकारके पास भेजे।

शामको सोसायटी द्वारा तैयार की गयी फूलोंकी स्लाइडें दिखायी गयीं।

१२ अगस्त विभिन्न उपसमितियोंकी बैठकें हुईं। डा० महेश्वरीने सच्चि शिक्षाकी योजनाके बारेमें अपना निबंध पढ़ा। उन्होंने बतलाया कि वर्तमान सामाजिक और आर्थिक अवस्थाओंको नजरमें रखते हुए शिक्षा नहीं दी जा सकती। सच्चि शिक्षाके लिये जीवनके सच्चि विषयकी ओर नजर जानी चाहिये, और आजकल इसका अभाव है। श्रीअरविदका एक उद्धरण सुनाते हुए उन्होंने कहा कि हमें सच्चि आत्माको अपने अंदरसे सबसे अच्छी चीजें निकाल देनेमें सहायता देनी चाहिये। इस बारेमें उन्होंने कुछ योजनाएं प्रस्तुत कीं।

(शेष आवरण ३ पर)

जीवनका एक उद्देश्य होता है और वही सच्चा और स्थायी
उद्देश्य है — भगवान् । उन्हींकी ओर मुड़ो और सब खालीपन
खला जायगा ।



चादर, शाल, दोशाले थोक खरीदनेके लिये पत्रव्यवहार करें ।

यूनिक स्टोर्स

घास मंडी; लुधियाना

दूरभाष : २५४४७

स्याली
गालीप
श्री

उसके बाद सदस्य चार आयोगोंमें बंट गये : १ शिक्षा, २ युवा, नारी, ४ आर्थिक। इन आयोगोंके प्रस्ताव १४ अगस्तके अधिवेशनके सामने रखे गये।

१३ अगस्त सवेरेके अधिवेशनमें सोसायटीके केंद्रों और शाखाओं-मिलकर एक-दूसरेके कामका परिचय लिया-दिया। सर्वश्री गान्धे (दिल्ली) प्रो० कैकुवाद (बंबई), डा० मित्र (बंगाल) तथा प्रेमी (गुजरात) आदिके भाषण हुए और अन्तमें प्रधान सचिव गुरुप्रसादने उपस्थित व्यक्तियोंके साथ माताजीसे प्रार्थना की कि उनकी विजय और मिथ्यात्वकी पराजय हो।

दोपहरको श्री अम्बाप्रेमीके सभापतित्वमें ओरोवीलके वारेमें सभा हुई। सम्बद्ध लोगोंने अपने-अपने अनुभव सुनाये। लोग डा० मित्रके इस प्रस्तावसे क्षुब्ध थे कि सरकार ओरोवीलको अपने कब्जे ले ले। इसका विरोध करते हुए एक प्रस्ताव पारित हुआ कि प्रधानमंत्रीकी सेवामें भेजा गया।

१४ अगस्तको आश्रमके थियेटरमें दो खुले अधिवेशन हुए। सुबहके अधिवेशनमें भारतके भूतपूर्व उपराष्ट्रपति श्री जट्टी, आश्रमके श्री सर्वश्री कुनूमा, प्रद्योत कुमार भट्टाचार्य और द्युमान भी उपस्थित थे। श्री जट्टीने पांडिचेरी और ओड़िसाके राजपाल काल-माताजीके साथ अपने संपर्ककी बातें सुनायीं।

श्रीकिशोरीलाल ढांडनियाने सोसायटी और उसके केंद्रोंके वार्षिक रिपोर्ट सुनायी। उन्होंने अकादमी-हाउसमें होनेवाले लेखा-पाठ्यक्रमका विशेष उल्लेख किया।

डॉ० निरंजना, सचिव विश्व संस्कृत प्रतिष्ठान (सोसायटीकी एक शाखा)ने संस्कृतको भारतकी राष्ट्र भाषा होनेके वारेमें माताजीसे संदेश सुनाया, डा० वर्णेकरने इस प्रतिष्ठानका परिचय दिया। दोपहरको सोसायटी कार्यकारिणीके तीन सदस्योंके भाषण हुए, सर्वश्री श्रीनिवास अयंगर, देवेने नायर और पी-पी-नारायणन। कहा कि दुनिया भरकी कोई भी सरकार ओरोवील जैसी

आध्यात्मिक संस्थाका संचालन नहीं कर सकती। यह सरकारों का क्षेत्र नहीं है। विभिन्न उपसमितियोंकी रिपोर्टें सुनायी गयीं और सर्वसम्मतिसे पारित हुई।

श्रीगुरुप्रसादने सबको धन्यवाद दिया और दस मिनटके ध्यानके बाद अधिवेशन समाप्त हुआ।

वहां उपस्थित लोगोंको दो कार्ड बांटे गये थे जिनपर ये संदेश लिखे थे :

- १) ॐ आनन्दमयि चैतन्यमयि सत्यमयि परमे — श्रीअरविद।
- २) परम प्रभु, शाश्वत सत्य, हम केवल तेरी ही आज्ञाका पालन करें और परम सत्यके अनुसार जियें — श्रीमाताजी।

सूचनाएं

बिहारकी श्रीअरविद सोसायटीके केंद्रों और शाखाओंके सभी कार्यकर्ताओंका शिविर पूर्णिआमें २५ और २६ अक्टूबर १९८० को होगा। विस्तृत जानकारीके लिये कृपया श्रीअरविद सोसायटी गान्धी नगर, मधुबनी, पूर्णिआ ८५४३०१ बिहारके पतेपर श्रीअमोल लाल दासको पत्र लिखें।

मध्यप्रदेशके श्रीअरविद सोसायटीके केंद्रों और शाखाओंके सभी कार्यकर्ताओंका शिविर भोपालमें २६ और २७ दिसंबर १९८० को होगा। विस्तृत जानकारीके लिये कृपया श्रीरमेश चन्द्र नागर १५०६, राइट टाउन, जबलपुर — ४८२००१, मध्य प्रदेशके पते पर पत्र लिखें।



पुस्तकालय

गुरुकुल कांगड़ी

उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

अखिल भारतीय पत्रिका

अग्निशिखा

श्रीअरविंद सोसायटीकी मासिक पत्रिका

अप्रैल १९८१

वर्ष ११, अंक ९, पूर्णांक १२९

विषय-सूची

कौन हैं श्रीअरविन्द ?

श्रीअरविन्दाश्रम (श्रीगणेश, एक स्वप्न, आश्रमका विस्तार,
परिवारसे संबंध, प्रयोगशाला, आश्रममें काम,
भौतिक वस्तुएं)

कठिनाइयोंको जीतनेका सच्चा तरीका (श्रीअरविन्दके
पत्रोंपर आधारित)

चार प्रश्न

कला — माताजी और श्रीअरविन्दके पत्र

काव्यकी प्रेरणा तथा कुछ अन्य पत्र

चार युग (श्रीअरविन्दके एक लेखसे)

सोसायटी समाचार

अगर आपको यह पत्रिका पसंद आये तो कम-से-कम दो से
ग्राहक बनाकर इसकी सहायता कीजिये।

अग्निशिखा वार्षिक : ८.००

आजीवन १२५.००

पुरोधा " १०.००

" १७५.००

पत्र, चेक, ड्राफ्ट, आदि, भेजनेका पता :

संपादक अग्निशिखा, श्रीअरविन्द सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

संपादक : रवींद्र

प्रकाशक : श्रीअरविन्द सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-६०५००२

कौन हैं श्रीअरविन्द ?

श्रीअरविन्दके बारेमें कुछ लिखने या बोलनेसे पहले यह जानना वादा जरूरी होगा कि श्रीअरविन्द हैं कौन। कहते हैं: "कद्रे जौहर बाह दानद या वेदानद जौहरी।" रत्नोंका मूल्य या तो बादशाह मानते हैं या विरले पारखी। किसी जौहरीका कहना है कि श्रीअरविन्द बड़ी सूझ-बूझवाले, खौलते रक्तवाले देश-प्रेमी राजनेता थे जिन्होंने तिलकके साथ मिलकर इस शताब्दीके आरंभमें सोते हुए देश-भक्तको जगज्जोर डाला, जिनसे अंगरेज सरकार कांपती थी। कोई उन्हें 'भाषाविद् साहित्यिकके रूपमें देखता है जिन्होंने मसं भोगनेसे पहले 'इलनीकी डायन' नामक नाटक लिखा था जिसके कुछ पन्ने ही मिलते हैं, पर वे पन्ने ही उस आयुमें अंगरेजी भाषापर पूर्ण अधिकारका परिचय देते हैं। उन्होंने बादमें अनेक नाटक लिखे जिनमेंसे हर एक अपने ढंगका निराला है।

कविके रूपमें 'सावित्री' और आलोचकके रूपमें 'फ्यूचर पोएट्री' का परिचय देती है, तो भारतीय संस्कृतिकी गुत्थियां सुलझानेके लिये, हमारी उपेक्षाके कारण उसके अंधेरे पड़े हुए भवनको दैवी प्रकाशसे भरनेके लिये 'फाउंडेशन ऑफ इंडियन कल्चर' पालथी गिराकर बैठी हुई है। वेदों और उपनिषदोंके गूढ़ रहस्य जानने हों, संस्कृत तथा अन्य भाषाओंके आरंभकी ओर नजर दौड़ानी हो, कालिदास, व्यास और वाल्मीकि, आदिका ठीक-ठीक मूल्यांकन करना हो, तो श्रीअरविन्दके साहित्यमें डुबकी लगाइये।

इतना ही नहीं, मानवजातिके भविष्य और मानवसे ऊंची अतिमानव जातिकी झांकी लेनी हो, तो उसमें श्रीअरविन्द सहायता करेंगे। कोई उन्हें अतिमानसका अग्रदूत मानता है, तो कोई महान् योगी कहकर स्तुति हो जाता है। श्रीअरविन्दके इतने अलग-अलग रूप हैं कि उन्हें

जानना, उनकी गिनती करना असंभव है। हमारी ओरसे अच्छा उत्तर बस, यही है कि श्रीअरविन्द श्रीअरविन्द है।

लेकिन इतनेसे जिज्ञासा शांत नहीं होती। श्रीअरविन्दको कोई जानता है तो वह है श्रीमाताजी। चलिये देखें, वह क्या कहते हैं।

माताजीके अनुसार श्रीअरविन्द धरतीके लिये दिव्य भविष्यके आश्वासन लाये हैं और "धरतीको ज्योतिर्मय भविष्यके लिये तैयार करने आये हैं।"

वे कहती हैं:

"श्रीअरविन्द धरतीपर कोई शिक्षा या मत लेकर पुरानी शिक्षा या मतोंके साथ प्रतियोगिता करने नहीं आये। वे आये हैं अतीतसे पार करने, ठोस रूपसे नजदीक आते हुए अनिवार्य भविष्यका मार्ग खोलने।

"वे इतिहासके या अतीतके न होकर चरितार्थ होनेके लिये आये बढ़ते हुए भविष्यके हैं।"

हमें रास्तेपर पिछड़ न जाने और तेजीसे आगे बढ़नेके लिये अपने अंदर शाश्वत यौवनको बसेरा देना चाहिये।

किसीने माताजीसे पूछा कि क्या यह सत्य है कि श्रीअरविन्दने अपने किसी जन्ममें फरासीसी क्रांतिमें सक्रिय भाग लिया था। माताजीने उत्तर दिया:

"तुम कह सकते हो कि सारे इतिहासमें श्रीअरविन्दने सक्रिय भाग लिया था। विशेष रूपसे इतिहासके सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अवसरों पर वे उपस्थित थे — और सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण और प्रमुख भाग ले रहे थे। हां, वे हमेशा दिखायी न देते थे।"

माताजीने अपने एक संदेशमें श्रीअरविन्दके जन्मको विश्व इति-

१९८१

माताजीने कहा :
 "इस वाक्यको चेतनाके उठते हुए चार स्तरोंपर चार अलग-अलग

समझा जा सकता है :

- १) भौतिक रूपसे संसारके लिये इस जन्मके परिणाम शाश्वत रूपसे महत्वपूर्ण होंगे ।
- २) मानसिक रूपसे विश्व इतिहासमें इस जन्मको शाश्वत रूपसे रखा जायगा ।
- ३) चैत्य रूपसे यह एक ऐसा जन्म है जो धरतीपर युग-युगमें करता है ।
- ४) आध्यात्मिक अर्थमें यह धरतीपर शाश्वतका जन्म है ।"

और माताजीके अनुसार ऐसे "श्रीअरविन्द हमेशा हमारे साथ हैं, हमें ज्योति देते, मार्ग दिखाते और हमारी रक्षा करते हैं। हमें उनकी कृपाका उत्तर पूर्ण निष्ठासे देना चाहिये", और "श्रीअरविन्दकी गृह्यता निरंतर मिलती रहती है, हमें उसे ग्रहण करना आना चाहिये ।"

और इसका उपाय क्या है ?

"अभीप्सा करो और अपने प्रयासमें सच्चे, निष्कपट और आग्रही रहो ।"
 १९७२ श्रीअरविन्दकी जन्म-शताब्दीका वर्ष था । नये वर्षका शीर्षक देते हुए माताजीने संदेश दिया :

"शुभ वर्ष

यह वर्ष श्रीअरविन्दको निवेदित है । वे धरतीपर इतनी उदारता-साय जो समस्त प्रकाश, ज्ञान और शक्ति लाये हैं, उसके लिये श्रमप्रतिफल प्रकाशित करनेका सबसे अच्छा उपाय है — उनकी शिक्षाको आदा अच्छी तरह समझना और उसे कार्यान्वित करनेकी कोशिश करना ।

उनकी शिक्षा हमें प्रकाश दे, हमें रास्ता दिखाये और आज हम जो नहीं कर पाते, कल उसे कर पायें।

हम पूरी सचाई और निष्कपटतासे उचित वृत्ति अपनायें तो सचमुच शुभ वर्ष होगा।”

श्रीअरविंद आश्रम

श्रीगणेश

सारा भारत विविध प्रकारके आश्रमोंसे भरा हुआ है। प्रश्न उठता है कि श्रीअरविंदाश्रमका विशेष प्रयोजन क्या है? माताजी जब फ्रांसमें रहा करती थीं तो उनसे बहुतसे लोगोंने कहा था, करें हम भगवान्का भजन करना चाहते हैं पर सारी शक्ति रोटी कपड़ा जुटानेमें ही लग जाती है, भगवान्के लिये न समय बचता न शक्ति। माताजी सोचा करती थीं अगर कभी मुझे अवसर मिले तो मैं एक ऐसे स्थानकी नींव रखूंगी जहां सब भौतिक झंझटोंसे छुटकारा पाकर आदमी भगवान्में ही मस्त रह सके।

माताजी श्रीअरविन्दसे मिलीं तो उनके आगे यह सवाल आया: अपने-आप सिद्धि पा लें या औरोंका मार्ग-दर्शन करें। उन्हें इस विषयका फैसला करनेकी जरूरत नहीं पड़ी। उनके और श्रीअरविन्दके चारों ओर स्वाभाविक रूपसे बिना किसी प्रकारकी कोशिशके लोग साधनाके लिये इकट्ठे होनै लग गये। यही आश्रमका श्रीअरविन्द था। माताजी और श्रीअरविन्दने कई बार कहा है कि आश्रम की प्रयोगशाला है जहां वे भविष्यके लिये परीक्षण कर रहे हैं। यह परीक्षण किसलिये हो रहा है यह जाननेके लिये जरूरी है कि यह यह जानें कि उनके कामका उद्देश्य क्या है? २४-२-१९३६ को माताजीने कहा था कि संसारके बारेमें तीन मुख्य धारणाएं हैं:

अंक १९८१

१—शंकर और बुद्धके अनुसार संसार एक भ्रांति है, अविद्या और अविद्याके कारण पैदा होनेवाले दुःख-दर्दका क्षेत्र है। करने योग्य काम बस एक ही है, जितनी जल्दी हो सके इसमेंसे निकल जाओ तो आदि-असत् और अव्यक्तमें विलीन हो जाओ।

२—प्रचलित वेदांत—जगत् तत्त्वतः भगवान् है क्योंकि भगवान् सर्वव्यापक हैं लेकिन बाह्य अभिव्यक्ति विकृत, अंधकारमय, अविद्यामय और विपरीत हैं। करने लायक चीज बस यही है कि आंतरिक दुष्टके बारेमें सचेतन हो जाओ और उसी चेतनामें स्थिर रहो, जगत्के बारेमें चिन्ता न करो। क्योंकि यह बाहरी दुनिया नहीं बदल सकती और हमेशा निश्चेतना और अविद्याकी स्वाभाविक अवस्थामें रहेगी।

३—श्रीअरविन्दकी दृष्टि—संसार जैसा कि अभी है वह दिव्य सृष्टि नहीं है जो उसे होना है बल्कि उसका धुंधला और विकृत रूप है। यह दिव्य चेतना और इच्छाकी अभिव्यक्ति नहीं है लेकिन उसे ही बनना है, उसकी रचना भगवान्के सभी रूपों और पहलुओंमें, ज्ञान और ज्ञान, शक्ति, प्रेम और सौंदर्यमें विकसित होनेके लिये है।

उसके बारेमें हमारी यही कल्पना है और हम इसी उद्देश्यका अनुसरण करते हैं।

एक और पत्रमें माताजी कहती हैं: "सामान्य साधनाओंका लक्ष्य होता है सच्चिदानन्दके साथ ऐक्य और जो वहां पहुंच जाते हैं वे अपनी निजी मुक्तिसे संतुष्ट होते हैं और जगत्को अपनी दुरवस्थामें छोड़ जाते हैं। उसके विपरीत जहां औरोंकी साधनाका अंत होता है वहांसे श्रीअरविन्दकी साधना शुरू होती है। एक बार भगवान्के साथ ऐक्य सिद्ध हो जाय तो उस सिद्धिको नीचे उतारकर बाहरी संसार और घरतीपर जीवनकी परिस्थितियोंको यहांतक बदलना कि पूर्ण रूपांतर सिद्ध हो जाय। इस लक्ष्यके अनुसार पूर्ण योगके साधक संसारसे निवृत्त होकर ध्यान धारणाका जीवन बितानेमें नहीं लग जाते। हर एकको कम-से-कम अपना एक तिहाई समय किसी उप-

योगी काममें लगाना चाहिये।”

हमारी सत्ताके बहुतसे अंग होते हैं। हठयोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग आदि अपने-अपने पथके अनुसार किसी-न-किसी भागको लेकर चलते हैं किंतु श्रीअरविन्दके अनुसार “उनके योगमें सभी भागों के लिये एक ही साधना है, यहां कोई मानसिक, प्राणिक, भौतिक साधना नहीं है जो हर भागको अलग-अलग लेती हो, साधनाकी किसी-कभी अलग-अलग भागोंपर होती है लेकिन साधना हमेशा एक ही रहती है।”

तो इन्हीं उद्देश्योंको लेकर श्रीअरविन्दाश्रमका आरंभ हुआ था उसके आरंभकी घोषणा नहीं की गयी, उसके शिलान्यासका समारोह नहीं हुआ और उसके लिये कहीं बाजे नहीं बजाये गये। वसन्त ऋतु का एक बीज धरतीमें पड़ गया और उसमेंसे पौधा निकल आया। यह माताजी और श्रीअरविन्दका एक स्वप्न साकार हो रहा था। बहुत लंबे अरसेके बाद माताजीने १९५४ में अपने इस स्वप्नका इस तरह वर्णन किया :

एक स्वप्न

“संसारमें एक ऐसा स्थान होना चाहिये जिसे कोई देश या राज्य अपनी ही संपत्ति न कह सके, ऐसा स्थान जहां सब लोग पूरी सत्ता तंत्रतासे विश्व नागरिक बनकर एकमात्र सत्ता — परम सत्य — के आज्ञाका पालन करते हुए रह सकेंगे। वह शान्ति, एकता और सामंजस्यका स्थान होगा जहां मनुष्यकी सारी युद्धवृत्तियोंका उपशान्त दुःख और दर्दको जीतनेमें, अपनी कमजोरियों और अज्ञानपर प्रभुत्व प्राप्त करनेमें तथा अपनी सीमाओं और अशक्तताओंपर विजय प्राप्त करनेमें होगा, ऐसा स्थान जहां मामूली इच्छाओं और आवेगों की तृप्ति तथा भौतिक सुख और आमोद-प्रमोदकी अपेक्षा आत्मिक आवश्यकताओं और प्रगतिको अधिक महत्त्व दिया जायगा। इस स्थानपर बच्चे अपनी आत्माके साथ संबंध खोये बिना समग्र रूप

१९८१

ह और विकसित हो सकेंगे; शिक्षा भी यहां परीक्षाओंमें उत्तीर्ण होने, समाज-यत्र प्राप्त करने तथा ऊंचे पद पानेके लिये नहीं दी जायगी, यह विभिन्न क्षमताओंको बढ़ाने और नयी क्षमताओंको प्रकट करनेमें देगी। इस स्थानपर सेवा करने और संगठित करनेके अवसर उपाधियों और पदोंका स्थान ले लेंगे। प्रत्येक व्यक्तिकी शारीरिक आवश्यकताओंको समान रूपसे पूरा किया जायगा। सामान्य अवस्थामें नैतिक, नैतिक और आध्यात्मिक श्रेष्ठता जीवनके सुखों व शक्तियोंके बढ़ानेमें नहीं, बल्कि कर्तव्यों और जिम्मेदारियोंकी वृद्धिमें अभिवृद्धि पायेगी। सभी लोगोंको सभी प्रकारका कलात्मक सौंदर्य, चित्रकला, शिल्प, संगीत, साहित्य आदि समान रूपसे प्राप्त होगा। इस कलात्मक सौंदर्यका आनन्द प्रत्येक व्यक्ति अपनी सामाजिक या अधिक परिस्थितियोंके बलपर नहीं, बल्कि अपनी आंतरिक क्षमताओंके अनुपातमें ही प्राप्त कर सकेगा; क्योंकि इस आदर्श-स्थानमें धन मर्याद नहीं होगा। भौतिक संपत्ति तथा सामाजिक पदकी अपेक्षा व्यक्तित्वका अधिक मूल्य होगा। यहांपर काम आजीविकाके लिये नहीं, बल्कि अपने-आपको अभिव्यक्त करने और अपनी क्षमताओं तथा संभावनाओंको विकसित करनेके लिये होगा; साथ ही, यह काम पूरे समुदायके लिये भी होगा। दूसरी ओर समुदाय हर एकके निर्वाह तथा कार्यक्षेत्रका प्रबंध करेगा। संक्षेपमें, यह ऐसा स्थान होगा जहां मानव-संबन्ध जो प्रायः ऐकांतिक रूपसे प्रति-रूपित और संघर्षपर आधारित होते हैं, वे अधिक अच्छा करनेकी सर्वा तथा सहयोगमें और भ्रातृ-भावमें बदल जायेंगे। निश्चय ही, पृथ्वी अभी ऐसे आदर्शको चरितार्थ करनेके लिये तैयार नहीं है, क्योंकि अभी मानवके पास इसे समझने और स्वी-कार करनेके लिये आवश्यक ज्ञान नहीं है, न इसे कार्यान्वित करनेके लिये अनिवार्य सचेतन शक्ति ही है। इसीलिये, मैं इसे स्वप्न कहती हूँ।

फिर भी, यह स्वप्न वास्तविकता बननेकी तैयारीमें है। हम

श्रीअरविदाश्रममें अपने मर्यादित साधनोंके अनुसार एक छोटे पैमाने पर यही करनेका प्रयास कर रहे हैं। उपलब्धि अभी पूर्णताके काफी दूर है, फिर भी, प्रगति हो रही है, धीरे-धीरे हम अपने लक्ष्यकी ओर बढ़ रहे हैं।

हम आशा करते हैं एक दिन वर्तमान दुर्व्यवस्थामेंसे निकलकर अधिक सत्य और अधिक समस्वर नये जीवनमें प्रवेशके लिये हम इसे संसारके सामने एक क्रियात्मक और प्रभावशाली साधनके रूपमें रख सकेंगे।”

आश्रमका विस्तार

आश्रमकी नींव तो पड़ गयी लेकिन इसका विस्तार किन नियमोंके अनुसार हुआ यह कहना मुश्किल है। आश्रममें कौन प्रवेश पा सकता है और कौन नहीं इसका निर्णय स्वयं माताजी किया करती थीं।

किसीने माताजीसे इस विषयमें पूछा तो उन्होंने कहा :

“प्राचीन कालमें शिष्यको दीक्षाके लिये अपनी योग्यता प्रमाणित करनेके लिये कड़ी परीक्षाएं देनी पड़ती थीं। हम यहां उस तरीकेका अनुसरण नहीं करते। प्रकट रूपसे कोई परीक्षा या कसौटी नहीं होती लेकिन अगर तुम सच्ची बात देखो तो तुम्हें पता चलेगा कि यहांकी परीक्षा बहुत ज्यादा कठिन है। वहां शिष्य जानता था कि वह परीक्षा कालमेंसे गुजर रहा है और उसे उत्तीर्ण हो जानेपर प्रवेश मिल जाता था। लेकिन यहां जीवनका सामना करना पड़ता है और पग-पगपर तुम्हें देखा जाता है। केवल तुम्हारी बाह्य क्रियाओंकी ही गिनती नहीं होती। हर एक विचार और आंतरिक क्रियाको देखा जाता है, हर प्रतिक्रियाकी ओर ध्यान दिया जाता है। तुम वनके एकान्तमें जो करते हो

अंक १९८१

जो करते हो उसका महत्त्व है।
 नहीं, जीवनमें संग्राममें जो करते हो उसका महत्त्व है।
 क्या तुम ऐसी परीक्षाओंके लिये अपने-आपको प्रस्तुत करनेको
 तैयार हो? तुम्हें अपने विचार, आदर्श, मूल्य, रुचियों और मतों-
 को फेंक देना होगा। हर चीज नये सिरेसे सीखनी होगी। अगर
 तुम इस सबके लिये तैयार हो तो लगाओ डुबकी वरना पास
 करनेकी कोशिश मत करो।”

और इन परीक्षाओंके बारेमें कुछ और प्रकाश डालते हुए उन्होंने
 कहा:

“पूर्ण योगमें ऐसी परीक्षाओंकी एक अविच्छिन्न शृंखला होती है
 जिनमेंसे तुम्हें चेतावनीके बिना गुजरना पड़ता है और इस तरह
 तुम्हें हमेशा सावधान और चौकन्ना रहना पड़ता है।
 परीक्षकोंके तीन दल ये परीक्षाएं लेते हैं। ऐसा लगता है कि
 उनका एक-दूसरेसे कोई संबंध नहीं है, उनके तरीके बहुत भिन्न
 होते हैं। कभी-कभी तो वे देखनेमें इतने परस्पर विरोधी मालूम
 होते हैं कि ऐसा लगता है कि यह संभव ही नहीं कि वे एक ही
 उद्देश्यकी ओर ले जा रहे हों। फिर भी वे एक-दूसरेके पूरक
 होते हैं, एक ही उद्देश्यके लिये काम करते हैं और परिणामकी
 पुष्टताके लिये सभी अनिवार्य हैं। तीन प्रकारके परीक्षक ये हैं:
 प्राकृतिक शक्तियोंद्वारा नियुक्त, आध्यात्मिक और दिव्य शक्तियों-
 द्वारा नियुक्त और विरोधी शक्तियों द्वारा नियुक्त। इनमें अंतिम
 प्रकारके देखनेमें सबसे ज्यादा भ्रामक होते हैं और अनजानमें बिना
 तैयारी पकड़े जानेसे वचनेके लिये एक सतत सावधानी, सच्चाई,
 निष्कपटता और विनम्रताकी अवस्था जरूरी होती है।
 बिलकुल ही मामूली परिस्थितियां, दैनिक जीवनकी घटनाएं,
 देखनेमें अधिक-से-अधिक नगण्य लोग या चीजें, ये सब इनमेंसे
 किसी-न-किसी परीक्षक दलके होते हैं। परीक्षाओंके इस विशाल और

जटिल संगठनमें, वे जो जीवनमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण माने जाते हैं सबसे सरल परीक्षाएं होती हैं क्योंकि उनके लिये तुम तैयार और सावधान होते हो। रास्तेके छोटे-छोटे पत्थरोंपर ठोकर खाना ज्यादा कठिन होता है क्योंकि वे ध्यान नहीं खींचते।

सहनशीलता और नमनीयता और निर्भीकता ऐसी चीजें हैं जिनकी भौतिक प्रकृतिकी परीक्षाओंमें खास जरूरत होती है।

आध्यात्मिक परीक्षाओंके लिये अभीप्सा, विश्वास, आदर्शवाद, उत्साह और उदारतापूर्ण आत्मोत्सर्ग आवश्यक हैं।

और विरोधी शक्तियोंकी परीक्षाओंके लिये जागरूकता, सचाई, निष्कपटता और विनम्रताकी खास जरूरत होती है।

और यह कल्पना न करो कि एक ओर वे हैं जिन्हें परीक्षा देनी होती है और दूसरी ओर वे जो परीक्षा लेते हैं। परिस्थितियाँ और समयके अनुसार हम सभी परीक्षक और परीक्षार्थी दोनों होते हैं और यह भी हो सकता है कि तुम एक ही साथ परीक्षक और परीक्षार्थी दोनों होओ। और इससे जो लाभ होता है वह राई और गुण दोनोंपर तुम्हारी अभीप्साकी तीव्रता और चेतनाकी जाग्रतिपर निर्भर होता है।

और अन्तमें एक आखिरी सलाह : अपने-आपको परीक्षकके रूपमें कभी न रखो। जब कि यह निरंतर याद रखना अच्छा है कि शायद हम किसी महत्वपूर्ण परीक्षामेंसे गुजर रहे हों, यह कल्पना करना बहुत अधिक खतरनाक है कि तुम औरोंकी परीक्षा लेनेके लिये जिम्मेदार हो। यह अत्यधिक हास्यास्पद और हानिकारक प्रकारके दंभके लिये खुला दरवाजा है। परम प्रज्ञा इन चीजोंका निर्णय करती है, अज्ञानमय मानव इच्छा नहीं।”

(१२ नवंबर, १९५७)

श्रीअरविदाश्रममें कभी जात-पांतका, उच्च-नीचका, धन और दारिद्र्यका विचार नहीं किया गया। माताजीने कहा था कि गुफा

निराल
जन्म
तैयार
ठोकर
१९८१

किन्तु साधना सफल नहीं हो सकती। वहां तुम्हें अपने दोषों-
का पता ही नहीं चलता। आश्रममें मानव जीवनकी सभी प्रकारकी
समस्याओंसे पाला पड़ता है।

निराल
जन्म
तैयार
ठोकर
१९८१

परिवारसे संबंध
जो लोग आध्यात्मिक जीवनके लिये आश्रममें आते हैं उनके बारेमें
श्रीअरविंद कहते हैं :

सचवां

परीक्षा

स्वयं

तों

क और

ह रानि

चेतना

के रूप

है कि

कल्पना

लेने

हानिका

चीजों

१९५७

और

गुफा

१९५७

और

गुफा

१९५७

और

गुफा

१९५७

और

गुफा

१९५७

“जब तुम आध्यात्मिक जीवनमें प्रवेश करते हो तो पारिवारिक
बन्ध झड़ जाते हैं क्योंकि वे साधारण प्रकृतिकी चीजें हैं — आदमी
प्राचीन पुरानी चीजोंके बारेमें उदासीन हो जाता है। इसमें कोई
छोटा हर्गिज न होनी चाहिये, पुराने रिश्तेदारीके संबंधोंसे बंधे
हुएका मतलब होगा सामान्य प्रकृतिसे बंधा रहना और यह आध्या-
त्मिक प्रगतिमें बाधक होता है।”
एक और जगह कहा है, “इस योगमें व्यक्तिगत संबंधोंके बारेमें
यह नियम है कि सभी व्यक्तिगत संबंध साधक और भगवान्‌के एक-
भाव संबंधमें गायब हो जायें”।

(श्रीअरविंदके पत्र)

जैसे-जैसे लोग इकट्ठे होते गये आश्रमकी आवश्यकताएं भी
बढ़ती गयीं। यहां माताजीका एक उद्धरण देना अप्रासंगिक न
होगा: “हमारा सारा प्रयास इसी बातके लिये है कि हम अपने
मनुष्य जीवन और कार्यकलापको इस (उच्चतर) चेतनाके शासनमें
ला सकें — १९२६ में जब श्रीअरविंदने आश्रमका सारा भार मुझे
सौंपा तबसे यह एक जंगलके विकासके रूपमें बढ़ता जा रहा है।
सभी विभाग कृत्रिम योजना द्वारा नहीं बल्कि जीवित जाग्रत आव-
श्यकताके कारण बने हैं — यही निरंतर विकास और अनंत प्रगति-
का रहस्य है।” (मदर इंडिया)

तरह-तरहकी क्षमतावाले लोग आने लगे और उनकी क्षमताओंका उपयोग होने लगा। प्राणीमात्रके लिये भोजन पहली आवश्यकता है ही, तो आश्रममें भी भोजनालय, गोशाला, चावल, तरकारी, फल, फूल आदि पैदा करनेके लिये खेतों बगीचोंका सूत्रपात हुआ। कपड़े सीनेके लिये सिलाई विभाग कढ़ाई, बुनाई, रंगाई आदि शुरू हुई और दूसरे महायुद्धके परिणामस्वरूप माताजी और श्रीअरविदकी छत्र-छायामें आये हुए बच्चोंके लिये विद्यालय और खेलके मैदान बने।

पुरानी आदतें बड़ी मुश्किलसे जाती हैं। हमारे यहां योग साथ कृच्छ्र जीवनका विचार बहुत जोरोंसे बंधा हुआ है। आश्रममें हर प्रकारके खेल-कूद, तैराकी आदिका आरंभ देखकर कुछ लोग बिदक उठे, कहां योग और कहां यह सब। इस तरहकी आपत्ति उठानेवाले एक शिष्यको श्रीअरविद लिखते हैं:

“यह पुराने ढर्रका आश्रम नहीं है। यहां योगमें जीवनका समावेश होता है और एक बार हम जीवनको स्वीकार कर लेंगे तो हम हर ऐसे क्रिया-कलापको स्थान दे सकते हैं जो आत्माके कर्णोंका विरोधी न हो और जो जीवनके लिये उपयोगी हो। अतः यह पुराने ढर्रके आश्रम तभी तो बनने शुरू हुए जब ब्राह्मणोंने जीवनका बहिष्कार शुरू किया और संसारके साथ नाता पूरी तरह तोड़ लिया। तब बौद्ध धर्म सारे देशपर छा गया और आश्रम संघारामोंमें बदल गये। पुराने आश्रम ठीक ऐसे न थे। वहाँ शिक्षा-दीक्षा पानेवाले बालक और युवक जीवन-संबंधी बहुतेरी चीजोंका प्रशिक्षण पाते थे। पुरुषवस और उर्वशीके लड़केने एक ही आश्रममें ही घनुविद्या सीखी थी और वहीं इसमें निष्णात बन जाते थे। कर्ण शक्तिशाली हथियारोंका उपयोग सीखनेके लिये एक ही तपस्वी ब्राह्मणके पास ही गया था। अतः ऐसा कोई कारण नहीं है कि हमारे जैसे आश्रममें जहां जीवन और आध्यात्मको एक साथ

१९८१

जा रहा है, वहां खेल-कूदका बहिष्कार किया जाय।”
(श्रीअरविद अपने बारेमें)

योगशाला
आश्रममें शिक्षा, संस्कृति, आचार-व्यवहार, स्वभाव यानी हर
तमें भिन्न प्रकारके और भिन्न स्तरोंके लोग मौजूद हैं। जैसा
पहले कह आये हैं यह आश्रम माताजी और श्रीअरविदकी प्रयोग-
शाला है। इस विषयमें स्वयं श्रीअरविद कहते हैं :

“यह आवश्यक बलिक अनिवार्य है कि इस आश्रममें जो अति-
मानस योगकी प्रयोगशाला है, मानवजातिके नाना प्रकारके प्रति-
निधि हों क्योंकि रूपांतरकी समस्यामें अनुकूल और प्रतिकूल दोनों
कारके तत्त्वोंसे काम पड़ता है। सच पूछो तो एक ही आदमी-
में इन दोनों तरहके तत्त्वोंका मिश्रण होता है। अगर केवल
आध्यात्मिक और सुसंस्कृत लोग ही योग करने आयें, ऐसे लोग आयें
जिनमें प्राणिक कठिनाइयां ज्यादा न हों तो ऐसी अवस्थामें पार्थिव
प्रकृतिमें प्राणकी कठिनाइयोंका सामना करके उनपर विजय न
पानेके, कारण सारा प्रयास ही असफल रह जायगा, इसीलिये आश्रम-
में सभी ओरसे सभी स्तरोंके लोग आते हैं। इससे भिन्न हो ही
सकता।”

(श्रीअरविदके पत्र)

और आश्रममें आ कौन सकते हैं यह माताजीसे सुनिये :

“जीवनसे और लोगोंसे घृणा और विरक्तिके कारण योगके लिये
न आना चाहिये।
कठिनाइयोंसे भाग जानेके लिये यहां न आना चाहिये।
प्रेमकी मधुरता और संरक्षण पानेके लिये भी यहां न आना

चाहिये क्योंकि व्यक्ति उचित वृत्ति अपनाये तो भगवान्‌के प्रेम और
संरक्षणका आनन्द उसे हर जगह मिल सकता है।

जब तुम अपने-आपको पूर्णतया भगवान्‌की सेवामें दे देना चाहो
जब अपने-आपको पूर्णतया भगवान्‌के कार्यके लिये समर्पित करना
चाहो, बदलेमें कुछ मांगे बिना — अपने-आपको देने और सेवा
करनेकी संभावना अपवाद है — अपने-आपको देने और सेवा करने
के आनन्दके लिये देना चाहो तो तुम यहां आनेके लिये तैयार हो
और तुम द्वारको पूरी तरह खुला पाओगे ...”

आश्रममें काम

आश्रममें जो भी काम किया जाता है चाहे वह वेद-पाठ हो
या नृत्य-गान, भोजनालयमें झाड़ू लगाना हो या माताजी और श्री
अरविदकी पुस्तकोंका प्रकाशन, सबके पीछे एक ही भाव होता
है। स्वयं माताजीके शब्दोंमें “शरीरद्वारा किया गया काम
शरीरकी सर्वोत्तम प्रार्थना है।” काम करके हम अपने-आपको भग-
वान्‌के प्रति खोलते हैं ताकि वे हमारे अन्दर अपनी चेतना उभार
सकें। श्रीअरविद कहते हैं:

“आश्रमका काम मानव जाति या आश्रमके साधक कहानेवाले
उस (मानवजाति) के एक भागकी सेवाके लिये नहीं है। यह
काम भगवान्‌की सेवाके लिये, भगवान्‌के प्रति आंतरिक उद्घाटन-
के क्षेत्र, केवल भगवान्‌के प्रति समर्पणके लिये और अहंकार तथा
सामान्य प्राणिक गतिविधियोंके त्यागके लिये, चैत्य उत्थान, अना-
सक्ति, आज्ञाकारिता, सभी मानसिक, प्राणिक या सीमित व्यक्ति-
त्वके अन्य स्वाग्रहोंके त्यागके लिये है।”

(श्रीअरविदके पत्र)

तो आश्रमका काम मामूली बात नहीं है बल्कि एक महान्

अप्रैल १९८१

नौवाग्य है जो हर तरहकी प्रगतिमें सहायक होता है। माताजी कह करती थीं कि आश्रममें यदि ठीक तरह काम किया जाय तो उसमें ज्ञान, भक्ति, प्रेम, समर्पण आदि सभीका समावेश हो जाता है। आश्रममें काम करनेवालोंको पग-पगपर माताजी और श्रीअरविन्द-का पथ-प्रदर्शन मिलता रहता था और भौतिक रूपमें न सही, आज भी मिलता है।

भौतिक वस्तुएं

एक कार्यकर्ताके हाथसे बरतन बार-बार गिर जाया करते थे और वह यह मानता था कि इसका कारण यह है कि वह कहीं और किसी ऊंची चेतनामें रहता है। माताजीने उसे लिखा :

“तुम जिन भौतिक चीजोंका उपयोग करते हो उनकी परवाह न करना निश्चेतना और अज्ञानका लक्षण है।

यदि तुम किन्हीं भौतिक चीजोंकी भलीभांति देख-भाल न कर सको तो तुम्हें उनका उपयोग करनेका कोई अधिकार नहीं है।

तुम्हें उन चीजोंकी देखभाल इसलिये नहीं करनी चाहिये कि तुम जैसे बंधे हुए हो बल्कि इसलिये कि वे भागवत चेतनाके अंशको अभिव्यक्त करती हैं।”

इसी विषयमें श्रीअरविन्द कहते हैं :

“... मुश्किल यह है कि अधिकतर लोगोंको भौतिक चीजोंको बरतनेकी शिक्षा नहीं मिली है। (सबसे सरल, कठोर और काम-चलाऊ चीजोंको छोड़कर) उनकी रक्षा करनेकी, उनका पूरा उपयोग करने और उन्हें पूरा जीवन देनेकी वृत्ति नहीं होती। यह अंशतः अज्ञान और अनुभवके अभावके कारण और अंशतः लापरवाही, अपेक्षा, उग्रतापूर्ण और अशोभन व्यवहारके कारण होता है।

कइयोंमें यह भाव भी होता है कि चीजें जल्दी खराब हो जायें तो कोई हर्ज नहीं, उनके स्थानपर नयी आ जायेंगी। एक कार्यकर्ता तो यहांतक कह रहा था, “तुम क्यों चिन्ता करते हो, यह तुम्हारा पैसा तो नहीं है...” यह सब तमस् है और तमस्का अंत होता है शक्तियोंके विघटनमें, छितरावमें और भौतिक असफलतामें। और अंतमें परिणाम सभीपर आते हैं। सावधान और लापरवाह दोनोंपर। हमारा आदर्श सीमित नहीं, विशाल जीवन है परंतु यह हो सुव्यवस्थित, अपव्यय, तमस्, अव्यवस्थासे मुक्त....।

इन सब आदर्शोंको लेकर आज भी आश्रम श्रीअरविंद और श्री-माताजीके मार्गदर्शनमें आगे बढ़ रहा है।

श्रीअरविंदके पत्रोंके आधारपर:

कठिनाइयोंको जीतनेका सच्चा तरीका

योगकी कठिनाई

मैंने यह नहीं कहा कि अधिमानसतक पहुंचना असंभव है, मैंने केवल इतना ही कहा है कि यह कठिन है। कठिनाई कोई कारण नहीं है कि चीजें न की जायें।

भौतिक सत्ताके लिये उच्चतम सत्यतक पहुंचना आसान नहीं होता क्योंकि उसकी चेतना अज्ञानी वस्तु होती है जो जड़-भौतिक अवचेतनासे निकलती है और अपने मूल अन्धकारसे बहुत बंधी रहती है और वही उसके मार्गमें कठिनाई पैदा करता है—इसके साथ-ही-साथ उसकी चेतनाके अंदर अहंकार और कामनाकी मानसिक और प्राणिक कठिनाइयां भी होती हैं। योग अपने-आपमें

अंक १९८१

जान नहीं है; अगर आसान होता तो केवल थोड़े-से इने-गिने लोग नहीं बल्कि बहुत अधिक संख्यामें लोग उसका अभ्यास करते।

१३-११-१९३२

*

कठिनाइयां और गुरुकी कृपा

वह सब लौकिक योग है। गुरुका स्पर्श या उसकी कृपा कोई चीज खोल सकती है, लेकिन फिर भी हमेशा कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है। यह सच है कि अगर पूर्ण समर्पण हो जो चैत्य-की विशिष्टताका संकेत देता है तो ये कठिनाइयां बन्धन या रुकावट नहीं लगतीं बल्कि केवल सतही अपूर्णताएं प्रतीत होती हैं जिन्हें गुरुकी क्रिया दूर कर देगी।

२६-६-१९३६

*

कठिनाइयां और विजय

तुम्हें वह सब दूर फेंक देना चाहिये। ऐसे अवसाद तुम्हें उस भ्रमसे बन्द कर सकते हैं जो माताजी तुम्हें दे रही हैं। ऐसी मनो-वृत्तिका एकदम कोई कारण नहीं है। योगमें कठिनाईका अस्तित्व नहीं हुई बात है। अन्तिम विजय या भागवत कृपाकी सफलता-पर संदेह करनेका कोई कारण नहीं है।

४-२-१९३३

*

विजयसे प्राप्त बल

हां, ऐसा ही है। अपने ऊपर पायी हर विजयका मतलब है और विजय प्राप्त करनेके लिये नयी शक्ति पाना।

*

सकारात्मक वृत्ति

विकारोंको देखना चाहिये और उनका त्याग करना चाहिये लेकिन एकाग्रता सकारात्मक होनी चाहिये — जो तुम्हें होता है उदाहरणके लिये, इस नकारात्मक पहलूकी अपेक्षा नयी चेतनाके विकासपर एकाग्र होना चाहिये।

*

कठिनाइयोंको दूर करनेका नकारात्मक और सकारात्मक तरीका

नकारात्मकसे मेरा मतलब है कामना, गलत क्रियाओं और अहं को केवल दबा देना, सकारात्मकसे मेरा मतलब है उन भागोंपर अपने प्रकाश, शांति और पवित्रता उतारना। मैं यह नहीं कहता कि इन क्रियाओंका त्याग नहीं करना चाहिये — लेकिन सारी ऊर्जा केवल त्यागमें उपयोग नहीं करना चाहिये। उसे उच्च चेतनाद्वारा उनके सकारात्मक स्थानान्तरणके लिये भी उस दिशामें मोड़ना चाहिये। जितनी अधिक यह चेतना आयेगी त्याग उतना ही अधिक आसान होगा।

२१-११-१९३३

अंश १९८१

प्राणकी सफाईका सकारात्मक और नकारात्मक तरीका

अगर तुम शांति पा लो तो प्राणकी सफाई करना आसान हो जाता है। अगर तुम केवल सफाई-ही-सफाई करते रहो और कुछ मत करो तो तुम बहुत धीरे-धीरे आगे बढ़ोगे — क्योंकि प्राण बार-बार गन्दा हो जाता है और उसे सैंकड़ों बार साफ करना पड़ता है। शांति ऐसी चीज है जो अपने-आपमें स्वच्छ है, इस-लिये उसे पाना अपनी वस्तुको सुरक्षित रखनेका सकारात्मक तरीका है। केवल गन्दगीको ढूँढ़ना नकारात्मक तरीका है।

कठिनाइयोंपर विजय पानेके दो तरीके

निश्चय ही, सभी संभव सहायता दी जायगी। रही बात तरीकेकी तो हमेशा दो संभव तरीके होते हैं — एक है कठिनाई-पर उसीके क्षेत्रमें विजय पानेका, और दूसरा है आंतरिक उप-न्यायको तबतक विकसित करनेका जबतक वह इतनी मजबूत न बन जाये कि तुम जिन जड़ोंकी बातें कर रही हो वह एकदमसे उखड़ न जायें और तब तुम्हारा अन्तर एक सहज चैत्य परिवर्तनके साथ बाहर आ जायगा।

१९-३-१९३७

*

प्रकृतिको बदलनेके चार तरीके

केवल उच्चतर चेतनाकी अनुभूतियां पा लेनेसे प्रकृति नहीं बदलेगी। या तो उच्चतर चेतनाको संपूर्ण सत्तामें पूरे वेगके साथ उतरकर उसे बदलना होगा, या फिर उसे आंतरिक सत्ता, आंतरिक भौतिकतक पहुंचना होगा जिससे आंतरिक भौतिक अपने-आप-

को बाहरी भौतिकसे अलग अनुभव करे और उसपर स्वतंत्र रूपसे कार्य कर सके; या फिर चैत्यको आगे आकर प्रकृतिको बदलना होगा या आंतरिक इच्छाको जाग्रत होकर प्रकृतिको बदलनेके लिये विवश करना होगा। ये ही चार तरीके हैं जिनसे परिवर्तन लाया जा सकता है।

३०-९-१९३६

(‘लेटर्स आफ श्रीअरविंद’ चौथे भागसे)

— वंदना

चार प्रश्न

एकाग्रता और संकल्प-शक्तिको कैसे बढ़ाया जाय? कोई भी काम करनेके लिये इनकी बहुत आवश्यकता होती है।

एक नियमित, अध्यवसायी, कठोर, अविचल अभ्यासके द्वारा— मेरा अभिप्राय है एकाग्रता और संकल्प-शक्तिके अभ्यासद्वारा।

(७-४-१९६५)

क्या मानसिक उदासीनता और उत्सुकताका अभाव एक तरहकी मानसिक जड़ता है?

साधारणतः ये चीजें मानसिक जड़ताके कारण होती हैं, लेकिन कोई बहुत तीव्र साधनाके द्वारा शांत-स्थिरता और तटस्थता तथा परिणामतः पूर्ण समता प्राप्त कर सकता है जिसके आगे अच्छा-बुरा, प्रिय और अप्रिय बाकी नहीं रहते। लेकिन उस हालतमें, मान-

अप्रैल १९८१

तक क्रियाकी जगह बहुत ऊंचे प्रकारकी अंतर्भासिक क्रिया ले लेती है।

(२५-५-१९६६)

इस मानसिक आलस्य और जड़तासे कैसे निकला जाय ?

चाहकर, अध्यवसाय और आग्रहसे। हर रोज पढ़ने, व्यवस्था करने और विकासके मानसिक व्यायामद्वारा।

दिनके दौरान कभी यह किया जाय और कभी एकाग्रतामें मानसिक नीरवताका अभ्यास, बारी-बारीसे बदलते रहें।

(१-६-१९६६)

प्रायः, मैं श्रीअरविंदकी कृतियां पढ़कर या उनके शब्द सुनकर आश्चर्यचकित रह जाता हूं : यह शाश्वत सत्य, यह अभिव्यक्तिका सौंदर्य लोगोंकी आंखोंसे कैसे बच निकलता है ? यह सचमुच आश्चर्यकी बात है कि अभीतक उन्हें कम-से-कम एक परम स्रष्टा, शुद्ध कलाकार, उत्कृष्ट कविके रूपमें मान्यता नहीं मिली ! तो मैं अपने-आपसे कहता हूं कि मेरे निर्णय, मेरे मूल्यांकन श्रीअरविंदके प्रति भक्तिमें रंगे हुए हैं -- और हर एक भक्त नहीं है। लेकिन मुझे नहीं लगता कि यह ठीक है। तो फिर औरोंके हृदय उनके शब्दोंसे मंत्रमुग्ध क्यों नहीं होते ?

श्रीअरविंदको कौन समझ सकता है ? वे समस्त विश्वके जैसे विशाल हैं और उनकी शिक्षा अनंत है...

उनके जरा नजदीक आनेका एकमात्र उपाय है उन्हें पूरी सचाईके साथ प्यार करना और अपने-आपको बिना संकोचके उनके कार्यके प्रति समर्पित कर देना। इस तरह, हर एक अपना अच्छे-से-बच्छा प्रयास करता है और श्रीअरविंदने संसारके जिस रूपांतरकी

भविष्यवाणी की है उसके लिये अपनी ओरसे भरसक सहयोग देता है।

अग्निशिखा

(२-१२-१९६४)

कला

(एक युवकके नाम पत्र)

तुम चित्रकला सीख सकते हो पर इस शर्तपर कि तुम अध्ययन और मेहनत करो। चित्र बनाना कविताकी तरह नहीं है जिसमें तुम आंतरिक क्षमता और बढ़ती हुई प्रेरणाद्वारा आगे बढ़ सकते हो, सिर्फ छन्दका थोड़ा-सा परिचय जरूरी होता है। चित्रकला में तुम्हें सावधानीके साथ बहुत-सी चीजें सीखनी पड़ती हैं और वह केवल सिद्धांतमें नहीं, किसी अच्छे अध्यापकके साथ, अभ्यास-द्वारा, दृढ़ रेखाएं, ठीक आंकना, दृष्टि, रंगोंको मिलाना, उचित रंगोंका प्रयोग, यह जानना कि कौनसे रंग साथ जा सकते हैं आदि। यह सब चित्रकलाकी तकनीक कहाती हैं। अगर तुम यह सब न सीखो तो तुम, चाहे जितनी प्रेरणा क्यों न हो, अच्छे चित्रकार नहीं बन सकते। तुम अच्छी प्रगति कर रहे हो लेकिन तुम्हें सावधानीसे ये सब चीजें सीखनी होंगी और व्यौरेके बारेमें ज्यादा मेहनत करनी होगी।

—श्रीअरविंद

*

तुम्हारे अंदर चित्रकारी और संगीतकी क्षमता है और अगर तुम परिश्रम करो तो ये विकसित होंगी। अच्छा, यह है कि ये चीजें

अंश १९८१

माताजीके यंत्र बनकर उन्हींके लिये करो। ख्याति या औरोंकी प्रशंसा या निजी गर्वको प्रेरक शक्ति न बनने दो क्योंकि तकलीफ बर्हासे आती है। समर्पणके रूपमें किया गया सभी काम बहुत सहा-जना देता है, तकलीफ नहीं।

—श्रीअरविंद

*

मुझे तुम्हारी अभिव्यक्ति अतिनाटकीय नहीं मालूम होती और समा करनेके लिये कुछ है ही नहीं। मैं जानती हूँ कि ऊर्जाकी कमीके कारण तुम चित्र नहीं बना पाते। मैं तुम्हें जितनी ऊर्जा चाहिये उतनी दे सकती हूँ, तुम्हें केवल खुलना और ग्रहण करना चाहिये और तुम देखोगे कि इसका स्रोत अक्षय है। शान्तिके लिये और उन सब चीजोंके लिये भी यही बात है जिनके लिये तुम अभीप्सा कर सकते हो।

—माताजी

*

मुझे कागजकी जरूरत नहीं क्योंकि मैं चित्रकारी नहीं सीखना चाहता। मैं अपनी चित्रकारीकी चीजें भंडारमें दे दूंगा। मेरे लिये पैसा या समय नष्ट करना बेकार है।

इस तरहकी प्राणिक गतिविधियोंके आगे झुकना न चाहिये, इनमें कोई सत्यका आधार नहीं है। इन्हें त्याग दो और अपनी सच्ची आत्माको वापिस ले आओ।

—श्रीअरविंद

*

छोड़ देना बहुत बड़ी भूल है। कोई काम कठिन है यह उसे

छोड़ देनेका कोई कारण नहीं है। क्षमता है, तुम्हें काम करना और उसे विकसित करना चाहिये। माताजी तुम्हारा रंगका ड्रवा लौटा रही हैं और आशा करती हैं कि तुम उसका उपयोग करोगे।

—श्रीअरवि

*

अपने प्राणसे कह दो कि यह अध्यवसाय और आत्म-संयमकी बात है। प्रतिभा है तो वह निश्चय ही बाहर आयेगी और जब तुम मेहनत करते हो तो आती है।

प्राणसे कह दो कि शिकायत करना और विद्रोह करना, वह जो चीज चाहता है उसके मिलनेमें बाधा देता है। चीजें तभी हो जा सकती हैं जब वह शान्त-स्थिर और विश्वस्त हो।

—श्रीअरवि

*

हो क्या रहा है? तुम्हें पत्र नहीं मिला? माताजीने आज सबेरे इस उत्तरके साथ भेजा था कि 'मकान' अच्छा है और वाकी चित्र भी सब मिलाकर खराब नहीं हैं, तुम्हारे अंदर प्रतिभा है और उसमें अच्छी प्रगति हुई है, हां, कभी-कभी तुम व्योरोंका ख्याल किये बिना बहुत सरसरी तौरपर चित्र बनाते हो, इसीलिये मैंने 'सब मिलाकर' कहा है। अगर तुम हमेशा व्योरोंके बारेमें सावधान रहो और अपने चित्रोंपर समय लगाओ तो तुम बहुत अच्छा करोगे। लेकिन याद रखो, कलाके विकासमें समय लगता है, विशेषकर चित्रकारी जैसी कलाओंमें जहां केवल मनकी जरूरत नहीं होती बल्कि आंख और हाथको भी अपना काम करनेके लिये प्रशिक्षण देना पड़ता है। कुछ वर्षोंके प्रयाससे पहले कोई भी पूर्ण चित्रकार नहीं बना।

—श्रीअरवि

*

अप्रैल १९८१

मेरी समझमें नहीं आता कि तुम उससे क्यों नहीं सीख सकते।
 वह अच्छा कलाकार है, और लोग उससे सीख रहे हैं। चित्रकलामें
 केवल प्रेरणा काफी नहीं है — तुम्हें तकनीक विकसित करनी होगी
 और अच्छी तकनीक विकसित करनेके लिये पहले सीखना होगा।
 —श्रीअरविंद

काव्यकी प्रेरणा तथा कुछ अन्य पत्र

(एक युवकके नाम पत्र)

यह मनकी स्वाभाविक क्रियामें एक बाधा है जो काफी सामान्य
 है। जो लोग सृजनात्मक काम करते हैं, लिखना, चित्र बनाना
 आदि — उन्हें प्रायः इसी तरह कुछ समयके लिये रोक दिया जाता है।
 यह बाधाका अनुभव नहीं होता, केवल परिणाम दिखायी देता है
 और उसे वे 'प्रेरणाकी असफलता' कहते हैं।

—श्रीअरविंद

*

इन दोनों प्रयासोंमें इतना-सा लिखनेके बाद प्रेरणा बंद हो गयी।
 उसे लगता है कि मैं और प्रयास करूं तो उन्हें बिगाड़ दूंगा। मैं
 सोसाह हो रहा हूं।

इसका अर्थ कुछ भी नहीं है। शुरूमें प्रेरणा हमेशा ऐसी ही
 होती है। सबसे अच्छे कवियोंमें भी बहुत स्थायी नहीं रहती।

— श्रीअरविंद

*

अगर मानसिक कार्यके लिये कोई प्रेरणा नहीं आती तो इसका अर्थ है कहींपर तमस्। यह जरूरी नहीं है कि वह हमेशा काव्यके क्षेत्रमें ही हो।

—श्रीअरवि

*

दो तीन दिनसे प्रेरणामें कुछ रुकावट आ रही है। थोड़ी-थोड़ी प्रेरणा आती है, मैं लिखना शुरू करता हूं और थोड़ी-देरके बाद भाषा और संवेदन रुक जाते हैं और हृदयमें कुछ बुरा लगता है। इसके कारण मैं लिख नहीं पाता।

यह तमस है और प्राणिक भौतिकके किसी भागमें प्रतिरोध है जो अवसाद को लाकर क्रियाशीलताको बंद कर देना चाहता है।

—श्रीअरवि

*

उस दिन जब मैं एक कविता लिख रहा था तो मुझे लगा कि कोई चीज बाहर आना चाहती है। मैंने बहुत कोशिश की लेकिन व्यर्थ। ऐसा क्यों हुआ?

प्रेरणा अभिव्यक्त होना चाहती थी लेकिन तुम्हारे मनको अभी तक भाषापर इतना अधिकार नहीं है कि उसे लिपिबद्ध कर सके।

—श्रीअरवि

*

कौन-सा संगीत ज्यादा अच्छा है भारतीय या यूरोपीय?

हर एक अपने ढंगसे अच्छा है।

—श्रीअरवि

*

अंक १९८१

मानव प्राणकी यह बहुत बड़ी भूल है कि वह सराहनाके लिये चाहता है और वह न मिले तो उदास हो जाता है और वह मान लेता है कि इसका यही अर्थ है कि उसमें क्षमता नहीं है। इस जगत्में आदमी जो कुछ करता है अज्ञान और अपूर्णता-से शुरू करता है, उसे अपनी भूलोंका पता लगाना होता है और निश्चय होता है। तुम्हें भूलें करनी पड़ती हैं ताकि उन्हें ठीक करके तुम काम करनेका ठीक तरीका पा सको। दुनियामें कभी कोई इस नियमसे नहीं बच सका। इसलिये तुम्हें औरोंसे हमेशा सराहनाकी आशा नहीं करनी चाहिये...। तुम जितनी अधिक आलोचना सह सको और अपनी भूलें देख सको उतनी ही ज्यादा अपनी पूर्ण क्षमता पानेकी संभावना होती है। विशेष रूपसे जब तुम छोटे हो, अभी प्रौढ़ता नहीं आयी है तो तुमसे पूर्ण कार्यकी आशा नहीं की जा सकती। जो कवियों और चित्रकारोंका किशोरावस्थाका कार्य कहलाता है, जिसे वे अपनी छोटी उम्रमें करते हैं वह हमेशा अपूर्ण होता है। उसमें संभावनाएं होती हैं, वह भविष्यके लिये प्रतिज्ञा लिये होता है लेकिन उसकी सच्ची पूर्णता और पूरी शक्ति तो बादमें ही आती है। वे स्वयं इस बातको भली-भांति जानते हैं फिर भी लिखते या चित्र बनाते जाते हैं क्योंकि उन्हें पता होता है कि इस तरह उनकी क्षमताका विकास होगा।

रही बात औरोंके साथ तुलनाकी, तो यह तुम्हें न करनी चाहिये। हर एकको अपना पाठ पढ़ना है, अपना काम करना है। उसे उसीमें लगे रहना चाहिये, अपनी तुलनामें औरोंकी बढ़िया या बुरिया प्रगतिके बारेमें नहीं। अगर आज वह पीछे है तो बादमें उसके अंदर पूर्ण क्षमता खिल सकती है। उसे भविष्यकी शक्तियोंकी पूर्णताके लिये श्रम करना चाहिये। तुम अभी छोटे हो और अभी तुम्हें सब कुछ सीखना है। तुम्हारी क्षमताएं अभी कलीके रूपमें हैं, उनके पूरी तरह खिलनेके लिये तुम्हें मेहनत और प्रतीक्षा

करनी होगी। और अगर किसी सन्तोषजनक और पूर्ण चीज तक पहुँचनेमें बहुत दिन या महीने लग जायें तो तुम्हें चिन्ता न करनी चाहिये। वह ठीक समयपर आयगी और अभी तुम जो काम कर रहे हो, वह हमेशा उसकी ओर एक कदम आगे होता है।

लेकिन आलोचनाका स्वागत करना सीखो, त्रुटियाँ दिखाये जाने का स्वागत करो। तुम जितना अधिक यह करोगे उतनी ही तेजी से आगे बढ़ोगे।

*

आप मुझे क्या बनाना चाहेंगी? कलाकार, संगीतकार या साधक?

साधक, और साधनामें सभी चीजोंका समावेश हो जाता है।

—श्रीअरवि

चार युग

द्वापर कुरु-वंशकी महत्ताका युग था। कुरु बहुत व्यावहारिक, युद्धप्रिय, कर्मकाण्डी विधिवेत्ताओंकी जाति थे। उनमें पूर्वी जातियों, उदाहरणके लिये कोशल, विदेह, चेदि, जैसा नैतिक उत्साह या चिन्तनप्रधान स्वभाव न था। पश्चिम भारत हमेशा पूर्वीकी अपेक्षा अधिक व्यावहारिक, वीरताप्रधान और व्यापारी रहा है, जब कि पूर्व कल्पनाप्रधान और आदर्शवादी तथा दक्षिण पाण्डित्यप्रधान, तार्किक और रहस्यवादी।

हिन्दू परंपराके अनुसार द्वापरमें ही हर चीजके लिये विधिविधान बनाये गये और कर्मकाण्ड निश्चित किये गये। सत्य युग-

१९८१

भगवान् विष्णु मानव समाजमें यज्ञके रूपमें प्रकट होते हैं और मनुष्योंके हृदयपर राज्य करते हैं। उस समय बाहरी भजन-पूजन, मन्त्रकाण्ड आदिकी जरूरत नहीं होती, विशद कानूनों और सर-बारोंकी, वर्णों, मत-मतान्तरोंकी आवश्यकता नहीं होती। मनुष्य अपनी शुद्ध प्रकृति और अपने पूर्ण ज्ञानके आधारपर सन्मार्गपर ही चलते हैं, लोगोंके हृदयमें भगवान्का राज्य होता है और शाश्वत रह भी वहीं विराजमान रहता है।

त्रेतामें सत्ययुगकी पूर्ण व्यवस्था क्षीण होने लगती है। भगवान् विष्णु चक्रवर्ती राजा बनकर योद्धा और शासकके रूपमें आते हैं, राम, परशुराम और कार्तवीर्यका रूप लेकर, वेदोंको संहिताका रूप लेकर, तलवार और कानूनके द्वारा शासन करते हैं लेकिन अभी तक, कुछ सीमाओंमें रहते हुए काफी स्वाधीनता और लचीलापन बना रहता है और मनुष्य अपनी प्रकृतिकी स्वस्थ प्रेरणाओंके अनुसार चलते हैं लेकिन सत्यसे नीचे उतरनेके कारण थोड़ी-सी अशुद्धि आती जाती है।

द्वापरमें विचारों और भावोंका स्थान बाहरी रूप और विधि-विधान ले लेते हैं और उन्हींके द्वारा धर्म, नीति और समाजका चालन होता है। विष्णु, महान् संहितावाद और सुव्यवस्था देनेवाले व्यासका रूप धारण करते हैं।

द्वापरके अंतमें आये श्रीकृष्ण। उस समयतक केवल बाहरी जीवन ही नहीं, मनुष्योंके अन्दर भी विचारका स्थान बाहरी रूढ़िने और भावका स्थान नियमने ले लिया था। लेकिन साथ-ही-साथ ज़रूरी हवाएं भी चलनी-शुरू हो गयी थीं। स्वयं धृतराष्ट्र चीजोंके आन्तरिक रहस्य जाननेके लिये उत्सुक थे। घोरके जैसे ऋषि भोजूद थे जिनके पास श्रीकृष्ण शिक्षा प्राप्त करनेके लिये गये थे। श्रीकृष्णमें एक बौद्धिक शक्ति थी जिसने सभी बिखरे धागोंको एकट्ठा किया और द्वापरके रूढ़िवादको भंग करके कलियुगके लिये रास्ता बनाया। गीतामें वे त्रिगुणके पार जानेकी बात करते हैं,

शुद्ध रूपसे नैतिक विधि-विधानके अनुसार चलनेवालोंकी निम्ना करते हैं और एक आंतरिक और आध्यात्मिक आचार-व्यवहारका रास्ता दिखाते हैं। लेकिन सभी नया मार्ग बनानेवालोंकी तरह श्रीकृष्णको भी विरोध सहना पड़ा। भूरिश्रवाने तो उन्हें कुपित दिखानेवाला और आचार भ्रष्ट करनेवाला बतलाया।

अब आयी कलिकी वारी। उसका काम था हर चीजपर संदेह करना। हर बातपर क्यों, कैसे आदि प्रश्न करना और सभी दीवारोंको तोड़ना। शुद्धि और अशुद्धिकी शक्तियोंमें जोरदार संघर्ष पैदा करना ताकि एक नया सामंजस्यपूर्ण, ज्ञानमय सत्ययुग शुरू हो सके।

(आर्काइव्स एंड रिसर्च दिसंबर १९७९ में छपे एक लेखके आधारपर)

सोसायटी समाचार

आश्रममें २१ फरवरीको माताजीका जन्म दिन मनाया गया। तड़केसे ही आश्रमवासियों और दर्शनार्थियोंकी पंक्ति माताजीके कमरेका दर्शन पानेके लिये लगी हुई थी। १० से १०.३० तक समाधिके चारों ओर ध्यान हुआ। शामको बैंडके साथ मार्च-पास्ट और अन्तमें ध्यान हुआ। अब माताजीके कमरेके दर्शन १७ नवंबरको हो सकेंगे।

उस दिन आकाशवाणी पांडिचेरीने नवजातजीका एक भाषण प्रसारित किया जिसका शीर्षक था “खिलता हुआ पुष्प — अंत-रात्मा।” आश्रमके मैनेजिंग ट्रस्टी श्री कुनुमाने आन्ध्र भवनमें तेलुगु पत्रिका ‘अर्क’ के रजत जयन्ती अंकका ग्रंथविमोचन किया।

डा० माहेश्वरीने सोसायटी बीच ऑफिसमें स्वाध्याय शिविरका (शेष आवरण ३ पर)

कर्ममें तुम्हारा आदर्श होना चाहिये पूर्णता, उससे कम कुछ भी
हीं। तब निश्चय ही तुम भगवान्‌के सच्चे यंत्र बन जाओगे।

— श्रीमाताजी



Space donated by

KOOVERJI DEVSHI & CO., PVT. LTD.

FIREX LEADS TO SAFETY
SAFETY LEADS TO PROSPERITY

जीवनका एक उद्देश्य होता है और वही सच्चा और स्थायी
उद्देश्य है — भगवान् । उन्हींकी ओर मुड़ो और सब झाली-झुल
बला जायगा ।



बादर, शाल, दोशाले थोक खरीदनेके लिये पत्रव्यवहार करें:

यूनिक स्टोर्स

घास मंडी; लुधियाना

द्वारमास : २५४४७

किया जिसमें श्रीअरविंदकी पुस्तक 'दि मदर' और 'माताजीके
 कालप'का अध्ययन किया गया। सोसायटीके हिन्दी प्रकाशनों
 'कमल' और मातृवाणी खंड ११ (पथपर) को भारत सर-
 वरसे मुद्रणसंबंधी पुरस्कार मिले हैं। माताजीविषयक डा० श्रीनिवास
 पंथरकी अंगरेजी पुस्तकको अकादमी पुरस्कार मिला है।
 श्रीअरविंदाश्रम दिल्ली शाखाने १२ से २२ फरवरीतक अपनी
 जयन्ती मनायी। कई प्रदर्शनियां हुईं, सेमिनार हुए और एक
 प्रकाशित की गयी।

केंद्रोंके समाचार

शिलांग (मेघालय) के श्रीअरविंद भवनमें पहली जनवरीसे शारी-
 क शिक्षण केंद्र शुरू किया गया है। २६ जनवरीको श्रीअरविंद
 कालिका आरंभ हुआ जिसमें लगभग एक हजार पुस्तकें हैं। २१
 जनवरीको ललित कला विभागका बीजारोपण हुआ, २४ अप्रैलसे
 शक-भाजी वगीचोंके बारेमें काम शुरू होनेवाला है। भवन-
 पास कई ध्वन्यांकित फीते हैं जिनका ध्यानके दिन उपयोग किया
 जाता है।

फूलवती (ओड़िसा) में १९ जनवरीको श्रीअरविंद-विद्यार्थी संघ-
 अपना तीसरा वार्षिकोत्सव मनाया।

राजकोट शाखामें श्री अश्विन भाई कापड़ियाने ७ से १३ फर-
 वरीतक सावित्रीकी अध्ययन-कक्षा चलायी।

२१ फरवरी १९८१ को विलासपुर केंद्रद्वारा एक निःशुल्क
 चिकित्सालयका आरंभ हुआ। यहां विगत आठ माससे एक
 मेनेटोथेरेपी (चुम्बकीय चिकित्सा) केंद्र चल रहा है।

शेषणां

शिक्षा-शिविर २६ मईसे ६ जूनतक अध्यापकों, शिक्षकों, अभि-
 वादकों आदिके लिये शिक्षा-शिविर होगा जिसमें माताजी और

श्रीअरविंदके बताये हुए आदर्शोंके अनुसार शिक्षाके बारेमें विचार और अध्ययन होगा। उसमें भाग लेनेवाले अध्यापकोंको व्यक्तिगत रूपसे रेलवे कंसेशन मिल सकता है जिन्हें रस हो वे ५ मई से पहले श्रीअश्विन महादेविया, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२ को पत्र लिखें।

माताजीकी अंग्रेजी पुस्तकोंका पूरा सैट तैयार हो गया है और पहली मईतक रियायती दाम ५०० में मिल सकेगा, जिन्हें रस हो वे तुरंत 'शब्द', श्रीअरविंदाश्रम, पांडिचेरी-६०५००२ को लिखें।

श्रीअरविंद ऐक्शनके पास माताजी और श्रीअरविंदकी कुछ छोटी-छोटी पुस्तिकाएं अंग्रेजी और भारतीय भाषाओंमें निःशुल्क वितरणके लिये उपलब्ध हैं। जिन केंद्रों और शाखाओंको रस हो वे श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२ को लिखें।

माताजीकी पुस्तिका, आदर्श बालक तेरह भारतीय और छह यूरोपीय भाषाओंमें उपलब्ध है। इसकी लगभग आठ लाख प्रतियां बांटी जा चुकी हैं। वितरणके लिये एक हजार प्रतियां तीन सौ रुपयेमें मिल सकती हैं। केशव जी, श्रीअरविंद आश्रम, पांडिचेरीसे पत्र-व्यवहार करें।

श्रीअरविंद सोसायटी पांडिचेरीके नारी-आयोगने २६ से २९ अप्रैलतक "आध्यात्मभावापन्न समाज"के बारेमें अध्ययन-शिविरकी व्यवस्था की है।

शिविरमें स्त्री, पुरुष सभी भाग ले सकते हैं। विस्तृत जानकारीके लिये श्रीमती पूरवी पांडेय, नारी आयोग, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२ से पत्र-व्यवहार करें।

इसमें भाग लेनेवालोंको रेलवे कंसेशन मिल सकता है। कंसेशनके बारेमें श्रीमती सत्य प्रकाश, सचिव श्रीअरविंद सोसायटी दिल्ली शाखा, अर्धचिनी, नई दिल्ली ११००१७ से पत्र-व्यवहार करें।



उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जाग्रहि

अखिल भारतीय पत्रिका

अग्निशिखा

श्रीअरविंद सोसायटीकी मासिक पत्रिका

वर्ष ११, अंक ११, पूर्णक १३१

विषय-सूची

संपादकीय : मानव जातिका भविष्य

जागरूकता

श्रीअरविन्दके साथ बातचीत

छोटे भाईके नाम पत्र

आर्य समाज और राजनीति

मार्गसे हटना

आश्रमका विद्यालय

सोसायटी समाचार

श्रीमातृवाणीसे

श्रीअरविन्द

श्रीअरविन्द

श्रीमातृवाणीसे

अगर आपको यह पत्रिका पसंद आये तो कम-से-कम दो
ग्राहक बनाकर इसकी सहायता कीजिये।

अग्निशिखा वार्षिक : ८.००

पुरोधा " १०.००

आजीवन १२५.००

" १७५.००

पत्र, चेक ड्राफ्ट, आदि भेजनेका पता :

संपादक अग्निशिखा, श्रीअरविन्द सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००१

संपादक : रवींद्र

प्रकाशक : श्रीअरविन्द सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००१

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-६०५००१

संपादकीय

मानवजातिका भविष्य

एक मित्र लिखते हैं कि माताजी और श्रीअरविन्दने भारतकी एकता और मानवजातिका एकतापर इतना अधिक जोर दिया है। साधारण दृष्टिसे भी लगता है कि अगर एकता नहीं आयेगी तो विनाश अवश्यभावी है। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तरोंपर इस दिशामें कितने प्रयास किये जा चुके हैं और किये जा रहे हैं परंतु सबका परिणाम — कुछ भी नहीं या कुछ भी नहींके बराबर। तो क्या श्रीअरविन्दने हमारे आगे जो आदर्श रखा है वह आकाश कुसुम ही बन जाएगा। क्या हम लोग उनके इस आदर्शको मूर्त रूप देनेके लिये कुछ कर सकते हैं?

हमारे मित्र बहुत सच्चे देशप्रेमी और आदर्शवादी हैं और उनका उनसे उनके हृदयसे निकली हुई आह है।

हम उनकी बातोंका उत्तर अपने शब्दोंमें न देकर श्रीमाताजीके शब्दोंमें देते हैं। वे कहती हैं, “मानवजातिका एकता मूलमें स्थित है। लेकिन बाहरी एकता मनुष्यकी सद्भावना और उसकी साक्षरता निर्भर है।”

हमारे मित्रकी तरह ही किसी और परेशान व्यक्तिको सांतवना देते हुए माताजी कहती हैं, “यह सच है कि हम बहुत कठिन समयमेंसे गुजर रहे हैं, (यहां हमसे मेरा मतलब है सारा संसार) लेकिन जो खतरा बने रहेंगे वे पहलेसे बहुत अधिक मजबूत होकर निकलेंगे।” तो हमसे बस यही मांग की जाती है कि हम सच्चे बनें, निष्कपट बनें और लुढ़कना लोटा न बनें। माताजीने हमें विश्वास दिलाया कि सारी उथल-पुथलके बावजूद सत्यकी विजय होगी।

और हमें भव-सागरकी लहरोंमें इधर-से-उधर फँके जानेके लिये

नहीं छोड़ दिया गया है। माताजी कहती हैं कि निश्चित रूपसे ऐसे युगमें नहीं हैं जब मनुष्योंको अपने-आप कराहनेके लिये युद्ध छोड़ दिया गया हो।

भगवान्ने जगत्को प्रकाश देनेके लिये अपनी चेतना भेजी जो भी उससे लाभ उठा सकते हैं अवश्य उठायें।

और उज्ज्वल भविष्यतक पहुंचनेके लिये हम कर क्या सकते हैं फिर माताजीसे ही सुनिये :

“अगर तुम धरतीपर शांति चाहते हो तो पहले अपने हृदय में शांति स्थापित करो। अगर तुम संसारमें एकता चाहते हो तो अपनी सत्ताके भिन्न-भिन्न भागोंमें एकता स्थापित करो।”

एक और जगह माताजी कहती हैं, “मैं आग्रहके साथ इस तथ्य को जोर देती हूं कि अपने अंदर चेतनाकी एकता पानेका प्रयास करो। परिणामस्वरूप अपने कर्मका रूपांतर भाषणों और लेखोंसे अनन्त लाभ अधिक प्रभावकारी है।”

हमें आदत है औरोंकी आंखका तिल देखनेकी, लेकिन अपनी आंखोंका शहतीर नहीं देख पाते। दुर्योधनकी तरह हम सारी दुनियाके दुर्गमों को बुराई देखते हैं और पूछते हैं इसका इलाज क्या है। माताजी का उत्तर देती हैं, “जब तुम अपने अंदरसे उन सब चीजोंको निकालो बाहर करोगे जो संसारमें गलत हैं तब संसार गलत न रह जायगा।”

जिनकी आंखें अंदर देख सकती हैं उनका कहना है कि अंदर से ही सब कुछ तेजीसे अच्छा रूप लेती जा रही है लेकिन बाहर तो यही लगता है कि सारे नरक इस धरतीपर एक साथ फट पड़े हैं। किसीने माताजीसे पूछा, ऐसी स्थितिमें हम कहां खड़े हैं? माताजीका सुन्दर संक्षिप्त, सारगर्भित उत्तर था, “एक सुन्दर उपलब्धि के सामने।”

इस प्रकारके आश्वासन पाकर चिंता, दुःख, अवसाद भाग तो जाते हैं परंतु फिरसे लौट आनेके लिये, हम यह तो मान लेते हैं कि मानव का भविष्य उज्ज्वल है, उच्चतम चेतना धरतीपर प्रकट होनेके लिये पर तोल रही है लेकिन यह सब होगा कब? माताजीसे यही

मिनिसिप
न १९८१

बुझा गया तो उन्होंने कहा, "प्रतीक्षा करो और आंखें बिछाये रहो।
रिपाम निश्चित है — लेकिन उसका उपाय और समय निश्चित
होता है।"
अंधकारके परदेको चीरकर ज्योति आ रही है।
माताजी कहती हैं, "जगत्पर एक नये प्रकाशकी पौ फट रही है।
आओ, और एक होकर उसे स्वीकार करो, उसका स्वागत करो।"

जागरूकता

जागरूकताका मतलब है जाग्रत् रहना, सावधान रहना, सच्चा
रहना। जब तुम साधना करना चाहो तो जीवनके हर क्षण तुम्हें
सुनाव करना होता है कि प्रगतिके मार्गपर पांव रखो या सो जाओ
अपनी जगह पीछे सरक जाओ और अपने-आपसे कहो : "नहीं, अभी नहीं,
री दुनियादमें" और यह कहते हुए रास्तेपर बैठ जाओ।
जागरूक होनेका मतलब इतना ही नहीं है कि तुम नीचेकी ओर न
गैको निरुत्साहको। सबसे बढ़कर जरूरी यह है कि तुम सदा सावधान और
ह जायगा तब ही कि प्रगतिका कोई अवसर, दुर्बलताओंपर विजय पानेका,
अंदर के अशोभनका प्रतिरोध करनेका कोई अवसर हाथसे न निकल जाय।
ही लगता है कुछ सीखनेका, कोई भूल ठीक करनेका, किसी चीजपर प्रभुत्व
कसीने माननेका कोई मौका नहीं छोड़ना चाहिये। अगर तुम जागरूक हो
जीका मुद्दे तुम अपने जीवनकी परिस्थितियोंको, प्रत्येक क्रियाको, प्रत्येक
गामने।" प्रतिको लक्ष्यके निकट पहुंचनेका अवसर बना सकते हो।

आधुनिक कालका जड़वाद

बुद्धके कालमें आध्यात्मिक जीवन सुख, आनन्दकी चीज, प्रसन्नताका

अवसर होता था जो तुम्हें समस्त कठिनाइयोंसे, जगत्के सभी दुःखोंसे, चिंताओंसे मुक्त कर देता था। तुम्हें सुखी और संतुष्ट बनाता था।

आधुनिक जड़वादने आध्यात्मिक प्रयासको कठोर संघर्षमें, त्याग और बलिदानमें, जीवनके तथाकथित सुखोंको कष्टकर त्यागमें बदल दिया है।

आजकी जड़वादी मानव सभ्यताका परिणाम है ऐकांतिक भौतिक जगत्पर जोर, भौतिक सुखों, भौतिक हर्ष, भौतिक अविकार पर बहुत अधिक जोर। यह चीज पुराने जमानेमें असंभव थी इसके विपरीत सभी भौतिक चिंताओंसे मुक्ति, आध्यात्मिक जीवनके लिये समर्पण सुखके उत्स थे।

तुम सांझसे सवेरेतक और सवेरेसे सांझतक अपनी भौतिक तुष्टि, भौतिक सुख, भौतिक संवेदन, भौतिक तल्लीनतामें नहीं लगे रहते हो इसका मतलब यह है कि तुम्हारे अंदर विलक्षण आत्मा है।

परम शुद्धि

तुम अपने दोषोंसे हतोत्साह न हो जाओ इसके लिये धम्मपद तुम्हें बतलाता है कि पवित्र कमल पंकमेंसे उत्पन्न होता है यानी कौन भी चीज इतनी सड़ी या गयी बीती नहीं है कि शुद्धतम उपलब्धिमें जन्म न दे सके।

तुम्हारा भूतकाल चाहे जैसा क्यों न हो, तुमने चाहे कैसे भी अराध क्यो न किये हों, तुम चाहे कितने भी अज्ञानमें क्यों न रह चुके हो, फिर भी तुम्हारे अंदर परम शुद्धि होती है जो अपने-आपको अद्भुत उपलब्धिमें बदल सकती है।

मुख्य बात है उसके बारेमें सोचना, उसपर एकाग्र होना और कठिनाइयों, बाधाओं, और रुकावटोंके साथ व्यस्त न रहना।

तुम अपवादिक रूपसे उसीपर एकाग्र होओ जो तुम बनना चाहते हो जो तुम नहीं होना चाहते उसे जहांतक हो सके पूरी तरह भुला दो।

बूढ़े और जवान

एक बूढ़ापा है जो चढ़ते हुए वर्षोंसे बहुत ज्यादा वास्तविक और ज्यादा खतरनाक है, वह है वृद्धि और प्रगति करनेमें असमर्थता। हमें बूढ़े हैं जो जवान हैं और ऐसे जवान हैं जो बूढ़े हैं। अगर हमारे अंदर प्रगतिके लिये आग है, अगर तुम सब कुछ पीछे छोड़ने-लिये तैयार हो ताकि तेजीसे आगे बढ़ सको, अगर तुम हमेशा नयी प्रगतिके लिये खुले रहो, नये सुधारके लिये तैयार रहो तो तुम शाश्वत हो। अगर जो कुछ पा चुके हो उससे संतुष्ट होकर तुम बैठ जाओ, अगर तुम्हें लगता है कि तुम अपने लक्ष्यतक पहुँच चुके हो, तुम्हारे करनेके लिये कुछ भी बाकी नहीं है, वस अपनी मेहनत-फल भोगना बाकी है तो वस समझ लो कि तुम आधे-से ज्यादा मरे हो। यह जर्जरता और मृत्यु है।

पीछे मत देखो। सामने देखो, हमेशा सामने देखो और आगे

(माताजीकी बातचीतके आधारपर)

श्रीअरविंदके साथ बातचीत

[क'ने सुनाया कि कुछ जापानी नाविकोंने अपनी जानको खतरमें डालकर टूटे हुए जहाजके अंगरेज यात्रियोंकी प्राण-रक्षा की।]

श्रीअरविंद — यह ठीक जापानियोंकी-सी बात है। वे अपने स्वकीय अवहेलना करनेकी जगह मर जाना पसंद करेंगे।

प्रश्न : जापानियोंको किस चीजने इतना कर्तव्यनिष्ठ बना दिया ?
 श्रीअरविंद : यह उनकी प्राचीन संस्कृति है। सामुरायका अनुशासन सारी प्रजामें फैल गया है। उस शासनमें बहुत ज्यादा आत्म-संयम और कर्तव्यके प्रति आत्म-बलि भावना होती है। जापानी अपने राजा मिंकाडो या देशके निन्दित जीता है।^१ जापानमें कोई देशद्रोही नहीं हो सकता। उनमें असाधारण सहनशक्ति होती है। कहीं भी चीखना-चिल्लाना सुनायी देता। अगर वे नाराज हों तो अपने शत्रुकी हत्या तो कर सकते हैं पर कभी अपना भावावेश प्रकट न करेंगे। तुम्हें जो कहना हो, चुपचाप, शेखी बधारे बिना कर डालो। पिछली बारके काण्डमें चालीस हजार आदमी मर गये परंतु चारों ओरसे लपटों घिरे होनेके बावजूद किसीने अधीरता नहीं दिखलायी, कोई भी रोया चिल्लाया नहीं। वहां कोई मरता है तो लोग रोते नहीं। ज़रूर पड़नेपर या तो वे कर्तव्य पूरा कर लेंगे या फिर आत्महत्या लेंगे।

इस सबमें उन्हें यह भान रहता है कि पितरों या पूर्वजोंकी सहायता उनके साथ है। यह सब मन, प्राण और शरीरमें सुव्यवस्था और संगठनके कारण है। कठोर अनुशासन उन्हें कठोर बना देता है। उनके अंदर कहीं नमनीयता नहीं होती। किसी जापानीके उसके अपने वातावरणसे अलग कर दिया जाय तो वह चमक पाता। इतनी कठोर स्थितियोंमें अंतरात्माका विकास नहीं हो सकता। इसलिये जापानी कभी आध्यात्मिक नहीं हुए। वहां जो कुछ आध्यात्मिकता दिखलायी भी देती है वह मुख्यतः बौद्धिक होती है। आध्यात्मिकताको छोड़कर बाकी चीजोंमें कठोर अनुशासनने उनके जीवनके सभी क्षेत्रोंमें उनकी बहुत सहायता

^१ यह १९२६ की बात है, दूसरे महायुद्धके बाद स्थिति काफी बदल गई है।

नमिना १९८१

दिया है। पिछले युद्धमें रूसी उनकी तुलनामें कहीं न थे। वे युद्ध करनेके लिये चाहे जितनी जानें देनेके लिये तैयार थे। अपने समुद्रसंगठन, वलिकी भावना और देशभक्तिके कारण वे सब कुछ कर सके।

नमनीयता न होनेके कारण जापानी एक समयमें एक ही बात सोच सकते हैं और एक साथ कई चीजोंपर एकाग्र नहीं हो सकते। इसी-कारण वे वायुयानोंमें इतने सफल नहीं हुए।

प्रश्न : भारतके क्षत्रियोंमें भी जापानके सामुराय जैसा ही अनुशासन था।

श्रीअरविंद : भारतीय अनुशासन अधिक चैत्य और अधिक नमनीय था। जापानी केवल मानसिक और नैतिक क्षेत्रतक सीमित हैं। वे बहुत अधिक कठोर हैं। अगर हिंदुस्तानियोंमें ऐसा अनुशासन होता तो कोई हिंदुस्तानको छू भी न सकता।

प्रश्न : जापानी अपने प्राचीन अनुशासनको बनाये रह सके, क्योंकि उसे कैसे खो बैठे ?

श्रीअरविंद : उन्होंने विदेशियोंको अपने देशमें घुसने नहीं दिया और फिर वे बहुत ज्यादा व्यक्तिवादी थे।

प्रश्न : जापान भारतकी तरह विशाल देश नहीं है। वह अलग-अलग छोटा-सा टापू है। इसीलिये जापानी अपने-आपको इतने अनुशासनमें रख सके।

श्रीअरविंद : बात ऐसी नहीं है। ऐसे अलग-अलग और भी हैं। वहाँ बहुत-से टापू हैं पर उनमें जापानका-सा अनुशासन नहीं है। यह उनकी जातिकी विशेषता है। वे मंगोलियन नहीं हैं। वे एक अलग ही जाति हैं।

प्रश्न : इंग्लैंडकी तुलना जापानसे की जा सकती है ?

श्रीअरविंद : हाँगिज नहीं। इंग्लैंडके हथियार बनानेवाले हथियार

काफी बड़े
पहला महायुद्ध ।

ऐसे लोगोंको बेचते हैं जो उनका उपयोग स्वयं इंग्लैंडके विरुद्ध करने हैं। हां, यह ठीक है कि इंग्लैंडमें भारतकी अपेक्षा अधिक अनुशासन है। उनमें राजनीतिक सहज-बोध है, फ्रेंच लोगोंमें कम है। जर्मनोंमें अंग्रेजोंसे अधिक अनुशासन है लेकिन राजनीतिक बोध जर्मनी इंग्लैंडके पीछे है।

प्रश्न : भारतवासियोंके स्वभावमें वह कौन-सी चीज है जिसके कारण वे जापानियोंकी तरह अनुशासनमें नहीं रह सकते ?

श्रीअरविंद : भारतीय लोग काफी हदतक अनुशासनमें रह सकते हैं किंतु वे बहुत ज्यादा नमनीय हैं — बाहरसे जो कुछ आए उस सबको उन्होंने अपने अंदर मिला लेना चाहा है।

और शायद जापान ऐसा एकमात्र देश है जहां सरकार प्रजा के लिये है। संसद है वहां पर नामके लिये। मिकाडोका वचन है उनके लिये वेद-वाक्य है। लेकिन मिकाडो पूरी तरहसे देश और जातिके लिये है। इस तरह वहां लोकप्रिय शासन बना रहता है जो शासन जनताके हितोंके विरुद्ध हो वह टिक ही नहीं सकता।

प्रश्न : क्या इस अनुशासनको लानेमें बौद्ध धर्मका भी हाथ है ?

श्रीअरविंद : शायद बौद्ध धर्मने भी इसमें कुछ भाग लिया हो पर जापानियोंकी मुख्य विशेषताएं उनके अपने प्राचीन शिन्तो धर्मसे आई हैं।

प्रश्न : जापानी प्रजा बहुत सौंदर्य-प्रेमी है।

श्रीअरविंद : हां।

प्रश्न : उन्हें ऐसा सौंदर्य-प्रेमी किसने बनाया ?

श्रीअरविंद : यह जातिका स्वभाव है। यूनानियों और भारतीयोंके किसने सौंदर्य-प्रिय बनाया ?

प्रश्न : भारतीय जनता तो सौंदर्य-प्रेम खो बैठी है।

श्रीअरविंद : यह मुख्यतया अंगरेजोंके उपयोगितावाद और अनैतिकताका असर है।

(श्रीअरविंद सोसायटी एनुअल १९७८ के आधारपर)

छोटे भाईके नाम पत्र

[श्रीअरविदने १९२० में अपने छोटे भाई वारीनको एक लंबा पत्र लिखा था। इस लेखमें उसके कुछ अंश दिये जा रहे हैं।—सं०]

अतिमानके बारेमें

लेकिन यह आसान चीज नहीं है। पन्द्रह वर्षोंके बाद अब मैं अतिमानके केवल तीन निम्नतम स्तरोंतक उठ रहा हूं और उसमें सभी निम्न गतिविधियोंको एकत्र करनेकी कोशिश कर रहा हूँ। इसमें कोई शक नहीं कि जब यह प्रक्रिया समाप्त हो जायगी तो परम प्रभु इस अतिमानसिक पूर्णताको मेरे द्वारा औरोंको कम ठिन्नाईके साथ देंगे। तब मेरा सच्चा काम शुरू होगा। मैं अपने श्रमकी पूर्णताके लिये अधीर नहीं हूँ। जो होना है वह परम प्रभु-के निश्चित समयपर होगा। अपने छोटे-से अहंके बूतेपर, पागलकी यह दौड़ना और क्रियाके क्षेत्रमें कूद पड़ना मेरा निर्धारित काम नहीं है। यदि मेरा काम पूरा न हुआ तो भी मैं क्षुब्ध न होऊंगा। यह काम मेरा नहीं, परम प्रभुका है। मैं और किसीकी नहीं मुँगा। जब परम प्रभु मुझे हिलायेंगे, तभी हिलूंगा।

भारतकी दुर्बलता

इस संदर्भमें मुझे संक्षेपमें दो एक बातें कहनी हैं जिन्हें मैं काफी समयसे देखता आ रहा हूँ। यह मेरा विश्वास है कि भारतकी दुर्बलताका मुख्य कारण पराधीनता, गरीबी, आध्यात्मिकता या धर्म-का अभाव नहीं बल्कि चिन्तन करनेकी शक्तका अभाव है, ज्ञानके क्षेत्रमें अज्ञानका विस्तार है। हर जगह मैं सोचनेकी असमर्थता

या अनिच्छा देखता हूँ — सोचनेकी असमर्थता या “चिन्तन-विरक्ति” शायद मध्ययुगमें यह चीज ठीक होती, लेकिन आज यह प्रवृत्ति महान् पतनका सूचक है। मध्ययुग एक रात्रिके समान अज्ञानी पुरुषके लिये विजय-पर्व था; आधुनिक युग ज्ञानी पुरुषके विजयका समय है, ऐसे पुरुषकी विजयका जो तल्लीन होकर अधिक चिन्तन, अधिक खोज, अधिक परिश्रम करके संसारके सत्यके बारे में जान लेता है, वही अधिक शक्ति संचित करता है। यूरोपके ओर एक दृष्टि डालो। तुम दो चीजें देखोगे: चिन्तनका विस्तृत असीम सागर और महान् और द्रुत होते हुए नियन्त्रित शक्ति-खेल। यूरोपकी सारी शक्ति इसीमें है। इसी शक्तिके कारण वह संसारको लीलनेमें समर्थ हुआ, जैसे हमारे प्राचीन तपस्वियों ने शक्ति विश्वके देवताओंको भी आतंक, असमंजस और अधीनता डाल देती थी। लोग कहते हैं कि यूरोप विनाशके जबड़ोंमें घँसा जा रहा है। लेकिन मैं यह नहीं मानता। यह सभी क्रान्तियों के सभी अस्त-व्यस्तताएं एक नयी सृष्टिकी पहली अवस्थाएं हैं। भारतकी ओर दृष्टि डालो। कुछ इने-गिने असाधारण पुरुषोंको छोड़कर, सब जगह वही साधारण मनुष्य हैं यानी सामान्य मनुष्य जो सोचेगा नहीं, जो सोच-विचार सकता नहीं, जिसमें रत्ती भर भी शक्ति नहीं है, बस एक क्षणिक आवेश होता है। भारत आसान विचार सरल शब्द चाहता है; यूरोप गहन विचार, गहन शब्द चाहता है। यूरोपमें साधारण श्रमिकतक सोचते हैं, वे सब कुछ जानना चाहते हैं। वे चीजोंके अधूरे ज्ञानसे संतुष्ट नहीं होते बल्कि उसमें गहरी डुबकी लगाना चाहते हैं। सारा भेद इसीमें है। लेकिन यूरोपकी शक्ति और उसके चिन्तनकी एक घातक सीमा है। जब यूरोप आध्यात्मिकताके क्षेत्रमें प्रवेश करता है तो उसकी चिन्तन-शक्ति कम करना वन्द कर देती है। इस क्षेत्रमें यूरोप सभी चीजोंको या यौगिक इन्द्रजालके रूपमें देखता है। सब कुछ उसे लगता है। वह कुछ भी स्पष्ट रूपमें नहीं देख पाता।

जून १९८१

इस सीमाको पार करनेके लिये यूरोप जरा-सा प्रयत्न भी नहीं कर रहा। कृतज्ञ हैं हम अपने पूर्वजोंके जिनके द्वारा हमारे पास आध्यात्मिक ज्ञान आया और जिस किसीके पास यह ज्ञान है उसकी धुंधके अंदर इतनी शक्ति, इतना ज्ञान है कि वह यूरोपकी इस महान् शक्तिको घासके तिनकेकी तरह एक फूंकमें उड़ा सके। शक्ति इस शक्तिको पानेके लिये भी शक्तिकी आवश्यकता है। हम शक्तिकी पूजा नहीं करते; हम आसान मार्गके पूजक हैं। हमारे पूर्वज चितनके अथाह समुद्रमें तैरते थे और उन्होंने असीम ज्ञान प्राप्त किया था। उन्होंने महान् सभ्यताकी स्थापना की थी लेकिन जैसे-जैसे वे अपने मार्गपर बढ़ते चले वैसे-वैसे उनपर श्रान्ति और कान छाती गयी। उनकी चितन-शक्ति कमजोर हो गयी और गाय-ही-साथ सृजनात्मक शक्तिका भी ह्रास हो गया। हमारी सभ्यता झरे पानी जैसी हो गयी है। हमारा धर्म कट्टर पंथ और हमारी आध्यात्मिकता प्रकाशकी धुंधली आभा या उन्मादका क्षणिक आवेग बनकर रह गयी है। जबतक यह अवस्था रहेगी तबतक भारतका प्राणी पुनरुत्थान असंभव है।

भर भी कालमें प्राणिक आवेग क्यों नहीं? पराक्रमशील, अभिजात आर्य युगमें इतना शोर-शरावा और इतना चहत्ता था कि बंग-मांव फेंकना न था लेकिन कार्यमें लगाया गया उनका उद्यम नदियों चलता था। बंगालीका उद्यम एक-दो दिन रहता है। तुम कहते हो कि देशको उत्साहसे भर देनेके लिये जिस चीजकी आवश्यकता है वह है संवेदनात्मक आवेग। हमने राजनीतिक क्षेत्र-में स्वदेशी कालके समय वह सब कुछ किया, और जो कुछ हमने किया वह धूलमें मिल गया। क्या आध्यात्मिक क्षेत्रमें इसका कोई परिणाम आयेगा? मैं यह नहीं कहता कि कोई परिणाम नहीं आयेगा; हर एक क्रिया कुछ-न-कुछ परिणाम लाती है। पर चीजको स्थायी रूप देनेका यह ठीक तरीका नहीं है। इसलिये अब मैं

संवेदनात्मक आवेग, अनुभव और मानसिक उत्साहको आधार बनानेकी इच्छा नहीं रखता। मैं विस्तृत और शक्तिशाली समानताको अपने योगका आधार बनाना चाहता हूँ, सत्ताके सभी कार्य इसी समानतापर आधारित होंगे। मैं पूर्ण, अटल और अचल शक्ति चाहता हूँ, शक्तिके उस समुद्रके ऊपर परम ज्ञानके सूर्यका प्रकाश चाहता हूँ और उस उज्ज्वल विस्तारमें असीम प्रेम, आनन्द और ऐक्यका सुस्थिर परमानन्द चाहता हूँ। मैं दस हजार शिष्य चाहता। अगर मुझे परम प्रभुके यन्त्र-रूप सौ आदमी ऐसे मिल जायें जो अपने तुच्छ अहंकारसे पूरी तरह मुक्त हों तो पर्याप्त है मुझे सामान्य गुरुपनेमें कोई विश्वास नहीं। मैं गुरु बनना नहीं चाहता। जो मैं चाहता हूँ वह है मेरे अपने या किसी दूसरे के स्पर्शसे व्यक्तिके अंदर सोये देवत्वको अभिव्यक्त करना और माणव जीवनको चरितार्थ करना। ऐसे लोग ही इस देशको ऊपर उठावेंगे ('आर्काइव्ज', अप्रैल १९८० से संकलित)

आर्य-समाज और राजनीति

इस शताब्दीके आरंभमें अंगरेज सरकार आर्य-समाजसे बहुत नाराज थी। पटियालेमें आर्य-समाजपर बहुत बड़ा मुकदमा चला जिसमें यह प्रमाणित करनेकी कोशिश की गयी थी कि आर्य-समाज एक राजद्रोही संस्था है जो सरकारका तख्ता पलट देना चाहती है। उन दिनों कम-से-कम आधा पंजाब तो आर्य-समाजी या आर्य-समाज के साथ सहानुभूति रखनेवाला था। आर्य-समाज एक नया जीवन एक नयी स्फूर्ति लेकर आया था।

स्वामी दयानन्द, महात्मा मुंशीराम, महात्मा हंसराज आदि राजनीतिक लोग न थे, फिर भी स्वामी दयानन्दकी यह घोषणा

१९८१

कि अत्याचार करनेवालेसे बढ़कर पापी है अत्याचार सहनेवाला और यह कि अच्छे-से-अच्छा विदेशी राज भी बुरे-से-बुरे स्वदेशी राज्यकी अपेक्षा ज्यादा खराब है। शायद स्वराज्य शब्दका सबसे पहला प्रयोग स्वामी दयानन्दने ही किया था। ये ऐसी बातें थीं जिनसे अंगरेज विदकते थे। फिर महात्मा मुंशीराम (बादमें स्वामी दयानन्द) ने हिमालयकी तलहटीमें अपना गुरुकुल खोला जिसने सबसे पहले हिन्दीके माध्यमसे उच्चतर शिक्षा देनेकी धृष्टता की। शहरों-में बावोहवासे दूर बसी हुई इस छोटी-सी वस्तीमें पलनेवाले बालकोंमें भारतीय राष्ट्र, भारतीय संस्कृति और हर भारतीय चीजके लिये एक पागलपन-सा पैदा हो रहा था। अंग्रेज सरकारने आर्थिक दृष्टि-विपन्न इस संस्थाको एक बड़ा-सा अनुदान देना चाहा, परंतु महात्मा मुंशीराम किसी और ही धातुके बने थे। वे सोनेके टुकड़ोंके बदले बिके। स्वभावतः, सरकारका क्रोध बढ़ा और उसने आर्य-समाज और आर्य-समाजियोंपर वज्र गिराना शुरू किया। उन दिनों भारत-राष्ट्रीय आंदोलनके महान् नेता श्रीअरविंदसे किसीने आर्य-समाजके बारेमें कुछ प्रश्न किये थे। श्रीअरविंदने उत्तरमें लिखा (१५ जनवरी १९००) :

“हमारे पास आर्य-समाजके एक सदस्यका पत्र आया है जिसमें वह समाजके लक्ष्य, उसकी विशेषता और उसके कार्यके बारेमें और उसके कार्यवाहीकी शिक्षाके बारेमें अनेक प्रश्न पूछता है। हमारा ऐसा जवाब या प्रत्यक्ष संबंध नहीं है कि प्रामाणिक उत्तर दे सकें, लेकिन आर्य-समाजके वास्तविक बातोंपर हमारा मत स्पष्ट है। आर्य धर्म कोई नया स्वतंत्र धर्म नहीं है; यह प्राचीन वैदिक धर्मको अपने शुद्ध रूपमें फिरसे आर्य-समाजके प्रयास है। वैदिक धर्म राष्ट्रीय धर्म है और उसके क्षेत्रमें नया जीवन देनेवालेकी प्रयास है। वैदिक धर्म राष्ट्रीय जीवनके सभी क्रिया-कलाप आ जाते हैं। वैदिक धर्मको नया जीवन देनेवालेकी हैसियतसे स्वामी दयानन्दने राजनीतिक आदि राजनीतिको भी अपने क्षेत्रमें अपनाया था और उन्होंने हिंदू धर्म और वैदिक धर्मका भावपूर्ण राष्ट्रीय रूप दिखाया। स्पष्ट रूपसे उनका

काम था राष्ट्रका पुनर्जागरण। वैदिक धर्मके आधारपर राजनीतिक सिद्धांत प्रतिपादित करते हुए स्वभावतः उन्हें यह सत्य भी व्यक्त करना पड़ा कि किसी भी राष्ट्रके लिये स्वाधीनता उसकी सच्ची और सामान्य अवस्था है और पराधीनतामें जा गिरना उसके लिये एक अस्थायी सामाजिक चीज होते हुए पतन और पाप है। कोई भी व्यक्ति इस सत्यका विरोध नहीं कर सकता। स्वाधीनता मानव-जातिकी आत्मा है और आर्य धर्म स्वभावसे ही स्वाधीनताका आस है — वैयक्तिक स्वाधीनता, सामाजिक स्वाधीनता, बौद्धिक स्वाधीनता, सभी चीजोंमें स्वाधीनता। इस प्रकारकी सर्वव्यापी स्वाधीनताकी उपलब्धि अपने साथ राष्ट्रीय स्वाधीनताको लिये बिना नहीं हो सकती। अगर वैदिक धर्म और प्रकृतिके इन सत्योंको देखना राज-द्रोह है, अगर यह राजनीति है, तो स्वामी दयानन्दकी शिक्षा राज-नीतिक और राजद्रोहभरी कही जा सकती है; लेकिन अगर राज-द्रोहका सीधा-सीधा अर्थ लिया जाय, उसे अवैध उपायोंसे शासनका तख्ता उलटनेका हिंसामय, उग्र उपाय माना जाय या अपने उपदेष्टा या क्रियाओंद्वारा अवैध विरोध या क्रांतिकी तैयारी माना जाय तो आर्य-समाजके कामोंमें या स्वामी दयानन्दकी शिक्षा और उनके मंतव्यों में कहीं राजद्रोह नहीं है। वे राष्ट्रीय जीवनको सभी दिशाओंमें मजबूत बनानेके लिये पूर्णतः कानूनी उपायोंका उपयोग करते हैं और उनका लक्ष्य राजनीतिक क्रांति नहीं, सक्रिय और स्वतंत्र धर्मके द्वारा राष्ट्रीय पुनर्निर्माण है। आर्य समाजके सदस्य व्यक्तिपर रूपसे, सरकारके वफादार भी हो सकते हैं और राजनीतिमें नरम दल, गरम दल, यहांतक कि आतंकवादी दलके भी हो सकते हैं; लेकिन कोई धार्मिक संस्था अपने अनुयायियोंके राजनीतिक विचारोंके लिये उत्तरदायी नहीं होती। स्वामी दयानन्दकी धार्मिक शिक्षा राष्ट्रीय भावनाओंसे प्रेरित थी, राजनीतिक भावनाओंसे नहीं; उसी तर्ज पर आर्य-समाजका लक्ष्य भी राजनीतिक नहीं, राष्ट्रीय है।

शायद आज भी आर्यसमाजको इस बातकी याद दिलानेकी जरूरत है।

मार्गसे हटना

जब कोई मार्गसे हट जाता है तो यह केवल इस जन्मके लिये होता है या...

इसके लिये अलग-अलग बातें हो सकती हैं, और वे पीछे हटने-तरीकेपर निर्भर हैं। अगर कोई जरा-सा हटा है या जरा-सा हटा है तो वह फिरसे आगे बढ़ सकता है। लेकिन यह पहलेसे कम-गुना ज्यादा कठिन होता है।

क्यों ?

क्यों ? क्योंकि ऐसा है। क्योंकि तुमने अपनी भीखता और कुलतासे अपने अंदर बाधाएं इकट्ठी कर ली हैं। यह सब कठिन-बाधायां, जिन्हें तुम्हें जीतना होता है, छोटी-मोटी आध्यात्मिक परीक्षाएं होती हैं जिन्हें तुम्हें पास करना होता है। अगर तुम एक परीक्षामें रह जाओ तो अगली उससे ज्यादा कठिन होती है। तुम उससे बच नहीं सकते, यह सामान्य गुह्य विधान है। अगर तुम्हारे आगे प्रयास करने और प्रगति करनेका अवसर आता है और तुम असफल हो जाते हो तो... और ध्यान रखो, वर्तमान परिस्थितियोंमें पहलेसे चेतावनी भी नहीं दी जाती, इससे परीक्षामें असफल होना और भी कठिन हो जाता है। पहले जमानेमें, प्राचीन कालमें, प्रवेशार्थियोंसे कहा जाता था : "अब अपने-आपको तैयार करो, तुम्हें कड़ी परीक्षाओंमेंसे गुजरना होगा। तुम्हें कफनमें बन्द कर दिया जायगा, तुम्हें भयंकर संकटोंका सामना करना होगा। लेकिन ये यह जाननेकी कसौटियां हैं कि तुम्हारे अंदर आवश्यक गुण हैं या नहीं।" कहा जाता है कि जिस आदमीको पहलेसे चेतावनी दे

दी जाय, वह दसके बराबर होता है, समझे। जब उन्हें यह चेतावनी दे दी जाती थी कि यह केवल परीक्षा है तो वे उसे बहुत गंभीरता से न लेते थे और चीज ज्यादा आसान हो जाती थी।

परंतु अब यह रिवाज नहीं है। अब यह नहीं किया जाता। अब स्वयं जीवन और हर रोजकी परिस्थितियां ही वे परीक्षाएं हैं जिनमें तुम्हें सफल होना पड़ता है। कुछ लोग सहज रूपसे अनुभव करते हैं कि वे ऐसी स्थितिमें हैं जिसमें कोई निर्णय करना होगा, या कोई विशेष प्रयास करना होगा। वे अपने अंदर ही वह प्रयास करते हैं और देहली पार कर जाते हैं। इससे अगला कदम भरनेके लिये बहुत ज्यादा शक्ति आ जाती है। जब तुम अपनी निम्न सत्ता पर एक छोटी-सी विजय पा लेते हो तो अगली बार अगला कदम बढ़ाने के लिये तुम्हारे अंदर बहुत ज्यादा शक्ति आ जाती है। इसके विपरीत, अगर तुम अंधे, अज्ञानी, मूर्ख या दुर्भावनावाले हो, तुम्हारे आगे, जो परीक्षा आ रही है उसे स्वीकारनेकी जगह, तुम विरोध करो या उससे इंकार कर दो, तो कहा जायगा कि तुमने परीक्षा पास नहीं की, तुम उसमें असफल हो गये। लेकिन अगली बार केवल इतना ही नहीं कि तुम इसे पार करनेका प्रयत्न करनेके लिये बाधित होगे, बल्कि तुमने जो भूल कर दी है उसे ठीक करने के लिये, बहुत अधिक प्रयास करनेके लिये बाधित किये जाओगे। इसलिये परीक्षा पहलेसे बहुत अधिक कठिन होती है।

लेकिन ये बातें सभीके साथ होती हैं, हमेशा होती हैं, शायद रोज-रोज होती हैं। कुछ छोटी चीजें होती हैं, कुछ जरा बड़ी। छोटी-मोटी परीक्षाओंके लिये तुम अचानक ठीक दिशामें मुड़ सकते हो। लेकिन बड़ी परीक्षाओंके लिये एक प्रकारका सहज बोध पाना जरूरी होता है। तुम्हें ध्यान देकर ठीक चीज ठीक तरह करने चाहिये। लेकिन इनके अतिरिक्त और चीजें भी हैं। जब तुम अपने विकासके नाजुक क्षणमें होते हो, जब आगे बढ़नेके लिये यह अनिवार्य होता है कि तुम अगली सीढ़ीको पार करो — ऐसे समय

१९८१

हमेशा दो संभावनाएं होती हैं: सीढ़ी पार करनेकी, और तब तुम
 बहुत बहुत बड़ी प्रगति कर लेते हो; या फिर, ढीले पड़ जानेकी,
 और यह वस्तुतः रुक जानेसे, पीछे हटनेसे भी बढ़कर है। यह एक
 बड़ी खाईमें गिरना हो सकता है। ऐसी खाइयां हैं जिनमेंसे आदमी
 बाहर नहीं निकल पाता, और इसीलिये इसका मतलब होता है
 नरे जीवनकी बरवादी। लेकिन अगर आदमीके अंदर, जो भाग
 निकलकर गिर पड़ा है उसके अतिरिक्त, कहींपर एक उद्दीप्त ज्वाला
 है, अगर वह सब कुछ करनेके लिये, सभी संभव दुःख सहनेके लिये
 और सभी संभव प्रयास और त्याग करनेके लिये तैयार हो, ताकि
 अपने कियेको ठीक कर सके, ताकि खाईकी तलीमेंसे फिरसे
 ऊपर उठा जा सके, फिरसे मार्गको अपनाया जा सके, तो यह किया
 जा सकता है। इस ज्वालामें भागवत कृपाको बुलानेकी शक्ति
 होती है। और कृपाके लिये कोई चीज असंभव नहीं है। लेकिन
 यह सच्ची ज्वाला होनी चाहिये जो बहुत शक्ति हो, क्योंकि जब
 कोई खाईकी तलीमें जा पहुंचा हो तो वहांसे निकलना आसान नहीं
 होता। पहले प्रकारमें जो मार्गमें जरा-सा रुकना भर है, जो अगले
 चरणको जरा ज्यादा कठिन बना देता है, और इस अंतिम प्रकारमें
 रुकनेकी मैंने अभी बात की, इन दोनोंके बीच बहुत-सी अवस्थाएं हैं;
 जिनमें लिये यह नहीं कहा जा सकता कि अगर कोई मार्ग छोड़ दे तो
 सारे जीवनके लिये है। यह चरम सीमाका उदाहरण है।
 लेकिन अगर कोई मार्ग छोड़ दे तो उसे फिरसे पाना भी बहुत
 मुश्किल होता है। अजीब बात यह है कि उसे छोड़नेके साथ ही
 उसे खो बैठते हो। सभी देशोंमें इस तरहकी कहानियां चलती
 हैं जिनमें लोगोंने मार्ग छोड़ तो दिया, लेकिन वादमें बहुत खोजनेपर
 पा न सके, मानो वह लुप्त हो गया। वह उसे खो बैठे और
 सबकुछ बहुत दुःखद चीज है।
 लेकिन जब तुम मार्गपर हो, मैं कह रही थी — मैं अभी यही
 कह रही थी — जब तुम मार्गपर हो तो उसे कभी न छोड़ो। जरा

ठहरो, तुम यह पथ अपनानेसे पहले जितना चाहो ठिठक लो; लेकिन जैसे ही तुम उसपर पांव रखो, उसी क्षण यह सब समाप्त, फिर न छोड़ो। क्योंकि इसके परिणाम कई जन्मोंतक दिखायी दे सकते हैं। यह बहुत गंभीर चीज है। इसीलिये, यह भी एक कारण है, मैं किसीको यह पथ लेनेके लिये नहीं धकेलती। यहांपर तुम बच्चे काफी संख्यामें हो: पर मैंने कभी किसीसे यह पथ, अपनानेके लिये नहीं कहा। सिर्फ उन्हींसे बात की है जिन्होंने आकर मुझसे कहा है: “हम इसे चाहते हैं।” उनसे भी, जबतक कि मुझे यह विश्वास न हो कि यह उनकी नियतिमें लिखा है, वे यहां आये ही इसलिये हैं, मैं हमेशा यही कहती हूं: “इसके बारेमें सोच लो, सोच लो, पूरा-पूरा निश्चय कर लो कि तुम यही चाहते हो, कुछ और नहीं।” और जब वे सोच-विचार लेते हैं और निश्चय कर लेते हैं तो बस समाप्त। उसके बाद उन्हें इधर-उधर न भटकना चाहिये, उन्हें सीधा अंततक जाना चाहिये। मेरा मतलब है कि फिर तुम्हें कभी पथ न छोड़ना चाहिये। तुम्हें हर कीमतपर आगे बढ़ना चाहिये। और यह कोशिश करनी चाहिये कि बार-बार रुको नहीं। क्योंकि चलते रहना, चाहे कठिन क्यों न हो, फिर भी रुककर नये सिरेसे चलनेकी अपेक्षा ज्यादा आसान है। मार्गपर चलते रहनेकी अपेक्षा, फिरसे चलनेके लिये बहुत ज्यादा प्रयासकी जरूरत होती है। और फिर, तर्कसंगत दृष्टिसे मुझे यह कहना तो न चाहिये, जो लोग यहां हैं उन सबको मैं पहले ही चेतावनी दे चुकी हूं; “अपनी दैनिक समस्त परिस्थितियोंको कभी लापरवाहीसे न लो; जीवनकी सभी छोटी-मोटी चीजों और सभी छोटी-मोटी घटनाओंको लापरवाहीसे न लो।” कभी अपनी निम्न प्रकृतिसे प्रतिक्रिया न करो। जब कभी तुमसे कुछ करने या न करनेके लिये कहा जाय, और यह तुमसे बहुत बार नहीं कहा जाता, लेकिन जब कभी कहा जाय, तो उसपर प्रतिक्रिया करनेसे पहले जरा सोच लो, अपने अंदर उस भागको खोजनेकी कोशिश करो जिसमें प्रतिक्रिया होती है। तुम्हारे अंदर जो बहुत

वृत्त १९८१

ही सामान्य चीज है, उसे लेकर प्रतिक्रिया न करो। अपने अंदर ढों, अपने अंदरके सर्वोत्तम भागको पानेकी कोशिश करो और उसके अनुसार प्रतिक्रिया करो। यह बहुत महत्वपूर्ण है, यह बहुत महत्वपूर्ण है।

कुछ लोग हैं जो बरसोंतक एड़ियां घसीटते रहते हैं, क्योंकि उन्होंने यह नहीं किया। दूसरे हैं जो उड़ते प्रतीत होते हैं, वे इतने तेज जाते हैं; क्योंकि वे इस ओर ध्यान देते हैं। और जो हय नहीं करते वे सारा दोष भगवान्‌के मत्थे मढ़ते हैं। वे भागवत कृपाको तोष देते हैं। वे कृपासे कहते हैं : "तुम्हींने मुझे ठगा है, तुमने ही मुझे कठिनाईमें डाल दिया है, तुम्हारी वजहसे ही मुझे ठोकर लगी है, तुम ही दानव हो," वे ठीक इन शब्दोंमें नहीं कहते परंतु उनके विचार कुछ इसी तरहके होते हैं। और फिर, स्वभावतः, वे अपने मामलेको और भी बिगाड़ लेते हैं, क्योंकि उन्हें अपनी कठिनाईमें जो सहायता मिल सकती थी, वे उसे भी धकेल देते हैं। तो ऐसी बात है।

मैं तुमसे और भी बहुत-सी चीजें कह सकती हूं लेकिन वे धीरे-धीरे आयेंगी। बहरहाल, अगर तुम अपने अंदर एक विश्वास, यह मूल और निर्विवाद भरोसा रख सको जो तर्क नहीं करता, और यह भाव कि... हां, सचमुच, यह भाव रखो कि तुम्हारे लिये जो कुछ किया जा रहा है — चाहे वह कैसा भी क्यों न दीखता हो — वह तुम्हें अपने लक्ष्यकी ओर ले जाने और कठिनाइयोंमेंसे जल्दी-जल्दी बाहर निकालनेके लिये सबसे अच्छा है... अगर तुम इसे अपने अंदर मजबूत बनाये रख सको तो तुम्हारा मार्ग बहुत अधिक सरल हो जायगा।

तुम मुझसे कहोगे कि इसे रखना बहुत कठिन है, लेकिन बच्चे उसे भली-भांति रखते हैं। अगर वे इसे खो देते हैं तो इसका मतलब यह है कि उन्हें सचमुच बहुत ही घृणित मां-बाप मिले हैं; लेकिन अगर उनके मां-बाप काफी अच्छे हैं तो वे इसे भली-भांति रख सकते हैं। हां तो, यही वृत्ति है। अगर तुम अपने-आपसे

कह सको : "ठीक है, शायद भागवत कृपा हमारे विश्वासकी अधिकारिणी है," बस, इतना ही, और कुछ नहीं, तो तुम बहुत-सी, बहुत-सी कठिनाइयोंसे बच सकते हो। वस्तुतः, यह चीज साधारण जीवनमें भी बहुतेरी कठिनाइयों और चिंताओंसे बचा सकती है। और विशेष रूपसे यहां, अगर तुम यह करो तो देखोगे कि जो चीजें बहुत अधिक कठिन मालूम होती थीं, वे वादलोंकी तरह छिन्न-भिन्न हो जायेंगी।

तो यह लो, बस।

फिर मिलेंगे, बच्चो।

(श्रीमातृवाणीसे)

आश्रमका विद्यालय

श्रीअरविदाश्रममें काम प्रायः योजना बनाकर नहीं शुरू किये जाते। आवश्यकता पड़नेपर हर चीज अपना रूप लेने लगती है और आवश्यकताके अनुसार बढ़ती, मुड़ती, उठती जाती है। श्रीअरविदने किसीको लिखा था कि यूरोपीय पद्धतिके अनुसार हर कामकी पहलेसे योजना बनायी जाती है। कौन-सी कील कहां आयेगी और कौन-सा कांटा कहां लगेगा यह पहलेसे ही ठीक कर लिया जाता है और उसके बाद काम शुरू होता है। जब कि भारतमें सहज-स्वाभाविक विकास होता है और आंतरिक तथा बाह्य स्थितियोंकी मांगके अनुसार वृद्धि होती है।

माताजीने कहा था कि आश्रमका हर एक काम किसी-न-किसी वैश्व समस्याका प्रतिनिधित्व करता है। हर नया काम नयी समस्याएं लेकर आता है। वे सहज रूपसे आनेवाली समस्याओंसे पीछे न हटती थीं पर किसी नयी समस्याको निमंत्रण देने भी न जाया करती थीं।

१९८१

माताजी और श्रीअरविंदने भावी मानवजातिके स्वागतकी तैयारी करनेके लिये जन्म लिया था। उन्हें मालूम था कि उसके लिये वर्तमान शिक्षा-प्रणालीमें आमूल परिवर्तन करनेकी आवश्यकता है ताकि वह कल-पुर्जोको नहीं, जीवित व्यक्तियोंको जन्म दे सके। मन, प्राण, शरीर और चैत्य सभीके प्रशिक्षणकी आवश्यकता है और मनुष्यकी शिक्षाका काम गर्भाधानसे, बल्कि उससे भी पहलेसे, शुरू होता और मृत्युतक चलता रहता है। इसमें पूर्ण विरामके लिये कहीं स्थान नहीं है।

शुरू-शुरूमें आश्रममें बारह वर्षसे कमके बच्चेका प्रवेश निषिद्ध था। बच्चोंके आनेके साथ-ही-साथ बहुत सारी नाना प्रकारकी समस्याएं आ जाती हैं और माताजी उन्हें बुलानेके लिये बहुत उत्सुक न थीं। शुरू-शुरूमें दो-चार बच्चे थे जिन्हें पवित्र, पुराणी, पविता आदि मोड़ा-बहुत पढ़ा दिया करते थे। पर दूसरे महायुद्धके छिड़नेपर और फिर कलकत्ता हत्याकांडके बाद बहुत सारे भक्तजन अपने परिवारोंके साथ आश्रममें आ गये और पहलेके नियम हवामें उड़ गये। अब बच्चोंकी पढ़ाईकी व्यवस्था करना जरूरी हो गया। आश्रमके मुख्य भवनसे थोड़ी दूर एक फ्रेंच प्राध्यापकका मकान था जिसे उसने फ्रांसके राजा १४ वें लुईके स्मारकका रूप दे रखा था। मकानमें इंचों गर्द अटी रहती थी। मकड़ीके जाले रस्सियों से लगते थे और साथ ही 'कदली वनम्' था जो सचमुच एक छोटा-मोटा जंगल था जिसमें सांप-बिच्छुओंकी भरमार थी। माताजी-यह स्थान खरीद लिया और वहांपर विद्यालयका पहला मकान, क्रीडांगण और पहला छात्रावास — तीनों प्रकट हो गये। अब यह इहाता क्रीडांगणका रूप ले चुका है। धीरे-धीरे और मकान से लिये गये जिनमेंसे एक रवींद्रनाथ ठाकुरकी कहानी "क्षुधित प्राण" की याद दिलाता था। वहां दिनमें जाते हुए डर-सा लगता था। कबूतरोंकी बीट और चिमगादड़ोंकी लटकती हुई कतारें और दुर्गंध आगन्तुकका स्वागत करती थीं। आज वह विद्यालयके

मुख्य भवनका एक हिस्सा है जहां जीवन कुलांचें मारता रहता है। पढ़ाई-लिखाईके साथ खेल-कूद, नाच-रंग आदिपर भी जोर दिया गया। माताजी स्वयं बच्चोंके अध्यापकोंको परामर्श दिया करती थीं, उनकी सुधारी हुई कापियां दोहराती थीं। उनकी हर समस्या-पर ध्यान देती थीं। यहांतक कि पुराने ढर्रेके फकीर कहने लगे कि माताजीने योग छोड़कर सरकस शुरू कर दिया है।

पर माताजीकी दृष्टिमें कोई चीज छोटी या बड़ी न थी, सबका अपना महत्व था। आरंभमें माताजी आश्रमके अन्य कामोंके अतिरिक्त रोज आठ-नौ घंटे विद्यालय और क्रीडागणके लिये दिया करती थीं। फ्रेंच, गणित, नाटक आदिमें उन्होंने शिक्षककी भूमिका ली। नाटकोंका पूर्वाभ्यास करवानेमें, नृत्य, संगीत आदिके कार्यक्रमोंमें तैयारीमें उनका धैर्य, उनका अध्यवसाय और उनका साहस देखकर लोग लगेता था कि इसके सिवा उन्हें और कोई काम है ही नहीं।

माताजीके पास सूचना आयी, अमुक छात्र कह रहा था कि उसके पिता हमेशा रेलके पहले दर्जेमें चला करते हैं। माताजीने कहा, उसे बुलाकर समझाओ कि यहांपर तुम्हारे धन-वैभव या वाह आडम्बरका कोई मूल्य नहीं है। मूल्य इस बातका है कि तुम भगवान्के लिये क्या करते हो।

माताजीको बतलाया गया कि अमुक लड़की आश्रमसे घरतक कुछ सामान ले जाते हुए अपमानका अनुभव करती है। माताजीने कहा, आश्रमके बच्चोंमें कामके प्रति ऐसी भावना बिलकुल न होनी चाहिये और इसके लिये क्रियात्मक उपाय किया गया। दशनेके दिनोंमें बड़ी संख्यामें बच्चे भोजनालयमें खाना परोसने, वस्त्र धोने आदिका काम करने लगे।

यहां यह जान लेना उपयोगी होगा कि माताजीके पास शिकायतें नहीं जाया करती थीं। स्वयं उन्होंने कहा कि दूसरोंके बारेमें शिकायतके रूपमें, उसे नीचा दिखाकर अपने-आपको ऊंचा उठानेकी इच्छासे, ईर्ष्या, द्वेष आदिके कारण कुछ न कहो। तुम्हें जो चीज

जून १९८१

जैसी दीखती है उसे कुछ घटाये-बढ़ाये बिना, आईनेकी तरह मेरे सामने रख दो और यह आशा न करो कि उसका यह परिणाम आयेगा या वह आयेगा। अध्यापकों, प्रशिक्षकों, कप्तानों, विभागाध्यक्षों इसी बातकी आशा की जाती थी।

यहां शायद माताजीका एक पत्र उद्धृत करना असंगत न होगा जो उन्होंने तेरह-चौदह वर्षके एक लड़केको लिखा था। वे कहती हैं: "देखो, मेरे बालक, दुःखकी बात यह है कि तुम अपने ही बारेमें बहुत ज्यादा व्यस्त रहते हो। तुम्हारी उम्रमें मैं ऐकांतिक रूपसे अध्ययनमें लगी रहती थी — चीजोंका पता लगाना, सीखना, समझना, जानना। मुझे इसीमें रस था, इसीकी धुन लगी थी। मेरी मां, हमसे, यानी मेरे भाईसे और मुझसे बहुत प्यार करती थीं, वे हमें कभी बदमिजाज, असंतुष्ट या आलसी न होने देती थीं। अगर हम उनसे किसी भी चीजकी शिकायत करने जाते या उनसे कहते कि हम असंतुष्ट हैं तो वे हमारा मजाक उड़ातीं; डांटतीं और कहतीं "यह क्या बेवकूफी है? हास्यास्पद मत बनो। चलो, जल्दी करो और अपने काममें लग जाओ और तुम्हारा मूड अच्छा है या बुरा इसकी चिंता मत करो। इसका कोई मूल्य नहीं है।

मेरी मांकी बात बिल्कुल ठीक थी। और मैं बहुत कृतज्ञ हूं कि उन्होंने मुझे अनुशासन और हम जो कुछ कर रहे हों उसमें काग्र होकर अपने-आपको भूल जानेकी आवश्यकता सिखलायी।

मैंने तुम्हें यह सब इसलिये बतलाया है क्योंकि तुम जिस चिंताकी बात कर रहे हो वह इस तथ्यसे आती है कि तुम अपने ऊपर बहुत ज्यादा एकाग्र हो। तुम्हारे लिये ज्यादा अच्छा होगा कि तुम जो करते हो उसपर ज्यादा ध्यान दो और उसे ज्यादा अच्छी तरह करो (चित्रकला या संगीत) अपने मनको विकसित करो जो अभी बहुत अविकसित है और ज्ञानके वे तत्त्व सीखो जो उस आदमीके लिये अनिवार्य हैं जो अज्ञानी और असंस्कृत नहीं रहना चाहता।

अगर तुम नियमित रूपसे आठ-नौ घंटे रोज काम करो तो तुम्हें

भूख लगेगी, तुम अच्छी तरह खाओगे। तुम्हें नींद आयेगी और तुम शांतिसे सोओगे और तुम्हें यह सोचनेके लिये समय न मिलेगा कि तुम अच्छे मूडमें हो या बुरेमें...।”

कई वर्षोंतक माताजी अपने-आप भी पढ़ाया करती थीं। उन कक्षाओंमें निम्नानवे वर्षसे नीचेके सभी बालक जा सकते थे। श्रीमान्-वाणीके सन् ५१ से ५८ तकके प्रश्नोत्तरके ग्रंथ इन्हीं कक्षाओंके बच्चों हैं।

शुरू-शुरूमें आश्रम विद्यालयमें परीक्षाएं होती थीं पर आगे चलकर उन्हें देश-निकाला दे दिया गया। जोर इसी बातपर था कि तुम परीक्षा पास करनेके लिये नहीं, ज्ञान-प्राप्तिके लिये, अपने विकासके लिये पढ़ते हो।

माताजीने अध्यापकोंसे कहा, पाठ्यक्रम पूरा करनेकी जल्दी न करो। मैं नहीं चाहती कि यहांसे रक्तहीन, जर्द चेहरे और झुके कमरवाले विद्वान् निकलें। शारीरिक शिक्षाका महत्त्व जरा भी कम नहीं है। पाठ्यक्रम पूरा करनेमें दो वर्ष ज्यादा लग जायें तो कोई हर्ज नहीं परंतु वे जो कुछ करें अच्छी तरह करें। इसी तरह माताजी यह भी न चाहती थीं कि केवल टेनिस, हाकी, एथलेटिक्स आदिके निष्णात बनें। विशेषज्ञ होना नहीं, शरीरको भगवान् पूर्ण यंत्र बनाना, उसकी सभी क्षमताओंको विकसित करना यहांका उद्देश्य है। आश्रमके विद्यार्थियोंके लिये उन्होंने एक प्रार्थना लिखी।

“हमें वह वीर योद्धा बना जो बननेके लिये हम अभीप्सा करते हैं। वर दे कि हम डटे रहनेका प्रयास करनेवाले भूतके विरुद्ध, सफलतापूर्वक उस भविष्यका युद्ध लड़ सकें जो अभी जन्म लेनेको है ताकि नयी चीजें अभिव्यक्त हो सकें और हम उन्हें ग्रहण करने योग्य बनें।”

आश्रमके विद्यालयमें पढ़ाईका इतना महत्त्व नहीं है जितना यहांके वातावरणका है। १९४६-४७ में यहांकी लड़कियोंने लड़कोंके साथ कंधे-से-कंधा मिड़ाकर हाफ पैंटकी वर्दी पहनकर खेल-कूदमें भाग शुरू किया।

वृत्त १९८१

२५

यहां कोई विषय अनिवार्य नहीं है परंतु प्रायः सभी अंगरेजी, हिंदी और कुछ संस्कृत तो सीख ही लेते हैं और साथ ही बिना पढ़े, उनके कारण कुछ हिन्दी, बंगला, गुजराती और ओड़ियाका भी ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं।

विद्यालयके साथ एक बहुत बड़ा पुस्तकालय है जिसमें अनेक विषयोंकी अच्छी पुस्तकोंका और भारतीय तथा यूरोपीय चित्रों तथा संगीतके रिकार्डोंका संग्रह है। शिक्षाके अनेक क्षेत्रोंमें चंचु-कृत करनेका अवसर मांगनेसे ही मिल जाता है, आगे बढ़नेके लिये मैं अपना निजी प्रयास जरूरी होता ही है।

विद्यालयमें समय-समयपर प्रदर्शनियां होती रहती हैं जिनमें विज्ञानके विभिन्न अंगोंका, कला-कौशलका, फूलोंका, विभिन्न देशोंकी संस्कृतिका परिचय मिलता है। उदाहरणके लिये पुरोद्वामें छपा फूलोंकी एक प्रदर्शनीका परिचय देखिये :

... हमारी नुमाइश कोई ऐसी-वैसी चीज नहीं है, वनमालाने कहा, "राजाओंने फूलोंको विलासकी सामग्री बना लिया था, सुन्दर-सुन्दर फूल उनकी सेजका काम देते थे। आपने दिल्लीमें होनेवाली प्रदर्शनीकी सैरके वारेमें तो पढ़ा ही होगा। बड़ा ही मादक दृश्य था, चारों ओर फूलोंके ढेर लगे रहते थे। फूलवाले और फूलवाल्यां बतियाने और लोगोंको भरमानेमें एक-दूसरेसे आगे जाते थे और देखनेवाले शौकीन अपना सब कुछ दांवपर लगा देते थे। दूसरी ओर भक्त लोग फूलोंको भगवान्‌पर चढ़ाते थे, उनके हिंडोले बनाते थे और न जाने क्या-क्या उपयोग करते थे। मैं माताजीने इन्हें एक और ही काम सौंपा है। मैं नहीं जानती कि इससे पहले फूल अपनी इस गरिमासे परिचित थे या नहीं पर मैं जरूर कह सकती हूं कि माताजीने इन्हें भगवान्‌का सचेतन सजावटका काम दिया है। अब हमें पता है कि हर फूल भगवान्‌की किसी विशेष देनका प्रतीक है। देखिये, मेरे हाथोंके मोतिये प्रकृताका संदेश देते हैं और मेरे कानमें पिराये हुए हरशृंगार

अभीप्सा, या भगवान्की ओर बढ़नेकी इच्छाका प्रतीक हैं और भगवान् श्रीकृष्णका प्यारा यह कदम्ब हमें ऊंची-से-ऊंची ज्योतिकी, अमानस सूर्यकी याद दिलाता है।

मैं वनमालाका भाषण सुन-सुनकर मुग्ध हो रहा था। अचानक उसने एक सूखेसे फूलकी ओर इशारा किया, इसे देख रहे हैं? देखनेमें कैसा नीरस-सा लगता है, यह है बहुत विरल। ऐसे फूल जो ज्यादा नहीं मिलते और यह जिसका प्रतीक है वह तो और भी ज्यादा विरल है — निःस्वार्थता। और उस तरफ देखिये वे छोटे-छोटे सदाबहारके फूल हमें और आपको प्रगतिका संदेश दे रहे हैं। आप तो जानते ही होंगे हमारे शास्त्रोंने हमेशा आगे बढ़ते रहनेका आदेश दिया है। वे कहते हैं चरैवेति, चरैवेति। ये फूल भी यही कह रहे हैं। और उधर देखिये वह आकका पौधा, आपने भी वचनमें यही सुना होगा कि इससे सावधान रहना। इसका दूध आंखों में लगते ही अंधे हो जाओगे, इसके पत्ते आपकी चोटपर लगाये जायेंगे, यह हनुमानजीका प्यारा फूल है और माताजीने इसे नाम दिया है, 'साहस'!

... फिर हम एक मेजपर आये जहां कुछ अंक लिखे थे और कई तरहके फूल सजे हुए थे। बात कुछ समयमें न आयी। नीरस अंकोंका इन सुन्दर फूलोंके साथ कैसा गठबन्धन, शायद य भी आश्चर्य न निकतासे ग्रस्त हैं? लेकिन रहस्य ज्यादा देरतक रहस्य न रहा। हमारी मार्गदर्शिकाने कहा, "यह हमारी फूल घड़ी है। कहते हैं कि जब लक्ष्मीजी धरतीपर आयीं तो उन्हें समयका कुछ ख्याल न था क्योंकि समय विशेष रूपसे धरतीकी चीज है और वे यहांपर नहीं थीं, यहां सभी काम समयके हिसाबसे किये जाते हैं। इससे लक्ष्मीजी को असुविधा होती थी। यह देखकर वनदेवियोंने उनके लिये घड़ी का आविष्कार किया। लक्ष्मीजी सौंदर्यप्रिय हैं अतः उनके लिये घड़ी भी सुन्दर बनायी गयी। ऋतुओंकी रानीने फूलोंके साथ समय समझौता कर लिया कि अमुक-अमुक फूल अमुक-अमुक समय

दमक रही थी, प्रत्येक रंग भिन्न, चित्र भिन्न। हमने अध्यापिका को पूछा तो उसने बताया कि ये 'पापिये माशे' से बनी हैं और रंग हैं मामूली 'वाटर कलर', फिर उनपर वार्निश चढ़ायी गयी है। न अक्लकी करामात !!

पास ही बहुत सुघर रंग-विरंगे, किताबोंमें रखनेके लिये पृष्ठ-चित्र थे। हम रंगोंकी बहार देखकर दंग रह गये। अध्यापिका कहने लगे कि वह उन्हें विज्ञान पढ़ाती है, पढ़ाती तो क्या, बातचीत और खेल-खेलमें कुछ सिखाती है, क्योंकि इन बच्चोंकी आयु सातसे नौ तक की बीच होगी। उसने बताया कि उन्हें रंगोंके बारेमें बतानेके लिये उसने एक छोटी-सी कहानी गढ़ी। उसने कहा: "जब सृष्टिका आरंभ हुआ तो उसे बनानेवालेके पास केवल पीला, नीला, लाल और हरा रंग था। लेकिन देखो, चारों ओर कितने रंग फैले हैं! इन्हींको मिलाकर बनाये गये हैं। चलो, हम भी देखें, इनको मिलाने से कितने रंग बनते हैं। और कागजपर इन रंगोंके भिन्न-भिन्न मिश्रण करके उन्होंने बहुत सुन्दर रंग पाये। अब इन कागजोंके काटकर अद्भुत और नाजुक रंगोंसे भरे पृष्ठचित्र बनाये गये। वादोंमें रंगोंको बनाये रखनेके लिये उनपर वार्निश की गयी। सभी रंग एक विचित्र दमकसे दमकने लगे। बच्चोंने खेल-खेलमें कितना कुछ सीखा! और काममें जो मजा आया सो अलग !

दूसरे कमरेमें बच्चोंने विभिन्न रंगके बीजोंको चिपकाकर एक बड़ी तितली बनायी थी। रंगीन कागजोंको मोड़कर, काटकर खरोश हाथी, मकान बनाये थे। नीचे एक कमरा था, उसमें अध्यापिका और बच्चोंने मिलकर गुलमुंडीके फूलोंसे अल्पनाके रूपमें जमीनपर भारतका नक्शा बनाया था और उसके चारों ओर चांदीके कागजोंके लिपटी मोमबत्तियोंकी कतार खड़ी कर दी थी। भारत बड़ा सुन्दर बना लग रहा था। उसी कमरेमें साइंसके एक दूसरे सिद्धांतके व्यावहारिक रूप देखा। कागजका बना एक खिलौना मेजकी कगार पर जरा-सा सहारा लिये मानों हवामें अधर खड़ा था। उठाकर

१९८१

देखा तो पता चला कि उसके पांवमें एक छोटा-सा कंकड़ था और नुलनके इस कमालकी वजहसे वह हवामें तैर पा रहा था।

बाहर आकर अध्यापिकाने एक और दिलचस्प बात सुनायी। उसने बताया कि जहांतक संभव हो वह अपने-आप कुछ बताती नहीं, केवल उन्हें सोचने, खोजनेके लिये उकसाती रहती है। एक दिन उसने कहा : “चलो, आज तुम्हें जादू दिखाऊं !” बच्चे बहुत उत्सुक हो उठे। उसने मोमवत्ती जलायी और उसके ऊपर एक बड़ी-सी बोतल ढक्कनकी न्याई रख दी। बच्चोंने देखा, मोमवत्तीकी लौ आहिस्ता, आहिस्ता मद्धिम पड़ गयी। अचानक अध्यापिकाने बोतल उठा दी और लौने जोर पकड़ा। बच्चे मुंह बाये देखते रहे। फिर अध्यापिकाने धीरे-से कहा, “यह जादू नहीं है।” बच्चे उतावले हो गये उसका कारण जाननेके लिये। उसने कहा : “नहीं, तुम सोचो ! देखें, कितने होशियार हो।” कइयोंने कहा : “वत्ती छोटी हो गयी थी।” कइयोंने कहा, “कांचसे लौको नुकसान पहुंचता है।” और एकके तर्कका जवाब अध्यापिकाने दिया। अचानक एक बच्चा बोले उठा : “मुझे मालूम है। हवा रुक जाती है।” अध्यापिकाको यह हवा और लौके संबंध समझानेका अवसर मिला। मुझे प्रदर्शनीसे अधिक शिक्षाका यह ढंग अच्छा लगा।

अंतिम कक्षामें नये वर्षके कई कलण्डर थे जो बच्चोंने अपने-अपने तैयार किये थे। हर पृष्ठपर चित्र भी बना था। जाते-जाते मुझे एक बहुत बड़ी अग्नि-शिखा देखी जिसके नीचे लिखा था : “हे शिखा, हम तुझे बढ़ते देखना चाहते हैं।” वर्षमें अनेक बार अनेक स्तरोंपर ऐसी प्रदर्शनियां होती रहती हैं। कितने बार आश्रममें आर्थिक कठिनाई थी। किसीने माताजीको जवाब दिया कि हमारा विद्यालय इतना लोकप्रिय है, अगर हम शिक्षा-शुल्क लगा दें तो विद्यालयका खर्च चलानेमें काफी सहायता मिलेगी। माताजीने कहा, “भारतमें विद्या कभी बेची नहीं जाती थी। यह कुप्रथा नहीं शुरू करना चाहती।”

सोसायटी समाचार

२४ अप्रैलको दर्शन-दिवसके उपलक्ष्यमें सवेरे लगभग ढाई बजे लोगोंने श्रीअरविन्दके कमरेके दर्शन किये। दस बजे समाधिके जाल और बैठकर ध्यान हुआ और शामको क्रीड़ांगणमें।

२३ अप्रैल १९८१ को श्रीअरविन्द सोसायटी युवा परिषद् तत्त्वावधानमें युवक सभा हुई। श्री प्रदीप नारंगने अपने स्वागत भाषणमें इस परिषद्के चार उद्देश्य बतलाये (१) व्यक्तिकी उत्तरोत्तर पूर्णता, (२) वर्तमान आर्थिक व्यवस्थाको बदलकर आध्यात्मिक व्यवस्था लानेका प्रयास, (३) एकता और विभिन्नतामें मानव स्वतंत्रता और (४) भारतका भौतिक और आध्यात्मिक ढंगसे पुनर्निर्माण ताकि वह संसारके सामने एक उदाहरण रख सके। उन्होंने इस विषयमें माताजीके कुछ उद्धरण सुनाते हुए यह आशा और प्रकट की कि यह युवा परिषद् इस उद्देश्यको पूरा करनेके लिये काम बने। हर सदस्यसे आशा की जाती है कि माताजी और श्रीअरविन्दकी शिक्षाको अपने जीवनमें उतारे और उनके आदर्शोंको कार्यान्वित करनेके लिये कुछ-न-कुछ काम करे। यह प्रस्ताव किया गया कि हर सदस्य अगले वर्षके लिये अपने कार्यकी कुछ रूप-रेखा बनाकर दे, साथ ही कुछ नये सुझाव भी दे ताकि उसके आधारपर कार्यक्रम बनाया जा सके। जिन्हें इस काममें रस हो वे श्रीअरविन्द सोसायटी, युवा परिषद्, अधचीनी, कुतुब होटल मार्ग, नयी दिल्ली ११००१७ को पत्र लिखें।

श्रीअरविन्द सोसायटीके नारी आयोगने २६ से २८ अप्रैल पांडिचेरीमें आध्यात्मिक समाजके बारेमें एक शिविरकी व्यवस्था की थी। इसमें श्रीअरविन्दकी पुस्तक मानव-चक्रके तीन अध्यायों का अध्ययन किया गया। सहायता करनेवालोंमें डा० नाडकर्णी, डा० जायसवाल, नार्मन डाउसेट और श्रीमती आरती दत्त उल्लेखनीय हैं।

जून १९८१

केंद्रोंके समाचार :

बंगलोरमें श्रीअरविंद सोसायटीने एक उच्चतर विद्यालयके विद्यार्थियोंके लिये एक शिविरकी व्यवस्था श्रीअरविंद भवनमें की। सर्वश्री ओम-प्रकाश चौरासिया, शारदा महाराज आदिके संगीतका कार्यक्रम रखा गया। १९ अप्रैलको डा० रवि शर्माने अन्तरिक्षयात्राके बारेमें स्लाइड

दिखाते हुए भाषण दिया। गृहिणियोंके लिये कक्षाएं चल रही हैं।

श्रीअरविंद ग्राम महसुआमें एक साधक-सम्मेलन हुआ। श्री चंपक-लाल और चन्द्रदीपके अतिरिक्त भारतके कई स्थानोंके लोग आये थे। श्री के. ना. वर्माने यज्ञकी शिक्षा, श्रीअरविंद योग प्रशिक्षण आदिपर भाषण दिये। स्थानीय विद्यार्थियोंने 'भारतकी पुकार' और 'स्वप्न' नामक दो नाटक दिखलाये।

तेनाली (आंध्र प्रदेश) की शाखाने डा० आयंगरकी पुस्तक 'श्रीअरविंद' के तेलुगु अनुवादका ग्रंथ-विमोचन किया।

वल्लभ विद्यानगर (गुजरात) में सोसायटीकी ओरसे श्रीअरविंद—आजके संदर्भमें—पर डा० शिशिर कुमार घोषका भाषण हुआ।

हैदराबादकी मानव अध्ययन संस्थान में श्री चम्पक लालने मातृ-शिक्षा उद्घाटन किया। उन्होंने नवजाति प्रेस और सेवाक्षेमकी आधारशिला भी रखी। इस अवसरपर दो दिनका सेमिनार भी हुआ। श्री चंपकलाल ने मेदक जिलेमें 'ओरोदर्शन' नामक शिक्षण संस्थाकी आधारशिला भी रखी।

२८ से ३० जूनतक सोसायटीके आकोट केंद्रकी ओरसे श्री महेश्वरी के तत्वावधानमें महाराष्ट्र स्वाध्याय शिविरकी व्यवस्था हो रही है।

वार्षिक अधिवेशन

श्रीअरविंद सोसायटीका वार्षिक अधिवेशन १२ से १४ अगस्ततक होगा। उसमें भाग लेनेके लिये सभी सदस्योंका स्वागत है।

आशा है कि अधिवेशनमें भाग लेनेवाले सभी सदस्योंको रेल भ्रमण मिल सकेगा जिससे दूसरे दर्जेके एक तरफके किरायेमें दोनों (शेष आवरण ३ पर)

Courage and love are the only indispensable virtues; even if all the others are eclipsed or fall asleep, these two will save the soul alive.

Sri Aurobindo



INDIAN TEA STORAGE AGENCY

24, Ganesh Chandra Avenue, Calcutta-700013

की यात्रा हो सकेगी। कंसेशन केवल सदस्योंको मिलेगा, उनके आनेवाले और लोगोंको नहीं। सदस्य अपनी संख्याके साथ-साथ यह भी लिखें कि वह कबतक रहेगी। अगर रेल अधिकारियों-यहाँसे कंसेशनकी स्वीकृति न मिले तो फार्म नहीं भेजे जायेंगे। हमारी अतिथिशालाओंमें सीमित स्थान है। इसलिये हमें बाहरके एक और मकान किरायेपर लेने पड़ते हैं। हो सकता है वहाँ लोगोंकी मनचाही सुविधाएं न मिल सकें। डार्मिटरी (सोनेकी कमरा) के लिये प्रति व्यक्ति ३ से ५ रु. रोज खर्च आयेगा, एक कमरेके लिये १० से १५ रु. रोज और दोके लिये २० से ३०। लोग रहनेकी व्यवस्था चाहते हैं वे साथमें दिया गया फार्म भर-डार्मिटरीके लिये १० रु. प्रति व्यक्ति और अन्य स्थानोंके लिये ५ रु. प्रति व्यक्ति पेशगी भेज दें। पांडिचेरीसे बाहरके बैंकोंके चेक नहीं स्वीकार किये जायेंगे। फार्म और धन एकोमोडेशन बिल, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२ के नाम भेजें।

रहनेकी व्यवस्थाके लिये फार्म

मैं, एकोमोडेशन सेक्शन;

श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी

द्वारा हमारे लिये/मैंने लिये स्थान आरक्षित कर लें।

व्यक्तियोंकी संख्या **१०**

कितने दिनके लिये
से तक (तारीख)

हम ता० को पांडिचेरी
(समय) पहुंच रहे हैं।

संयुक्तताएं

डार्मिटरी

कमरा

कमरा

और विशेषता

पेशगी धन

रु.

धनदेश, ड्राफ्ट, चेकसे भेजे जायें।

ता०

नं०

अगर आश्रमकी अतिथिशालामें स्थान न हो तो मुझे बाहर भी स्थान दे दिया जाय। हां या नहीं?

अगर आपका उत्तर ना में हो तो हो सकता है कि आपको न मिल सके क्योंकि अतिथिशालाओंमें जगह बहुत कम है।

अगर मेरे कार्यक्रममें कुछ हेर-फेर हो तो मैं बुकिंगसे सात पहले सूचना दे दूंगा अन्यथा मेरा पैसा वापिस न किया जायगा।

मैं शाखा, केंद्र का सदस्य, कार्यकर्ता, पदाधिकारी हूं। मेरी सदस्य संख्या..... है।

तारीख

हस्ताक्षर

नाम और पता

कंसेशन फार्मके लिये पत्र

वार्षिक अधिवेशन १९८१

सदस्यताकी संख्या

कब्रतक माल्य

सदस्यका पूरा नाम और पता :

पिन

राज्य

मैं अगस्त १९८१ के वार्षिक अधिवेशनमें भाग लेना चाहता हूँ। कृपया मुझे एक व्यक्तिका रेल कंसेशन दिलवा दें।

मैं प्रमाणित करता हूँ कि मेरी वार्षिक आमदनी १८०० मासिक अधिक नहीं है। जिन फार्मोंका उपयोग न होगा वे आपको अगस्त १९८१ तक लौटा दिये जायेंगे।

तारीख



उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जाग्रहि

अखिल भारतीय पत्रिका

अग्निशिखा

श्रीअरविंद सोसायटीकी मासिक पत्रिका

“मृत्यु” अंक

सन् १९८१

वर्ष १२, अंक ५, पूर्णांक १३७

विषय-सूची

संपादकीय — यह अंक

— अनुवेन

मृत्यु क्यों

मृत्युके बाद क्या होता है

नरक, स्वर्ग और भूत

मृतकोंकी रक्षा कैसे की जाय

मृत्यु कठिनाइयोंका हल नहीं है

मृत्युके भयपर विजय

अमरता

पत्रिकाको सुचारु रूपसे चलानेके लिये आपकी सहायता जरूरी है। अपने परिचितोंमें इसके आजीवन सदस्य या सामान्य ग्राहक बनाकर हमारी सहायता करें। धन्यवाद।

अग्निशिखा वार्षिक : ८.००

आजीवन १२५.००

पुरोधा " १०.००

" १७५.००

पत्र, चेक डाफ्ट, आदि भेजनेका पता :

संपादक अग्निशिखा, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

संपादक : रवींद्र, अनुवेन

प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-६०५००२

संवादीय :

यह अंक

मृत्युके बारेमें हर मनुष्यकी धारणा भिन्न होती है। चक्रवस्त कहते हैं :

जिन्दगी क्या है अनसिरका जुहरे तरतीब

मौत क्या है इन्हीं अजजाका परेशां होना

जो जीवन-संघर्षसे थक गये हैं, हताश हो गये हैं, उन्हें मृत्यु विग्राम करनेका, जीवन-युद्धसे पलायनका एक उपाय दीखती है।

अधिक समझदार व्यक्तिको मृत्यु एक मित्र-सी प्रतीत होती है जो यात्राके अन्तमें उनका स्वागत करती है।

कई मृत्युको एक रहस्य मानते हैं। उन्हें उसमें साहसिकों, वैज्ञानिकों-सी रुचि होती है। वे जानना चाहते हैं कि मृत्यु क्या है, देह छोड़नेके बाद मनुष्य कैसा अनुभव करता है, उसकी क्या गति होती है।

जीवनसे संतुष्ट व्यक्ति मृत्युसे अधिक डरता है। यह उमंगभरा संसार, जो इंद्रियोंकी सुखद अनुभूतियां, इन सबके छूटनेका उसे डर लगा रहता है। प्रिय जनोंके वियोगके विचार मात्रसे वह व्याकुल हो जाता है।

समीके लिये मृत्यु एक रहस्य और पहेली तो है ही क्योंकि कोई लौटकर हमें यह नहीं बता पाता कि उस ओर क्या है।

कई विचारक मानते हैं कि मृत्यु तभी आवश्यक होती है जब मनुष्य बढ़ना बन्द कर देता है। और तब ह्लासकी क्रिया शुरू होती है जिसकी अन्तिम परिणति है मृत्यु।

तो हम मृत्युको किस दृष्टिसे देखें ?

हमें न तो मृत्युसे भय खाना चाहिये, न उसका स्वागत करना चाहिये और न उसके प्रति रुग्ण उत्सुकता रखनी चाहिये। जीवन-प्रत्येक क्षणको अत्यधिक सजगतासे जीना चाहिये ताकि मृत्यु हमसे यथासंभव दूर रहे।

— अनुबेन

मृत्यु क्यों

मृत्यु क्यों होती है ?



जिन लोगोंमें चेतना जरा भी जागी है उन सबने अपने जीवनमें कम-से-कम एक बार तो यह प्रश्न किया ही है। हर सत्ताकी गहराईमें जीवनको लंबा करनेकी, विकसित करनेकी उसे स्थायी और अमर करनेकी ऐसी आवश्यकता पैठी हुई है कि मृत्युका संपर्क एक धक्का देता है, एक जुगुप्सा पैदा करता है। कुछ कोमल लोगोंमें इसके प्रति भय और घृणा उत्पन्न होती है और कुछमें क्रोध जागता है। आदमी पूछता है यह क्या विकराल विडंबना है जिसमें हमें बिना चाहे, बिना समझे भाग लेना पड़ता है। पैदा ही क्यों हुआ जाय यदि मरना ही है? विकास प्रगति, क्षमताओंके विकासके लिये इतना प्रयास किसलिये यदि उसका अन्त क्षीणता और ह्रास और सड़ांध ही हो? कुछ लोग कठोर दीखनेवाली नियतिके आगे चुपचाप हथियार डाल देते हैं, कुछ विद्रोह करते हैं और अगर कम मजबूत हों तो निराश होते हैं और हमेशा वह-के-वही प्रश्न सामने आते रहते हैं। अगर कोई सचेतन इच्छा-शक्ति इस सबके पीछे है तो वह दुष्टतापूर्ण माना जाती है।

श्रीअरविंद हमें बताते हैं कि जड़द्रव्यकी चेतनामें पूर्णता और प्रगतिकी आवश्यकता जगानेके लिये मृत्यु एक अनिवार्य साधन है। इसके बिना प्राणी जिस अवस्थामें है उसीमें अनन्त कालतक संतुष्ट बने रहते।

इसके अतिरिक्त, हम जानते हैं कि हर चीज हमेशा विकसित होती और प्रगति करती रहती है, अर्थात्, सारी सृष्टि, सारा विश्व एक पूर्णताकी ओर विकसित होता जा रहा है, लेकिन जैसे-जैसे इससे प्रगति होती है, पूर्णता हटती जाती है क्योंकि जो चीज एक समय पूर्ण मालूम होती थी वही आगे चलकर पूर्ण नहीं लगती। ज्ञानाकी अवस्थाएं, जो चेतनाकी अत्यन्त सूक्ष्म अवस्थाएं हैं, प्रगति-की इसी धारापर इसी गतिसे चलती रहती हैं। जो अवस्थाएं जितनी सूक्ष्म हैं उनकी प्रगतिकी लय भागवत विकासके उतने ही पास पहुंचती हैं। लेकिन भौतिक जगत् स्वभावसे ही अनम्य है। उसमें रूपांतर धीमा, बहुत धीमा होता है और समयके मापसे जिस तरह मानव चेतना उसे आंकती है, उससे तो लगभग अगोचर ही होता है। इसलिये बाहरी और भीतरी गतिमें हमेशा ही संतुलनका अभाव रहता है। यह संतुलनका अभाव, प्रगतिके साथ बाहरी रूपका साथ न दे सकना, ही विघटन और रूप-परिवर्तनको बाहरी बनाता है।

फिर भी यदि हम इस भौतिक तत्त्वमें पर्याप्त चेतना अनुप्राणित कर सकें, जिससे उसके विकासकी लय सूक्ष्म भागोंके साथ ताल-मेल रख पायें और अगर वह इतना सुनम्य बन जाय कि आन्तरिक प्रगतिका साथ दे सकें तो संतुलन नहीं बिगड़ेगा और मृत्यु आवश्यक न रहेगी।

तो इस समय यह हमारा काम है — उनका जो इस बारेमें कुछ अधिक जानते हैं — कि जहांतक हमसे बन सके आवश्यक रूपांतर लें। इसके लिये हमें शक्तिका, चेतनाका और उस नयी शक्ति-का आह्वान करना होगा जो जड़ पदार्थमें ऐसे स्पन्दन अनुप्राणित कर सकती है जो उसे रूपांतरित कर सकें, उसे सुनम्य, लचीला और प्रगतिशील बना सकें।

*



धरतीके सभी प्राणियोंके साथ मृत्यु तथ्यके रूपमें लगी है। लेकिन प्रकृतिने उसे जो मौलिक अर्थ दिया था मनुष्य उसे उससे भिन्न अर्थमें समझता है। मनुष्य और उसके धरातलके नजदीकके जानवरोंमें मृत्युने उनकी चेतनाके लिये एक विशेष रूप और अर्थ ले लिया है। लेकिन इस निम्न प्रकृतिमें जो अवचेतन ज्ञान मृत्युको सहारा देता है वह है नया बनाने, परिवर्तन करने और रूपांतर करनेकी आवश्यकताका भाव।

धरतीपर भौतिक द्रव्यकी अवस्थाने ही मृत्युको अनिवार्य बनाया है। भौतिक तत्त्वके विकासका सारा अभिप्राय है निश्चेतनाके पहले स्तरसे अधिकाधिक चेतनाकी ओर विकास। और विकासकी इस प्रक्रियामें, जैसे-जैसे चीजें रूप लेती गयीं, रूपोंका विघटन एक अनिवार्य आवश्यकता बनता गया। सुव्यवस्थित व्यक्तिगत चेतनाको सहारा देनेके लिये एक निश्चित रूपकी जरूरत हुई और फिर रूपों इस दृढ़ताने ही मृत्युको अनिवार्य बना दिया। द्रव्यको रूप धारण करने थे। उसके बिना व्यक्तित्व न बनता और जीवन-शक्तियों या चित्शक्तियोंका ठोस मूर्तरूप लेना असंभव होता और इनके बिना भौतिक स्तरपर संगठित जीवनकी प्रारंभिक शक्तें ही पूरी न हो पातीं। लेकिन एक निश्चित और ठोस रूपके अन्दर एकदम ठोस कठोर और पत्थर जैसा बननेकी प्रवृत्ति होती है। व्यक्तिगत रूप बहुत अधिक बंधनकारी सांचा होता है, वह शक्तियोंकी गतियोंका साथ नहीं दे सकता। वह वैश्व गतिके साथ ताल-मेल रखते हुए उत्तरोत्तर बदल नहीं सकता। वह प्रकृतिकी मांगको लगातार पूरा नहीं कर सकता और न उसके साथ कदम मिलाकर चल सकता है। वह धारासे अलग हो जाता है। रूप और उसपर दबाव डालनेवाली शक्तिमें बढ़ती हुई असंगति और असामंजस्यका एक ऐक्य बिन्दु आता है जहां रूपका पूरी तरहसे विघटन अनिवार्य हो जाता है। एक नये रूपका निर्माण जरूरी हो जाता है, एक नये सांचे



सत्य और समस्वरताको संभव बनाना जरूरी होता है। मृत्युका सच्चा अर्थ यही है और प्रकृतिमें उसका यही उपयोग है। लेकिन अगर रूपको अधिक तेज और नमनशील बनाया जा सके, अगर तरीके कोषाणुओंको बदलती हुई चेतनाके साथ बदलनेके लिये जगाया जा सके तो इस कठोर विघटनकी जरूरत न रहेगी और मृत्यु अनिवार्य न रह जायगी।

*



कभी-कभी जब लोग मरने लगते हैं तो उन्हें पता लग जाता है कि वे मरनेवाले हैं। वे मृत्युदूतसे चले जानेके लिये क्यों नहीं कह देते?

ओहो, यह व्यक्तिपर निर्भर है। दो चीजें जरूरी हैं। पहले यह कि तुम्हारी सत्तामें कोई भी चीज, सत्ताका कोई भी हिस्सा मरना न चाहता हो। ऐसा बहुधा नहीं होता। तुम्हारे अन्दर हमेशा ही एक पराजयवादी रहता है, कोई ऐसा भाग जो डर गया है, कुछ चीज जो एकदम तंग आ गयी है, कोई चीज जो खिंची हुई है, कोई चीज जो आलसी है, कोई चीज जो संघर्ष नहीं करना चाहती और कहती है, "अच्छा है, खतम होने दो, जो, अच्छा ही है।" बस, इतना काफी है और तुम मर जाते हो।

लेकिन यह एक तथ्य है, अगर तुम्हारे अन्दर कोई चीज, कोई चीज मरना स्वीकार नहीं करती तो तुम नहीं मरोगे। मरनेके लिये, हर एकके जीवनमें एक क्षण ऐसा आता है, शायद क्षण-भर भी सौवां हिस्सा जब वह मरनेके लिये अपनी स्वीकृति दे देता है। अगर यह स्वीकृतिका क्षण न हो तो वह नहीं मरता।

मैं ऐसे लोगोंको जानती थी जिन्हें शरीर और प्राणके सभी नियमोंके अनुसार मर जाना चाहिये था। लेकिन उन्होंने इनका कर दिया। उन्होंने कहा, 'नहीं, मैं नहीं मरूंगा' और वे जीते रहे। दूसरी ओर जिनके मरनेकी कोई जरूरत न थी पर वे दूसरी तरहके थे जो कहते हैं, 'आह, चलो, अच्छा ही है, किस्सा खतम होगा' और वे खतम हो गये। केवल इतना ही, इससे ज्यादा कुछ नहीं, तुम्हारे अन्दर सतत इच्छाकी भी जरूरत नहीं है, तुम्हें, बस, इतना ही कहना है, 'हां, बस, काफी हो चुका' और खेल खतम हो जाता है। तो सचमुच ऐसा ही होता है। जैसा तुम कहते हो, हो सकता है कि मृत्यु तुम्हारे सिरहाने खड़ी हो और तुम उससे कह दो मुझे तुम्हारी जरूरत नहीं है, चली जाओ और वह जानेके लिये बाधित होगी। लेकिन सामान्यतः लोग झुक जाते हैं। (मृत्यु को दूर रखनेके लिये) व्यक्तिको संघर्ष करना चाहिये, व्यक्तिको मजबूत होना चाहिये, व्यक्तिको साहसी और सहनशील होना चाहिये, व्यक्तिको जीवनकी आवश्यकतापर महान् श्रद्धा होनी चाहिये, उसे हरणके लिये किसीको यह विश्वास हो कि उसे अभी कुछ काम करना है, उसे वह करना ही चाहिये। लेकिन इस बातका विश्वास किसे है कि उसके अन्दर कहीं भी ऐसे पराजयवादीका अंश भी नहीं है जो हथियार नहीं डाल देता और, 'अच्छा ठीक है', नहीं करता देता? यहींपर (अपने सभी भागोंको) एक बनानेकी जरूरत है।

मृत्युके बाद क्या होता है



जब-जब अन्तरात्मा जन्म लेती है तो उसके पिछले विकास और भावी आवश्यकताओंके अनुसार विश्व-प्रकृतिकी सामग्रीमेंसे उसके लिये मन, प्राण, और शरीरका निर्माण किया जाता है।

जब शरीरका विघटन हो जाता है तो प्राण प्राणमय जगत्में चला जाता है और कुछ समय वहां रहता है परन्तु कुछ समयके बाद प्राणमय कोष विसर्जित हो जाता है। सबसे अन्तमें विसर्जन होता है मनोमय कोषका। अन्तमें अन्तरात्मा या चैत्य-पुरुष नये जन्मतक विश्राम करनेके लिये चैत्य जगत्में चला जाता है।

साधारण विकसित लोगोंका यह साधारण मार्ग है। हर व्यक्ति-की प्रकृति और उसके विकासके अनुसार इसमें हेर-फेर होते रहते हैं। उदाहरणके लिये यदि मन खूब विकसित हो तो मनोमय सत्ता शकी रह सकती है, इसी तरह प्राणमय सत्ता भी रह सकती है लेकिन शर्त यह है कि वे सच्चे चैत्य-पुरुषके द्वारा, और उसके चारों ओर संगठित हों। तब वे भी चैत्य अमरतामें भाग लेते हैं।

अन्तरात्मा अपने जीवनके अनुभवोंके आवश्यक तत्वोंको इकट्ठा करती है और उन्हें अपने विकासका आधार बनाती है। जब वह जन्मकी ओर लौटती है तो अपने साथ मन, प्राण और भौतिक कोष तथा अपने कर्मका उतना भाग ले लेती है जो उसके नये जीवनमें अनुभवोंको आगे बढ़ानेके लिये जरूरी है।

श्राद्ध आदि अनुष्ठान सत्ताके प्राणमय भागके लिये किये जाते हैं ताकि वह उन प्राणिक स्पन्दनोंसे छुटकारा पा सके जो उसे धरती पर प्राणमय जगत्के साथ बांधे रखते हैं, ताकि वह जल्दीसे चैत्य गतिमें विश्राम पा सके।

*



हमारे अन्दर सत्ताके बहुत-से स्तर हैं और हर स्तरका अपना जीवन होता है। उन सबको एक शरीरके अन्दर इकट्ठा कर दिया जाता है और जबतक शरीर रहता है, वे सब उस शरीरके द्वारा काम करते हैं और इससे तुम्हें लगता है कि एक ही व्यक्ति है, एक ही सत्ता है। लेकिन सचमुच बहुत-सी सत्ताएं होती हैं और विशेषरूपसे केन्द्रीकरण भिन्न-भिन्न स्तरोंपर होता है। तुम्हारी एक प्राणिक सत्ता होती है, तुम्हारी एक मानसिक सत्ता होती है, तुम्हारी चैत्य सत्ता होती है इनके सिवा और भी बहुत-सी सत्ताएं और उनके बीच सब प्रकारकी संभव मध्यस्थ सत्ताएं होती हैं। यह है जरा जटिल और शायद तुम न समझ पाओ। मान लो कि तुम इच्छा, भावावेश और आवेगका जीवन जी रहे हो तो तुम्हारे अन्दर प्राणिक सत्ताका जोर होता है लेकिन अगर तुममें आध्यात्मिक प्रयास, गहरी सद्भावना, निःस्वायत्तके साथ मिला करनेकी भावना, प्रगति करनेकी इच्छा हो तो तुम्हारे जीवनमें चैत्य प्रधान होता है। फिर जब तुम अपना शरीर छोड़नेको होते हो तो ये सब सत्ताएं बिखरने लगती हैं। हां, अगर तुम योगमें बहुत आगे बढ़े हुए हो और अपनी सत्ताको भागवत केन्द्रके चारों ओर इकट्ठा करके एक कर चुके हो तो ये सत्ताएं एक साथ बंधी रहती हैं। अगर तुम इन्हें एक नहीं कर सके हो तो मृत्युके समय ये सब बिखर जायेंगी और हर एक अपने-अपने क्षेत्रमें जा मिलेगी। उदाहरणके लिये प्राण सत्ताको लो तुम्हारी विभिन्न इच्छाएं अलग-अलग हो जाती हैं और हर एक स्वतन्त्र रूपसे अपनी पूर्तिकी ओर दौड़ती है क्योंकि इस अवस्थामें उन्हें बांधे रखनेके लिये शरीर नहीं होता। लेकिन अगर तुम अपनी चेतनाको चैत्य चेतनाके साथ एक कर लिया तो मरते वक्त तुम अपनी चैत्य-चेतनाके बारेमें सचेतन रहोगे और चैत्य-सत्ता चैत्य जगत्में लौट जायेगी जो आनन्द, सुख, शान्ति, शमन और विकसित होते हुए ज्ञानका प्रदेश है। अगर तुम इसे स्वर्ग कहना चाहो तो

कह लो, यह ठीक है क्योंकि वास्तवमें तुम जिस प्रमाणमें अपने चैत्यपुरुषके साथ एक हो गये हो उसी प्रमाणमें इसके बारेमें सचेतन तथा इसके साथ एक हो सकते हो और यह अमर है और अमर प्रदेशमें अपना जीवन जीनेके लिये या पूरे सुख-चैनसे रहनेके लिये जाता है। अगर तुम उसे स्वर्ग कहना चाहो तो स्वर्ग कह लो अगर तुम अच्छे हो, अगर तुम अपनी चैत्य सत्ताके बारेमें सचेतन हो और उसीमें निवास करते हो, तो जब तुम्हारा शरीर मरेगा तो तुम अपनी चैत्य-सत्ताके साथ चैत्य-क्षेत्रमें, वहांकी आनन्दमय अवस्थामें आराम करनेके लिये चले जाओगे।

लेकिन अगर तुम अपने प्राणमें ही रहे हो, आवेगमय प्राणमें वहां हर आवेग अपने-आपको इधर-उधर चरितार्थ करनेका प्रयास करता रहता है...। उदाहरणके लिये एक कंजूस जिसकी सारी एकाग्रता उसके धनपर ही होती है, वह जब मरता है तो उसके प्राणका वह भाग जिसे धनमें ही रस था, वहीं चिपका रह जाता है और अपने धनकी निगरानी करता रहता है ताकि उसे कोई ले न जाय। लोग उसे देख नहीं सकते पर वह वहां रहता जरूर है और उसके प्यारे धनको कुछ हो जाय तो वह बहुत दुःखी होता है। एक स्त्रीको अच्छी तरह जानती थी जिसके पास धन भी था और बच्चे भी। उसके पांच बच्चे थे, और एक-से-एक बढ़कर किजूल खर्च। स्त्री धन इकट्ठा करनेमें जितनी सावधानी बरतती थी, उतनी ही सावधानीसे वे उसे फेंकते जाते थे, वे बिना सोचे-समझे खर्च करते थे, जब बेचारी बुढ़िया मरी तो वह मेरे पास आयी और उसने कहा, 'लो, वे मेरा सारा धन उड़ाये डाल रहे हैं। और वह बेहद दुःखी थी। मैंने उसे कुछ सान्त्वना दी। उसे यह समझानेमें मुझे काफी कठिनाई हुई कि वह अपने धनको अव्ययसे वचानेके लिये उसपर पहरा न देती रहे।

अगर तुम पूरी तरह अपनी भौतिक चेतनामें ही रहते हो (यह कठिन, क्योंकि आखिर तुम्हारे अन्दर भावनाएं और विचार तो

होते ही हैं) लेकिन अगर तुम शुद्ध रूपसे भौतिक चेतनामें रहते हो तो जब भौतिक सत्ता गायब होती है तो उसके साथ-ही-साथ तुम भी गायब हो जाते हो। बस, खेल खतम... रूपकी एक आत्मा होती है, तुम्हारे शरीरकी एक आत्मा होती है जो मृत्युके सात दिन बादतक बनी रहती है। डाक्टर घोषणा कर देते हैं कि तुम मर गये लेकिन तुम्हारे रूपकी आत्मा जिन्दा है, केवल जिन्दा ही नहीं, अधिकतर उदाहरणोंमें सचेतन भी होती है। यह सात-आठ दिन रहती है और फिर विलीन हो जाती है। मैं यहां योगियोंकी नहीं, साधारण आदमियोंकी बात कर रही हूं। योगियोंके लिये कोई नियम नहीं होता, वे एकदम अलग होते हैं, उनकी दुनिया निराली होती है। मैं तुमसे साधारण लोगोंकी बात कह रही हूं जो साधारण जीवन बिताते हैं। इन लोगोंके साथ यह होता है।

इसलिये निष्कर्ष यह है कि अगर तुम अपनी चेतनाको सुरक्षित बनाये रखना चाहते हो तो ज्यादा अच्छा है कि तुम अपनी सत्ताके अमर भागपर केंद्रित रहो, वरना वह ज्वालाकी तरह हवामें उड़ जायेगी। और वह बड़े सौभाग्यकी बात है क्योंकि अगर कहीं इसके विपरीत होता तो शायद ऐसे देवता या उच्चतर मनुष्य होते जो भौतिक कल्पना-जगत्की तरह स्वर्ग और नरक बना लेते जहां वे तुम्हें बन्द कर देते। तुम उन्हें खुश या नाखुश करके उसके अनुसार स्वर्ग या नरकमें बन्द किये जाते और यह बड़ी नाजुक स्थिति होती, सौभाग्यसे ऐसा नहीं है।

*

क्या आंतरिक सत्ता मृत्युके बाद प्रगति करती रहती है ?



यह बात पूरी तरहसे व्यक्तियोंपर निर्भर है। प्रत्येक व्यक्तिके लिये अलग बात होती है। ऐसे लोग होते हैं उदाहरणके लिये, लेखक, संगीतकार, कलाकार जो बौद्धिक ऊंचाइयोंपर रहते हैं, उन्हें यह ख्याल होता है कि उन्हें अब भी कुछ करना है, उन्होंने जो काम हाथमें लिया था उसे वे पूरा नहीं कर पाये, उन्होंने अपने लिये जो लक्ष्य निश्चित किया था, उसे नहीं प्राप्त कर सके। इसलिये जबतक हो सके तबतक धरतीके वातावरणमें अधिक-से-अधिक संलग्नताके साथ रहनेके लिये तैयार रहते हैं। वे दूसरे मानव शरीरोंमें प्रकट होकर अपनी प्रगतिको जारी रखना चाहते हैं। मैंने ऐसे बहुत-से उदाहरण देखे हैं। मैंने एक संगीतकारका बड़ा मजेदार उदाहरण देखा है। वह बहुत प्रतिष्ठित पियानो-वादक था जिसके हाथ कौशल, यथार्थता, सुस्पष्टता, शक्ति, गतिकी शीघ्रता आदिकी मूर्ति थे। वे सचमुच आश्चर्यजनक थे। यह श्रद्धा अपेक्षया युवावस्थामें ही मर गया। उसके अन्दर यह शक्ति थी कि अगर वह कुछ और जिन्दा रहता तो अपने संगीत-को अभिव्यक्त करनेमें प्रगति करता रहता। उसमें इतनी तीव्र शीघ्रता थी कि उसके सूक्ष्म हाथ नष्ट होनेसे बच गये। उसे अब कभी कोई जरा ग्रहणशील और निश्चेष्ट अच्छा संगीतज्ञ मिल जाता तो उसके हाथ इस बजानेवालेके हाथोंमें प्रवेश कर जाते थे। उस समय बजानेवाला चाहे साधारण तौरपर अच्छा बजाता हो तो भी इसके हाथोंके प्रवेशके कारण वह केवल एक अच्छे वादककी तरह ही नहीं बल्कि अद्भुत कलाकारकी तरह बजाने लगता था। दूसरेके हाथ उसके हाथोंका उपयोग करते थे। यह एक अद्भुत घटना है जिसे मैं जानती हूँ। यही चीज मैंने चित्रकारके बारेमें भी देखी है। वहां भी हाथोंकी ही बात

थी। कुछ लेखकोंके बारेमें भी यही बात है। वहां मस्तिष्क ठीक-ठीक रूप बनाये रहा और किसी ग्रहणशील मस्तिष्कमें प्रवेश करके, अचानक उस व्यक्तिकी पहलेकी लिखी हुई चीजोंकी अपेक्षा बहुत ज्यादा सुन्दर और असाधारण चीजें लिखवा देता था। मैंने इस प्रकारके मस्तिष्कको किसीको पकड़ते हुए देखा है। यह एक संगीत-रचयिता था, बजानेवाला नहीं, रचयिता। वीटहोवन, वाद्य सेजर फ्रांक आदि संगीत रचयिता थे (सेजर फ्रांक साथ ही संगीत-कार भी था)। संगीत-रचना बहुत ज्यादा बौद्धिक काम है। यहां एक बहुत बड़े संगीत-रचयिताका मस्तिष्क एक आपेरा लिखनेवाले-के मस्तिष्कके संपर्कमें आया और उससे अद्भुत रचना करवायी और सभी वाद्य विभागोंको कागजपर व्यवस्थित करवाया। वह आपेरा लिखनेमें लगा था और यह संगीतकारोंके लिये बहुत ही जटिल काम था क्योंकि उन्हें रचयिताके सभी विचारोंको अभिव्यक्त करना होता है। यह आदमी, जिसे मैं जानती थी, जब उसके अन्दर संगीत-रचना रूप लेने लगती थी तो वह अपने आगे एक कोरा कागज रख लेता था और सीधा लिखने लग जाता था। मैंने उसे लिखते हुए, लकीरें बनाते हुए देखा है। वह एक बड़ा, बहुत बड़ा पृष्ठ लेकर बैठ जाता था और जबतक पृष्ठके नीचेतक पहुंचता तबतक पूर्वरंग या किसी नाटकके अंकका संगीत-लेखन समाप्त हो जाता था। यहां संगीत-लेखनसे मतलब है संगीतकी पंक्तियोंको भिन्न-भिन्न यंत्रोंमें बांटना। यह सारा काम वह बड़ी आसानीसे, एक अद्भुत मानसिक शक्तिके द्वारा, सीधा कागजपर कर लेता था।

*



आत्मा क्या करेगी, कहां जायगी? यह सब इसपर निर्भर है कि उसने शरीर छोड़नेसे पहले क्या निश्चय किया था। भौतिक जीवनमें पूरी तरह संगठित और

एकीकृत सत्ताको अपने साथ रखनेकी यह क्षमता ही उसे सार्थक रूपमें यह चुननेका अवसर देती है कि आगे वह क्या करे। इस क्षेत्रमें भी भिन्न-भिन्न संभावनाएं रहती हैं। वह सचेतन रूपसे एक शरीरसे दूसरे शरीरमें सीधी जा सकती है। ऐसे उदाहरण हैं जिनमें ऐसी सत्ताने, जो पूरी तरहसे सचेतन और विकसित है, धीरे-धीरे दूसरी सत्ताको तैयार किया है ताकि वह उसे ग्रहण करने योग्य बन जाय और उसे आत्मसात् कर सके। शरीरसे बाहर आनेपर अपने भौतिक काममें कोई रुकावट न आने देनेके लिये सत्ता जाकर किसी और चैत्यपुरुषके साथ मिल जाती है और उसके अन्दर घुल-मिलकर एक हो जाती है और भौतिक शरीरसे जुड़ जाती है। यह एक चरम अवस्था और बहुत ही विरल है फिर भी यह एक ऐसी गुह्य विद्याका अंग है जो पूरी तरह परंपरागत है, या दूसरी चरम अवस्थामें वह एकदम दूसरे छोरपर जा सकता है जहां अपने शारीरिक जीवनके अनुभवोंको समाप्त कर चुकनेके बाद चैत्यपुरुष विश्राम करते हुए उन्हें आत्मसात् करना चाहता है और बादमें आनेवाले भौतिक जीवनकी तैयारी करता है। कभी-कभी इस 'बादमें' का मतलब बहुत बादमें भी हो सकता है। तब तो होता है वह यह है — यह बहुत-सी संभावनाओंमेंसे एक है : चैत्य पुरुष प्रत्येक क्षेत्रमें, सूक्ष्म भौतिक क्षेत्रमें, प्राणमय क्षेत्रमें, मानसिक क्षेत्रमें उन-उन क्षेत्रोंसे संबद्ध सत्ताएं छोड़ता जाता है लेकिन उनके साथ एक तरहकी कड़ी लगी रहती है; लेकिन इनमें से हर एक अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है; और स्वयं चैत्य पुरुष अपने निजी धाम चैत्य जगत्की वास्तविकतामें प्रवेश करता है और वहां अपने आनन्दमय विश्राममें आत्मसात् करनेके लिये रुक रहता है जबतक अपने सारे सुकृतोंको हजम करके आत्मसात् नहीं कर लेता और नये अनुभवोंके लिये तैयार नहीं हो जाता। उसके बाद अगर उसका काम अच्छी तरह हो गया है और अगर भिन्न क्षेत्रोंमें छोड़े हुए सत्ताके भाग या उसकी सत्ताके कोषोंने

उसी तरह कार्य किया है जैसा करना चाहिये तो जब वह नीचे आता है तो वह उन सब भागोंको जो उसके साथ पिछले जन्ममें रह चुके हैं, एकके बाद एक अपनाता जाता है और अपने ज्ञान और अनुभवकी समृद्धिके साथ नये शरीरमें प्रवेश करनेकी तैयारी करता है। हो सकता है कि यह सब सैकड़ों या हजारों वर्षोंके बाद हो क्योंकि उन क्षेत्रोंमें जो चीजें संगठित हो जाती हैं वे वियो-जन — जिसे हम मृत्यु कहते हैं — के नियमसे आवश्यक रूपसे बंधी नहीं रहतीं। जैसे ही कोई प्राणमय सत्ता पूरी समस्वरता पा लेती है, वह अमर हो जाती है। उसे विघटित करनेवाली, विलीन करनेवाली चीजें हैं उसकी आन्तरिक अव्यवस्था, यथायं रूपसे विघटन और विनाशकी प्रवृत्तियां। लेकिन अगर वह पूरी तरहसे सामंजस्य प्राप्त कर ले और संगठित हो जाय, या यूं कहें दिव्य बन जाय, तो वह अमर बन जाती है। मनके बारेमें भी यही बात है। यहांतक कि जिन सत्ताओंका पूर्ण विकास हो गया है और जो आध्यात्मिक शक्तियोंसे अनुप्राणित हो गयी हैं उनके सूक्ष्म भौतिक शरीरका (कारण शरीरका) भी मृत्युके बाद नष्ट होना निश्चित नहीं है। वह किसी क्रिया-कलापको जारी रख सकता है या प्रकृतिके किसी तत्त्वमें, साधारणतः किसी द्रव तत्त्वमें, पानी या पेड़ोंके रसमें या जैसा यहां लिखा है वादलोंमें स्वस्थ विश्राम कर सकता है। वह सक्रिय भी रह सकता है और भौतिक प्रकृतिके जड़ तत्त्वोंपर क्रिया जारी रख सकता है।

*



मृत्युके बाद एक ऐसा समय आता है जब जीव प्राण जगत्में जाता है और वहां कुछ समयतक रहता है। इस यात्राका केवल पहला भाग ही संकटपूर्ण या कष्टदायक हो सकता है; बाकी यात्रा तो जीव अपनी जीवनकालकी

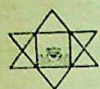
प्राणिक कामनाओं या प्रवृत्तियोंके अवशिष्ट अंशको विशेष वातावरण-
में रहकर चरितार्थ करता है। जैसे ही वह इन सबसे क्लान्त हो
जाता है और इनसे परे जानेमें समर्थ हो जाता है, वैसे ही उसका
प्राणिक कोश खिसक पड़ता है। उसके बाद जीवको कुछ मान-
सिक अवशिष्टांशोंसे मुक्ति पानेके लिये कुछ समयकी आवश्यकता
होती है और फिर वह चैत्य जगत्में जाकर विश्राम लेता है। जब-
तक पृथ्वीपर अगला जीवन धारण करनेका समय नहीं आ जाता
तब तक वहीं रहता है।

नरक, स्वर्ग और भूत



स्वर्ग और नरक प्रायः अन्तरात्माकी, बल्कि प्राणकी वे
काल्पनिक स्थितियां हैं जिनका निर्माण गुजर जानेके बाद
वह अपने चारों ओर कर लेता है। नरकका मतलब
है प्राणमय लोकमेंसे गुजरनेका कष्टदायक रास्ता या वहां कुछ देर
रहना, जैसा कि बहुत-सी आत्मघातकी घटनाओंमें होता है जहां
व्यक्ति ऐसे अस्वाभाविक और तीव्र गमनके कारण उत्पन्न कष्ट
और अशान्तिकी शक्तियोंसे घिरा रहता है। हां, मानसिक और
प्राणिक लोकमें ऐसे जगत् भी हैं जो आह्लादमय या अन्धकारमय
सुमूर्तियोंसे भरे हैं। मनुष्य अपनी प्रकृतिमें बनी हुई रचनाओंके
परिणामस्वरूप — जो आवश्यक संबन्ध पैदा कर देते हैं — ऐसे
जगत्से गुजर सकता है। लेकिन पुरस्कार और दण्डका विचार
क अनगढ़ और भद्दी धारणा है, लोक-मानसकी सामान्य भूल है।

*



भूतसे तुम्हारा क्या मतलब है ? प्रचलित भाषामें इस शब्दके अन्तर्गत बहुत-से पृथक्-पृथक् व्यापार आते हैं जिनमें परस्पर कोई अनिवार्य संबन्ध नहीं होता। उनमेंसे कुछ थोड़े-से व्यापारोंके नाम ये हैं :

१ — किसी मनुष्यकी अन्तरात्माके सूक्ष्म शरीरके साथ वास्तविक संपर्क जिसे किसी रूपके प्रकट होने या ध्वनिके सुनायी देनेके द्वारा हमारे मनपर अंकित किया जाता है।

२ — किसी दिवंगत मानव सत्ताके विचार और भावकी मानसिक रचना जिसकी छाप किसी स्थान या मुहल्लेके वातावरणपर पड़ी हो। यह रचना वहां घूमती रहती है या अपने-आपको दुहराती रहती है जबतक कि वह शेष नहीं हो जाती या किसी कारणसे विलीन नहीं हो जाती। कभी-कभी किसी हत्याके समयकी, उसके संबन्धकी या उसके पहलेकी घटनाओंके दृश्य किसी भूतके घरमें बार-बार दिखायी देते रहते हैं उनकी, और इसी प्रकारके जो बहुत सारे अन्य व्यापार होते रहते हैं उनकी, व्याख्या भी यही है।

३ — निम्नतर प्राणिक लोकोंकी कोई सत्ता जो किसी मृत मनुष्यके परित्यक्त प्राणिक कोषको या उसके प्राणिक व्यक्तित्वके किसी अंगको धारण कर लेती है और उस रूपमें प्रकट होती और कार्य करती है, और शायद उस व्यक्तिके ऊपरी विचारों और स्मृतियोंको भी साथ ले लेती है।

४ — निम्नतर प्राणिक लोककी कोई सत्ता जो किसी जीवित मनुष्यके माध्यमसे या किसी अन्य विधि या साधनसे पर्याप्त मूर्त आकार धारण कर लेती है और इस तरह प्रकट होती और कार्य करती है कि लोग देख सकें, इस तरह बोलती है कि लोग सुन सकें अथवा प्रकट हुए बिना वह स्थूल चीजोंको, जैसे मेज-कुर्सी आदिको, इधर-उधर हटाती है या चीजोंको स्थूल रूपमें प्रकट करती है या उन्हें एक जगहसे दूसरी जगह हटा देती है। इससे वे बातें

समझमें
पत्थर व
और ऐसे
(५)

हैं और
(६)

कार क

का ढोंग

(७)

जो उसी

सामने

तुम

का अस्ति

उत्पन्न हैं



सच नहीं

होता है

मैंसे को

कभी त

शक्तियां

ऐसी प्र

संस्पर्शमें

समझमें आ जाती है जिन्हें लोग कहते हैं — पेड़ोंपर रहनेवाले भूत, पत्थर बरसानेकी घटना, तंग करनेवाले और शोर करनेवाले शैतान और ऐसे ही बहुत-से अन्य जाने-सुने व्यापार।

५) ऐसी छाया-मूर्तियां जो मनुष्यकी अपनी ही रचनाएं होती हैं और इंद्रियोंको स्थूल रूपमें दिखायी देती हैं।

६) कुछ समयके लिये उन प्राणिक सत्ताओंका लोगोपर अधिकार कर लेना जो कभी-कभी उनके मरे हुए संबन्धी आदि होनेका ढोंग करती हैं।

७) मृत्युके समय लोगोद्वारा प्रक्षिप्त अपनी ही विचार-मूर्तियां जो उसी समय या कुछ घंटों बाद उनके मित्रों या संबन्धियोंके सामने प्रकट होती हैं।

तुम देखोगे कि इनमेंसे एक ही अवस्थामें, पहलीमें, अन्तरात्माका अस्तित्व माना जा सकता है और वहां कोई कठिनाई नहीं उत्पन्न होती।

*



स्वतःलेखन और प्रेतात्माओंको बुलानेकी बैठकें बहुत मिली-जुली होती हैं। उनमें कुछ तो माध्यमके और कुछ बैठनेवालोंके अवचेतन मनसे आता है। परंतु यह सच नहीं है कि सब कुछ नाटकीय कल्पना और स्मृतिका ही खेल होता है। कभी-कभी ऐसी बातें आती हैं जिन्हें विद्यमान व्यक्तियोंमेंसे कोई भी नहीं जान सकता या याद रख सकता था; कभी-कभी तो (हालांकि ऐसा बहुत कम होता है) भविष्यकी भी बातें मिलती हैं। किन्तु सामान्य तौरपर ये बैठकें मनुष्यको ऐसी प्राणिक सत्ताओं और शक्तियोंके, बहुत ही नीचेके लोकोंके संस्पर्शमें ला देती हैं जो कि स्वयं ही अन्धकारपूर्ण, असंगतिपूर्ण या

छल-कपटसे पूर्ण होते हैं और उनके साथ संबन्ध रखना या उनके किसी प्रभावके अधीन होना खतरनाक होता है। आउस्पेंसकी और अन्य लोग इन परीक्षणोंमेंसे अत्यधिक 'गणितज्ञ' बुद्धिके साथ गुजरे होंगे और निस्संदेह उनका यह ढंग ही उनका रक्षक था पर साथ ही उसने उनके अर्थको ऊपरी बौद्धिक दृष्टिसे देखनेके सिवा और किसी बड़ी दृष्टिसे नहीं देखने दिया।

*

मृतकोंकी रक्षा कैसे की जाय



अपनी स्त्रीकी दारुण मृत्युसे जरूर ही तुम्हें जो घक्का लगा होगा, उसे मैं भली-भांति समझ सकता हूं। किंतु तुम अब सत्यकी खोज कर रहे हो और साधक हो। तुम्हें अब अपने मनको मानव-प्राणीकी सामान्य प्रतिक्रियाओंसे ऊपर उठा लेना होगा और चीजोंको एक महत्तर और विशालतर प्रकाशमें देखना होगा।

अपनी मृत स्त्रीको इस रूपमें देखो कि वह एक आत्मा थी जो अज्ञानके जीवनके विपर्ययोंके बीच प्रगति कर रही थी, जिस प्रकार इस पृथ्वीपर अन्य सब कर रहे हैं। उस प्रगतिमें ऐसी घटनाएं होती हैं जो मनुष्यके मनको दुर्भाग्य प्रतीत होती हैं और हमारी इस लोककी अनुभूतिकी स्वल्प अवधिको, जिसे हम जीवन कहा करते हैं, अकाल में ही समाप्त कर देनेवाली आकस्मिक या अस्वाभाविक मृत्यु मनुष्यके मनके लिये विशेषतः दर्दनाक और दुर्भाग्यपूर्ण होती है। किंतु जो व्यक्ति बाहरी रूपके पीछे चला जाता है वह जानता है कि नाना अनुभवोंकी धाराएं प्रत्येक आत्माको उस मोड़की ओर ले

जा रही है जहाँसे वह अज्ञानसे निकलकर प्रकाशकी ओर जा सकता है, और आत्माकी प्रगतिमें जो कोई भी घटना होती है उसका इन अनुभवोंकी शृंखलामें अपना एक अर्थ होता है, एक आवश्यकता होती है और अपना एक स्थान होता है। वह जानता है कि देवी विधानमें जो कुछ भी होता है वह सबसे अधिक भलेके लिये ही होता है, भले ही मनुष्यके मनको वह भिन्न ही क्यों न लगे।

अपनी स्त्रीको ऐसी अन्तरात्माके रूपमें देखो जो जीवनकी दो अवस्थाओंके बीचके व्यवधानको पार कर गयी है। अपने विश्राम-स्थानकी ओर जानेकी उसकी यात्रामें उसकी सहायता करो। तुम अपने शान्त-स्थिर विचारोंके द्वारा तथा भागवत साहाय्यका आह्वान करके उसे यह सहायता पहुंचा सकते हो। अत्यधिक लंबे समय-तक किया गया शोक मृत व्यक्तिकी आत्माकी यात्रामें सहायता नहीं देता, बल्कि उसमें रुकावट ही डालता है। अपनी हानिकी चिन्ता मत करो, केवल उसके (अपनी स्त्रीके) आध्यात्मिक कल्याणकी बात सोचो।

*



मृत्युके समाचारको कैसे लिया जाय, विशेष रूपसे यदि किसी नजदीकी रिश्तेदारकी मृत्युका समाचार हो ?

परम प्रभुसे कहो, तेरी इच्छा पूरी हो और जितना संभव हो मेरे शांत रहो।

अगर जो व्यक्ति गया है वह तुम्हें प्रिय था तो उस व्यक्तिपर अपना प्रेम स्थिरता और शांतिमें केंद्रित करो। यही चीज गुजरे हुए व्यक्तिकी अधिक-से-अधिक सहायता कर सकती है।

*



यदि मरते समय प्राणमय सत्तापर प्राणमय जगत्में विरोधी शक्तियों या सत्ताओंका आक्रमण हो तो क्या वह कहीं आश्रय नहीं खोजती ?

हां, इसी कारण सभी देशों और सभी धर्मोंमें यह सलाह दी जाती है कि किसीकी मृत्युके बाद कम-से-कम सात दिनतक मृतक-को दत्तचित्त होकर याद किया जाय क्योंकि जब तुम प्रेमके साथ उसके बारेमें सोचते हो (किसी आंतरिक अव्यवस्था, रोने-धोने या उद्वेग या आवेशके बिना), उस समय तुम शांत रह सको तो तुम्हारा वातावरण उसके लिये एक तरहका दीपस्तम्भ बन जाता है। और जब उसपर विरोधी शक्तियोंका आक्रमण होता है (मैं यहां प्राण-मय सत्ताकी बात कर रही हूं, चैत्य-पुरुषकी नहीं जो विश्रामके लिये चला जाता है।) तो वह अपने-आपको खोया-खोया-सा अनुभव करता है, वह यह नहीं जान पाता कि उसे क्या करना चाहिये और अपने-आपको महान् संकटमें पाता है, तब वह सादृश्यके कारण उन लोगोंके प्रकाशको देखता है जो उसे प्रेमसे याद कर रहे हैं और वहां दौड़ा आता है। यह तो प्रायः हमेशा ही होता रहता है कि एक प्राणमय रचना, मृतकके प्राणका कोई भाग (और कभी-कभी पूरी प्राणमय सत्ता यदि वह सुसंगठित हो) अपनेसे प्यार करनेवालोंके या करनेवालेके वातावरणमें आश्रय लेता है। ऐसे लोग हैं जिनके वातावरणमें हमेशा ही किसी मृत व्यक्तिके प्राणका कुछ भाग रहता ही है। तथाकथित श्राद्ध-तर्पण आदिका यही सच्चा उपयोग है, यह न हो तो उनका कोई अर्थ नहीं।

*



व्यक्ति अपनी सद्भावना या गुह्य उपायोंसे — यदि उनका ज्ञान हो — दिवंगत आत्माओंकी सहायता कर सकता है। एक चीज है जो कभी नहीं करनी चाहिये और वह है दुःखके द्वारा या उत्कण्ठाके द्वारा उन्हें खींचे रखना या कोई ऐसा काम करना जो उन्हें घरतीके ज्यादा नजदीक खींचे या उनकी विश्राम-स्थलकी यात्रामें देर लगाये।

मृत्यु कठिनाइयोंका हल नहीं है



मृत्यु कोई हल नहीं है — बिल्कुल नहीं है। मृत्यु जन्म-मरणके अनन्त चक्रोंमें भट्टे और यांत्रिक ढंगसे लीटना है। जो चीज तुम एक जीवनमें सिद्ध नहीं कर पाये उसे दूसरे जीवनमें, साधारणतः कहीं अधिक कठिन परिस्थितियोंमें सिद्ध करना होगा।

*



मृत्यु वह बिल्कुल नहीं है जो तुम उसे समझते हो। तुम आशा करते हो कि मृत्युसे अचेतन विश्रामकी तटस्थ शान्ति मिलेगी। लेकिन ऐसा विश्राम पानेके लिये तुम्हें तैयारी करनी पड़ेगी।

मरकर तुम केवल अपना शरीर ही खोते हो, और उसके साथ ही भौतिक जगत्के साथ सम्बन्ध और उसपर क्रिया करनेकी क्षमता भी चली जाती है; पर भौतिक द्रव्यके सभाप्त होनेके साथ प्राणमय जगत्की सब चीजें गायब नहीं हो जातीं। तुम्हारी सभी इच्छाएं, आसक्तियां, लालसाएं सभी बनी रहती हैं और उनके साथ कुण्ठा और निराशा रहती है और ये चीजें तुम्हें अपेक्षित शान्ति नहीं पाने देतीं। शान्त

और घटना-शून्य मृत्युका आनन्द लेनेके लिये तुम्हें तैयारी करनी पड़ेगी। इच्छाओंका उन्मूलन ही एकमात्र प्रभावशाली तैयारी है।

जबतक हमारा शरीर है, हमें क्रियाशील रहना होगा, कुछ काम करना होगा। अगर हम कर्तव्य समझकर, परिणामकी लालसा-के बिना, उसे ऐसा या वैसा रूप देनेकी इच्छाके बिना, काम करते चलें तो हम उत्तरोत्तर अनासक्त होते जाते हैं और इस तरह अपने-आपको विश्रामपूर्ण मृत्युके लिये तैयार करते हैं।

*



यह निश्चय जानो कि मनुष्य जितने मूर्खतापूर्ण काम कर सकता है उनमें सबसे बढ़कर मूर्खतापूर्ण है आत्म-घात। शरीरका अन्त चेतनाका अन्त नहीं है। जो चीज तुम्हें जीते जी तकलीफ दे रही थी वह मरनेके बाद भी तकलीफ देती रहेगी। जीते जी मनको किसी और दिशामें मोड़नेकी संभावना रहती है मरनेपर वह भी नहीं रहती।

मृत्युके भयपर विजय



और आखिर अगर किसी-न-किसी कारणसे यह शरीर छोड़ना ही है और दूसरे शरीर धारण करने ही हैं तो क्या यह ज्यादा अच्छा न होगा कि मृत्युको एक घृणित पराजय बनानेकी जगह शानदार, प्रसन्नतापूर्ण उत्साहभरी चीज बना लिया जाय। जो लोग चिपके-रहते हैं, जो हर संभव उपायसे अन्तको — भले दो-एक मिनटके लिये ही क्यों न हो — टालनेकी कोशिश करते हैं और भयावनी पीड़ाका उदाहरण बनते हैं, वे

अपनी अन्तरात्माके प्रति सचेतन न होनेके कारण ही ऐसा करते हैं.....

अतः निष्कर्ष यह है :

कभी मृत्युके लिये इच्छा न करो

कभी मरनेका संकल्प न करो

कभी मौतसे न डरो

हर हालतमें अपना अतिक्रमण करनेका

(अपने-आपसे श्रेष्ठ बननेका) संकल्प करो ।

*



सामान्यतः, मानव-प्रगतिको रोकनेवाली सबसे बड़ी बाधा शायद भय है; भयके रूप विविध तथा असंख्य होते हैं, वह अपने-आपमें विरोध्युक्त, तर्कहीन, अनुचित और प्रायः दुद्धि-असंगत होता है। मृत्युका भय सब प्रकारके भयोंमें सबसे अधिक सूक्ष्म और हठी होता है। उसकी जड़ें अचेतनातक-में गहरी पैठी होती हैं और वहांसे उन्हें उखाड़ फेंकना आसान नहीं होता। प्रत्यक्ष ही यह भय कई मिश्रित तत्त्वोंसे बना होता है, ये चीजें हैं सुरक्षाकी भावना, आत्मरक्षाकी चिन्ता जिसका भाव होता है कि चेतनाका सूत्र लगातार सुनिश्चित रूपसे चलता रहे, अज्ञात-से पीछे हटना, अप्रत्याशित और अचित्यसे उत्पन्न उद्वेग और शायद इस सबके पीछे कोपाणुओंकी गहराईमें छिपी हुई यह सहज-भावना काम करती है कि मृत्यु कोई ऐसी वस्तु नहीं जिससे बचा न जा सके और यह भी कि यदि कुछ शर्तें पूरी की जा सकें तो उसपर विजय प्राप्त की जा सकती है, यद्यपि यह सत्य है कि स्वयं भय ही इस विजयके मार्गमें एक भारी बाधा है। कारण, हम उसीपर विजय प्राप्त कर सकते हैं जिससे हम डरते नहीं। और जो मृत्यु-में डरता है वह पहलेसे ही मृत्युके द्वारा विजित हो चुका है।

इस भयसे कैसे छुटकारा पाया जाय ? इसके लिये कई तरीके काममें लाये जा सकते हैं। किन्तु अपने इस प्रयासके प्रारंभमें ही कुछ सहायक मूलभूत विचारोंको जान लेना आवश्यक है। पहली और अत्यंत महत्त्वपूर्ण बात यह जान लेना है कि जीवन अविमाज्य और अमर है, बस, उसके रूप अनगिनत होते हैं और वे रूप ही क्षणिक तथा नाशवान् होते हैं। यह ज्ञान व्यक्तिको अपने मनमें निश्चित और स्थायी रूपमें जमा लेना चाहिये और यथासंभव अपनी चेतनाको उस नित्य जीवनके साथ एकात्म कर लेना चाहिये जो सब रूपोंसे स्वतंत्र है पर फिर भी अपने-आपको सब रूपोंमें अभिव्यक्त करता है। इससे हमें वह आवश्यक मनोवैज्ञानिक आधार मिल जाता है जहांसे समस्याका सामना किया जा सकता है, क्योंकि समस्या तो है ही न ! आंतरिक सत्ता यदि इतनी पर्याप्त मात्रामें आलोकित हो भी जाय कि वह सब भयोंसे ऊपर उठ जाय, तो भी शरीरके कोषाणुओंमें भय छिपा ही रहेगा, अस्पष्ट और स्वतः-चालित रूपमें, बुद्धिकी पकड़से परे, प्रायः निश्चेतन-सा। इन्हीं अन्धेरी गहराइयोंमेंसे उसे ढूंढ़ निकालना होगा, पकड़ना होगा और उसपर चेतना तथा विश्वासका प्रकाश डालना होगा।

जीवनकी मृत्यु तो नहीं होती, रूप अवश्य विघटित हो जाते हैं और शारीरिक चेतना इसी विघटनसे भय खाती है। फिर भी, रूप लगातार परिवर्तित होते रहते हैं और कोई भी वस्तु इस परिवर्तनको प्रगतिशील होनेसे नहीं रोक सकती। यह प्रगतिशील परिवर्तन ही इस बातको संभव कर सकता है कि मृत्यु अनिवार्य न हो। पर यह कार्य है कठिन, और इसकी शर्तें बहुत कम लोग पूरी कर सकते हैं। इस प्रकार, मृत्युके भयपर विजय प्राप्त करनेकी विधि व्यक्तिके स्वरूप या उसकी चेतनाकी अवस्थाओंके अनुसार, भिन्न-भिन्न होगी। इन विधियोंको चार प्रमुख श्रेणियोंमें बांट सकते हैं और प्रत्येक श्रेणीमें अनेक भेद-विभेद भी होंगे। सच तो यह है कि प्रत्येकको ही अपनी प्रणाली अपने-आप विकसित करनी होगी।

पहली विधि बुद्धिसे संबन्ध रखती है। यह कहा जा सकता है कि संसारकी वर्तमान अवस्थामें मृत्यु अनिवार्य है; प्रत्येक शरीर जो जन्म लेता है, एक-न-एक दिन अवश्य ही मृत्युको प्राप्त होगा; कभी-कभी सारी मृत्यु तभी आती है जब उसे आना होता है, उसकी घड़ीको न कोई टाल सकता है और न कोई जल्दी ही ला सकता है। जो चाहता है कि वह आये उसे कभी-कभी बहुत लंबे समयतक प्रतीक्षा करनी पड़ती है और जो उससे डरता है वह, सब सावधानियां वरतते हुए भी, अचानक उसका प्रास बन जा सकता है। मृत्युकी घड़ी अटल रूपमें नियत की हुई प्रतीत होती है, इसके अपवाद बहुत थोड़े-से ही लोग होते हैं जिनमें वे शक्तियां होती हैं जो कि साधारण मानव-जातिमें नहीं पायी जातीं। तर्क-बुद्धि यह सिखाती है कि जिस चीजसे बचा नहीं जा सकता उससे डरना मूर्खता है; उपाय एक ही है, वह यह कि इस विचारको स्वीकार कर लिया जाय और दिन-प्रतिदिन, क्षण-प्रतिक्षण मनुष्य वही करे जो वह अच्छे-से-अच्छा कर सकता है और इसकी चिन्ता न करे कि आगे क्या होगा। यह प्रक्रिया उन बुद्धिवादियोंके लिये अत्यंत फलदायक होती है जो बुद्धि-तर्कके नियमोंके अनुसार काम करते हैं। किंतु जो भावुक लोग अपनी भावनाओंमें निवास करते हैं और उन्हींके द्वारा संचालित होते हैं, उनमें यह कम फलप्रद सिद्ध होगी। इन लोगोंको दूसरी विधि अपनानी चाहिये, वह है अन्तःनिरीक्षणकी। सब भावोंसे परे, हमारी सत्ताकी नीरव और शांत गहराइयोंमें एक प्रकाश सदा प्रज्ज्वलित रहता है, यह अन्तरात्माकी चेतनाका प्रकाश है। इस प्रकाशको खोजो, इसपर एकाग्र होओ, यह तुम्हारे अन्दर ही है। दृढ़ संकल्पके द्वारा तुम निश्चय ही यह प्रकाश पाओगे और ज्यों ही तुम उसमें प्रवेश पाओगे त्यों ही तुम श्रमरताके भावके प्रति जागृत हो जाओगे। तुम अनुभव करोगे कि तुम सदा ही जीवित रहे हो और सदा ही जीवित रहोगे। अब तुम अपने शरीरसे पूर्णतया स्वतंत्र हो जाते हो, तुम्हारा चेतन

अस्तित्व उसपर आश्रित नहीं रहता। यह शरीर तो बहुत-से नाश-वान् रूपोंमेंसे एक है जिनके द्वारा तुमने अपने-आपको अभिव्यक्त किया है। तब मृत्यु विनाशकी अवस्था नहीं रहती, वह केवल एक संक्रमणकी अवस्था हो जाती है। समस्त भय तुरन्त भाग जाता है और तुम एक मुक्त पुरुषकी शांत निश्चितिके साथ जीवनमें आगे कूच करते हो।

तीसरी विधि उन लोगोंके लिये है जो भगवान्में, अपने भगवान्में श्रद्धा रखते हैं जिसे वे अपने-आपको समर्पित कर चुके होते हैं। ये लोग पूर्णतया उसीके होते हैं; उनके जीवनकी सभी घटनाएं भागवत इच्छाकी अभिव्यक्ति होती हैं, इन घटनाओंको वे केवल एक शांत समर्पण-भावसे ही नहीं बल्कि कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार करते हैं; क्योंकि उन्हें यह विश्वास रहता है कि जो कुछ भी उनके साथ घटता है वह सदा ही उनके भलेके लिये होता है। उन्हें अपने भगवान्में तथा उसके साथ अपने वैयक्तिक संबन्धमें एक प्रकारका गुह्य विश्वास होता है; उन्होंने अपनी इच्छा पूर्ण रूपसे भगवान्की इच्छाको अर्पित कर दी होती है और वे उसके उस अटल प्रेम और सतत संरक्षणको अनुभव करते हैं जो जीवन और मृत्युकी आकस्मिक घटनाओंसे एकदम अछूता रहता है। उनके अन्दर सदा यह अनुभूति रहती है कि वे पूर्ण आत्म-समर्पणके साथ अपने प्रियतमके चरणोंमें प्रणत हैं अथवा उसकी बांहोंमें आश्रय लिये हुए हैं और वहां पूर्ण सुरक्षाका आनन्द ले रहे हैं। उनकी चेतनामें भय, चिन्ता या दुःखके लिये जरा भी स्थान नहीं होता, इस सबका स्थान एक शांत और हर्षपूर्ण आनन्द ले लेता है।

किंतु प्रत्येकको गुह्यवेत्ता बननेका सौभाग्य प्राप्त नहीं होता। अन्तमें, कुछ लोग जन्मजात योद्धा होते हैं; जीवनको वे उसी रूपमें स्वीकार नहीं कर सकते जैसा कि वह है, अपने अन्दर वे अमरताके अधिकारका और इस धरतीपर ही पूर्ण अमरताके अधिकारका स्पन्दन अनुभव करते हैं। उनके अन्दर एक प्रकारका

सहज-ज्ञान होता है कि मृत्यु, वस, एक बुरी आदत है और ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने उसपर विजय प्राप्त करनेका निश्चय लेकर जन्म लिया है। पर इस विजयका अर्थ होता है भयंकर और सूक्ष्म आक्रमणकारियोंकी सेनाके विरुद्ध घोर युद्ध। हम कह सकते हैं ऐसा युद्ध जो हमेशा, हर क्षण लड़ना पड़ता है। इस मोर्चेपर आनेका खतरा उसीको उठाना चाहिये जिसमें इसके लिये अदम्य उत्साह हो। इस युद्धके कई मोर्चे हैं; यह कई स्तरोंपर होता है जो आपसमें एक-दूसरेसे मिले-जुले-से तथा एक-दूसरेके पूरक होते हैं।

पहला मोर्चा ही काफी भीषण होता है। यह उस सुझावके विरुद्ध मनका संग्राम है जो सामूहिक, अतिविशाल, अभिभूत और बाधित करनेवाला है, ऐसे सुझावके विरुद्ध जो सहस्रों वर्षोंके अनुभवपर आधारित है, प्रकृतिके एक ऐसे नियमपर आधारित है जिसका अभीतक कोई अपवाद नहीं दीखता। वह एक ऐसी हठीली मान्यताका रूप धारण कर लेता है : मृत्यु अनिवार्य है, इससे भिन्नकी आशा करना पागलपन है। इस बातमें सभी एकस्वर हैं और अभीतक तो किसी बड़े-से-बड़े विद्वान्ने भी इसके विरुद्ध अपनी आवाज उठानेका या भविष्यमें आशा देनेका जरा भी साहस नहीं किया है। और जहांतक धर्मोंकी बात है, अधिकतर धर्मोंने तो मृत्युके तथ्यको ही अपनी कार्य-शक्तिका आधार बनाया है, और वे कहते हैं कि यह भगवान्की इच्छा है कि मनुष्य मृत्युको प्राप्त हो, क्योंकि उसीने उसे नश्वर रूप बनाया है। इनमेंसे बहुत-से तो मृत्युको उद्धार, मुक्ति और कभी-कभी तो पुरस्कारका रूप भी दे देते हैं। वे यह उपदेश देते हैं कि सर्वोच्चकी इच्छाके आगे नत होकर मृत्युके विचारको बिना किसी विद्रोहके स्वीकार करो, और तुम्हें शान्ति और सुख मिलेगा। यह सब होते हुए भी मनको अपने विश्वासमें अटल रहना होगा, अपना संकल्प अटूट बनाये रखना होगा, किन्तु जिसने मृत्युपर विजय पानेका संकल्प कर लिया

है उसपर ये सब सुझाव कोई प्रभाव नहीं डालते; उसकी निश्चिति एक गहरे प्रत्यक्ष ज्ञानपर आधारित होती है।

दूसरा युद्ध होता है भावोंका, यह उस आसक्तिके विरुद्ध संग्राम है जो व्यक्तिकी अपनी बनायी हुई वस्तुओंके प्रति, अपनी प्रिय वस्तुओंके प्रति होती है। कठिन परिश्रमके परिणामस्वरूप और कभी-कभी तो कठोर प्रयत्नके फलस्वरूप तुमने अपना घर खड़ा किया है, अपने व्यवसाय, अपने सामाजिक, साहित्यिक, कलात्मक, वैज्ञानिक या राजनीतिक कार्यका निर्माण किया, तुमने एक ऐसे वातावरणकी सृष्टि कर ली जिसके तुम केंद्र हो और जिसपर तुम कम-से-कम उतना ही आश्रित होते हो जितना कि वह तुमपर होती है। तुम व्यक्तियोंके एक बड़े समूहद्वारा कुटुम्बियों, मित्रों, और सहकर्मियोंद्वारा घिरे रहते हो और जब तुम अपने जीवनके विषय-में सोचते हो ये सब तुम्हारी विचारधारामें तुम्हारे बराबर ही स्थान ग्रहण करते हैं, यहांतक कि यदि ये अचानक तुमसे दूर हटा दिये जायें तो तुम अपने-आपको खोया-खोया-सा अनुभव करने लगोगे मानों तुम्हारी अपनी सत्ताका एक बहुत महत्त्वपूर्ण भाग गायब हो गया हो।

इन सब वस्तुओंको छोड़नेका प्रश्न ही नहीं है, क्योंकि बड़ी हदतक इनमें तुम्हारी सत्ताके घरातलका, तुम्हारे अस्तित्वके लक्ष्यका निर्माण होता है। छोड़ने लायक चीज हैं इन चीजोंके प्रति आसक्ति ताकि तुम इनके बिना रहने योग्य हो सको। बल्कि, यदि ये तुम्हें छोड़ दें तो तुम अपने लिये नयी परिस्थितियोंमें और अनिश्चित समयके लिये नया जीवन फिरसे बनानेके लिये तैयार रह सको, क्योंकि अमरताका यही निष्कर्ष है। इस अवस्थाका अर्थ है सब कुछ अधिकतम ध्यान तथा सावधानीसे व्यवस्थित और संपन्न कर सकना, किन्तु साथ ही कामना और आसक्तिमात्रसे मुक्त रहना, क्योंकि, यदि तुम मृत्युसे बचना चाहते हो तो तुम्हें किसी भी नश्वर वस्तुसे बंधना नहीं चाहिये।

भावनाओंके बाद संवेदन आते हैं। यहां लड़ाई निर्मम होती है

और शत्रु दुर्जेय हो जाते हैं। वे तुम्हारी छोटी-से-छोटी दुर्बलता भी देख लेते हैं और वहीं आघात करते हैं जहां तुम अरक्षित होते हो। यहां विजय अस्थायी होती है और वह-की-वही लड़ाइयां अनिश्चित रूपसे बार-बार लड़नी पड़ती हैं; तुम जिस शत्रुको पराजित समझते हो वह बार-बार तुमपर चोट करनेके लिये उठ खड़ा होता है। यहां सुगठित चरित्रकी, अथक सहनशीलताकी आवश्यकता होती है ताकि समस्त पराजय, निराशा, अस्वीकृति और निरुत्साह-का तथा नित्यप्रतिके अनुभवों और पार्थिव घटनाओंके परस्पर-विरोधसे उत्पन्न अपरिमित क्लान्तिका सामना किया जा सके।

अब हम एक ऐसे युद्धपर आते हैं जो सब युद्धोंसे अधिक भीषण होता है अर्थात्, भौतिक स्तरका युद्ध, वह युद्ध जो शरीरमें लड़ा जाता है : क्योंकि यह युद्ध बिना अवकाश और बिना विश्रामके चलता रहता है। वह व्यक्तिके जन्मसे आरंभ होता है और तभी समाप्त होता है जब दोनों योद्धाओंमेंसे अर्थात्, रूपांतरकी शक्ति तथा विघटनकी शक्तिमेंसे किसी एककी पराजय हो जाय। मैं जन्मसे कहा है क्योंकि ये दोनों प्रवृत्तियां वस्तुतः उसी क्षणसे संघर्षरत हो जाती हैं जिस क्षण व्यक्तिके संसारमें आगमन होता है। यद्यपि सचेतन रूपमें तथा स्वेच्छासे यह संघर्ष काफी बादमें आरंभ होता है। क्योंकि, समस्त अस्वस्थता, व्याधियां, विकृतियां, यहां-तक कि दुर्घटनामें भी विघटनकी शक्तिके कार्यके परिणाम हैं, उसी प्रकार जसे उन्नति, सामंजस्यपूर्ण विकास, विरोधी आक्रमणोंका सामना, रोगसे मुक्ति, शरीरके सामान्य व्यापारोंका पुनः सुचारु रूपसे चलना, वे सभी सुधार जो प्रगतिमें सहायक होते हैं, रूपांतर शक्तिके कार्यके परिणाम होते हैं। बादमें जब चेतना विकसित होती है और युद्ध सचेतन हो जाता है तब वह दो विरोधी गति-विधियोंके बीच उन्नत प्रतिद्वंद्विताकी होड़का रूप ले लेता है — होड़का कि पहले कौन अपने लक्ष्यपर पहुंचेगा, रूपांतर या शत्रु। इसका अर्थ होता है सतत प्रयत्न करना, निरंतर एकाग्र

रहना — पुनर्जीवनकी शक्तिको नीचे उतारनेके लिये, इस शक्ति-
के प्रति कोषाणुओंकी ग्रहणशीलता बढ़ानेके लिये, विनाश और वि-
घटनकी शक्तियोंके संहार-कार्यके विरुद्ध पग-पग और चप्पे-चप्पेपर
युद्ध ठाननेके लिये, उसकी पकड़से उस सबको बाहर निकालनेके
लिये जो ऊर्ध्वमुखी प्रकृतिको प्रत्युत्तर दे सकता है, उसे आलोकित,
पवित्र तथा स्थिर करनेके लिये प्रयास करते रहना। यह संघर्ष
अन्धकारमय तथा दुराग्रहपूर्ण होता है और प्रायः ही इसका कोई
प्रत्यक्ष परिणाम नहीं होता; जो आंशिक और अनिश्चित विजय प्राप्त
होती है उसका भी कोई बाह्य संकेत नहीं मिलता, क्योंकि वही
काम पुनः पुनः करना होता है, आगे बढ़ाये हुए प्रत्येक कदमका
प्रायः यही अर्थ होता है कि कहीं और पीछे हटना पड़ा है और जो
कार्य आज हुआ है वह अगले दिन विनष्ट हो सकता है। वास्तव-
में विजय सुनिश्चित, पक्की और स्थायी तभी हो सकती है जब कि
वह सर्वांगपूर्ण हो। और इस सबमें समय लगता है; बहुत समय
लगता है; वर्षपर वर्ष निर्ममताके साथ निकलते जाते हैं और वि-
रोधी शक्तियोंका बल बढ़ता ही जाता है।

सारे समय चेतना पहरेदारकी भांति खाईमें खड़ी रहती है।
तुम्हें डटे रहना है, तुम्हें डटे रहना चाहिये चाहे जो कुछ भी मूल्य
क्यों न चुकाना पड़े, कुछ भी क्यों न हो, भयका एक भी कंपन
न उठे, चौकसीमें जरा भी ढील न हो। जो लक्ष्य पूरा करना
है उसमें, और तुम्हें प्रेरणा और सहारा देनेवाली ऊर्ध्वशक्तिकी
सहायतामें अटल विश्वास रखो। विजय उसको मिलती है जो
अत्यंत दृढ़ रहता है।

मृत्युके भयपर विजय पानेकी एक और विधि भी है, किंतु वह
इतने थोड़े-से लोगोंकी पहुंचके भीतर है कि वह केवल जानकारी-
के लिये ही यहां दी जा रही है। वह है जीवित रहते हुए मृत्यु-
के लोकमें स्वेच्छापूर्वक और सचेतन रूपसे प्रवेश करना और फिर
उस लोकसे पुनः अपने भौतिक शरीरमें वापस आ जाना, वहां

प्रवेश
ग्रहण
कर सब



नहीं,
मय न
शरीरका
लिये वे
विकार न
शेक इस
गता है
शरीर अ
नगर उस
नलेकी
वाद एक
गदत है
ही मृत्यु
कते हैं
अरे रूप
द्विकी
कानोंकी

प्रवेश करना और पूरे ज्ञानके साथ भौतिक जीवनके क्रमको पुनः ग्रहण करना। परंतु इस कार्यकी दीक्षा पाया हुआ मनुष्य ही इसे कर सकता है।

अमरता



अगर आदमी न मरें तो अवस्था बढ़नेपर उनके शरीर बेकार न हो जायेंगे ?

नहीं, नहीं, तुम गलत दिशामें देख रहे हो। जबतक शरीरका क्षय न हो वे नहीं मर सकते। वे मरते इसीलिये हैं क्योंकि उनके शरीरका क्षय हो जाता है, उनका शरीर बेकार हो जाता है इसीलिये वे मरते हैं। अगर उन्हें न मरना हो तो उनके शरीरको बेकार नहीं बनना चाहिये। यह एकदम उल्टी बात है। मृत्यु एक इसी कारण जरूरी होती है कि शरीर क्षीण होता है, बूढ़ा होता है और पूरी तरह अवगतिको प्राप्त होता है, लेकिन अगर शरीर आन्तरिक सत्ताकी प्रगतिशील गतिविधिका अनुसरण कर सके, अगर उसमें भी चैत्यपुरुषकी तरह प्रगति और पूर्णताका भाव हो तो मरनेकी कोई जरूरत न रह जायगी। यह जरूरी नहीं है कि एकके बाद एक आनेवाला वर्ष विकृति ही लाये। यह प्रकृतिकी एक आदत है। यह इस समय होनेवाली चीजकी आदत है। और ही मृत्युका ठीक कारण है। इसके विपरीत हम अच्छी तरह देख सकते हैं कि पूर्णताकी गति — जो जीवनका प्रारम्भ है — किसी ऐसे रूपमें चलती रहेगी। मैंने पहले ही कहा है कि हम निरन्तर विक्री कल्पना नहीं कर सकते, उससे तो कुछ समय बाद हमें जानोंकी ऊंचाई बदलनी पड़ेगी। ऊंचाईकी यह वृद्धि पूर्णताकी (शेष आवरण ३ पर)



Courage and love are the only indispensable virtues; even if all the others are eclipsed or fall asleep, these two will save the soul alive.

Sri Aurobindo



INDIAN TEA STORAGE AGENCY

24, Ganesh Chandra Avenue, Calcutta-700 013



द्विमें बदली जा सकती है — रूपकी पूर्णतामें — धीरे-धीरे रूपकी सभी वृष्टियां सुधारी जा सकती हैं, सभी दुर्बलताओंके स्थानपर बल और सभी अधमताओंकी जगह कौशलको लाया जा सकता है। ऐसा क्यों न हो? तुम इस तरहसे नहीं सोचते क्योंकि तुम्हें चीजोंको और तरहसे देखनेकी आदत पड़ गयी है। लेकिन कोई कारण नहीं कि ऐसा क्यों न हो...।

तुम्हें अन्ततक सामंजस्य और सुन्दरता बनाये रख सकती चाहिये। इसका कोई कारण नहीं कि तुम्हारा शरीर ऐसा हो जिसके रहनेका कोई तात्पर्य नहीं, क्योंकि तब वह किसी कामका न रहेगा और किसी कामका न रहनेके कारण ही उसे गायब हो जाना पड़ता है। तुम्हारा शरीर ऐसा हो सकता है जो पूर्णतासे पूर्णताकी ओर विकसित होता रहे। शरीरमें ऐसी बहुत-सी चीजें हैं जिन्हें देखकर तुम कह उठते हो, “काश, यह ऐसा होता, मैं इसे इस रूपमें देखना चाहूंगा” (यहां मैं चरित्रकी बात नहीं कर रही क्योंकि उसमें बहुत-सी ऐसी चीजें हैं जिन्हें बदलना चाहिये, मैं तुम्हारे भौतिक रूपकी बात कर रही हूं।) तुम कहीं असामंजस्य देखते हो और कह उठते हो “अगर यह असामंजस्य मिट जाय तो कितना अधिक अच्छा हो! ...” लेकिन तुम यह क्यों नहीं सोचते कि यह किया जा सकता है। अगर तुम चीजोंको विलकुल वस्तुपरक दृष्टिसे देखो — उस आसक्तिके साथ नहीं जो लोगोंको अपने छोटे-से व्यक्तित्वके लिये होती है — तुम अपने-आपको उस तरह देखो जैसे किसी और व्यक्तिको देखोगे और कहो, “लेकिन यह चीज तो उसके साथ पूरे सामंजस्यमें नहीं है” और अगर तुम और भी नज़रोंसे देखो तो बात और भी रोचक हो जाती है: तुम्हें पता लगता है कि यह असामंजस्य तुम्हारे चरित्रकी किसी वृष्टिका परिणाम है। तुम्हारे चरित्रमें कहीं कोई चीज विकृत या टेढ़ी-मेढ़ी है या पूरी तरह सामंजस्यवाली नहीं है, वही चीज तुम्हारे शरीरमें कहीं प्रकट होती है। तुम अपने शरीरमें उसे व्यवस्थित कर लो, उसका जाल लगाकर इस भौतिक असामंजस्यके स्रोततक पहुंचो। तुम्हें अपनी आंतरिक सत्ताके अन्दर वृष्टिको पकड़ना होगा, और तब उसका काम करना होगा, परिणाम आ जायगा।

तुम्हें मालूम नहीं है कि शरीर किस हदतक नमनीय है! एक दूसरे दृष्टिकोणसे मैं कहूंगी कि यह अत्यधिक कठोर है और इसी-लिये बिगड़ता है। लेकिन इसका कारण यह है कि हम उसका उपयोग करना नहीं जानते। जब हम नयी कोपलोंके रूपमें ही होते हैं तब यह नहीं जानते कि निर्दोष, घने सुन्दर प्रस्फुटनके लिये कैसे संकल्प किया जाय। दयनीय-सा चेहरा बनाकर अपने-आपसे यह कहनेकी जगह “कैसी दुःखकी बात है, मेरे हाथ इतने पतले हैं या मेरी टांगें बहुत लंबी हैं या मेरी पीठ सीधी नहीं है या मेरा सिर मुडौल नहीं है” — यह सब कहनेकी जगह आदमी कहेगा, “यह और तरहसे होना चाहिये, मेरी भुजाएं अनुपातके हिसाबसे होनी चाहिये, मेरा शरीर मुडौल होना चाहिये, मेरे अन्दर हर रूप एक उच्चतर सामंजस्यपूर्ण सौंदर्य प्रकट करे” — तब तुम सफल होगे। और तुम्हें सफलता मिलेगी यदि तुम जानो कि यह काम सच्चे, शांत, सतत संकल्पके साथ कैसे किया जाता है, ऐसे संकल्प-के साथ जो अधीर न हो, जो पराजयके आभासकी परवाह न करे, जो लगातार चुपचाप काम करे, शान्तिसे ऐसा करनेका संकल्प करे, अन्दरके कारणकी खोज करे, उसे ढूँढ़ निकाले और स्फूर्तिके साथ काम करे। जैसे ही तुम कहीं एक छोटे-से काले कीड़ेको देखो, जो देखनेमें अच्छा नहीं लगता, जो एक छोटा-सा, कुछ अप्रिय-सा घृणित दाग बनाता है, बस, उसे पकड़ लो, खींचकर बाहर फेंक दो और उसकी जगह शुद्ध ज्योति डालो। कुछ समयके बाद तुम देखोगे, “मेरे चेहरेपर जो असामंजस्य था वह जा रहा है, वर्बता-का चिह्न, चेहरेके भावमें जो निश्चेतना थी वह जा रही है।” और दस वर्ष बाद तुम अपने-आपको नहीं पहचान पाओगे।

तुम सब युवा जन यहां हो, तुम्हें इससे लाभ उठाना जानना चाहिये। स्वार्थभरे, मूर्खतापूर्ण क्षुद्र कारणोंके लिये नहीं बल्कि सौंदर्यके प्रेमके लिये, सामंजस्यकी आवश्यकताके लिये।



उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि

अखिल भारतीय पत्रिका

अग्निशिखा

श्रीअरविंद सोसायटीकी मासिक पत्रिका

सितंबर १९८१

वर्ष १२, अंक २, पूर्णांक १३४

विषय-सूची

सम्पादकीय : अध्ययन

श्रीमानुवाणीसे :

प्रार्थना

अध्ययन

परीक्षा

मानाजीकी बातचीतपर आधारित :

अज्ञानके मूलमें

हकीम साहब पहले अपना इलाज करो

स्वाभाविक शरीर

कालका मानदण्ड

अनुभूति भूमिका

सूची उदारता

धार्मिक अनुभूतिकी विविधता

महाराज परीक्षित (कहानी)

अनुबेन

पत्रिकाको सुचारु रूपसे चलानेके लिये आपकी सहायता जरूरी है। अपने परिचितोंमें इसके आजीवन सदस्य या सामान्य प्रादक बनाकर हमारी सहायता करें। धन्यवाद।

अग्निशिखा वार्षिक : ८.००

आजीवन १२५.००

पुरोधा " १०.००

" १७५.००

पत्र, चेक ड्राफ्ट, आदि भेजनेका पता :

संपादक अग्निशिखा, श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

संपादक : रवींद्र, अनुबेन

प्रकाशक : श्रीअरविंद सोसायटी, पांडिचेरी-६०५००२

मुद्रक : अमियरंजन गांगुली, श्रीअरविंद आश्रम प्रेस, पांडिचेरी-६०५००२

अप्यादकीय

अध्ययन

आज हम अध्ययन शब्दको समझनेकी कोशिश करेंगे। अध्ययन-प्रचलित अर्थ तो केवल पाठशालामें प्राप्त ज्ञान अथवा किसी पुस्तकसे प्राप्त सूचनाएं हैं, किन्तु प्रत्येक शब्दके कितने ही अर्थ हो सकते हैं। इसी तरह अध्ययन हमारे लिये एक मंत्र बनकर जीवनमें प्रदर्शक हो सकता है।

अध्ययन जीवनके प्रथम श्वाससे लेकर अन्तिम श्वासतक चल सकता है। वह व्यापक बनकर जीवनमें पग-पगपर सिखा सकता है। मनुष्य धरतीपर इसीलिये आया है कि वह प्रगति करे, क्षण-क्षण कुछ नया सीखे। और हर नये पाठको जीवनमें उतारे ताकि उसका जीवन अधिक समृद्ध बन जाय। वही जीवन सार्थक है। वे वर्ष ही सार्थक हैं जिनमें हम प्रगति करते हैं। कुछ नया सीखनेके अवसर प्रत्येकके जीवनमें बिखरे पड़े हैं, केवल सीखनेकी योग्यता होनी चाहिये। चलिये, हम इसी क्षणसे अध्ययनके लिये जग जगाएं और जीवनको रसमय बनाएं।

आप कहेंगे समय नहीं है। ऐसे कामके लिये अलग समय निकालनेकी आवश्यकता नहीं। सजग मनुष्य क्षण-क्षण सीखता रहता है। अपने-आपको जांचता रहता है। ऐसा करके देखिये फिर पता चलेगा जीवन कितना रसमय, रुचिकर और जीने योग्य लगता है। वंश भाग जाती है, दुःख कष्ट भी शिक्षक बनकर सिखाने आते हैं, उनके कारण परेशानी नहीं होती। चलिये आजसे नया प्रयोग शुरू देखिये।

—अनुबेन

प्रार्थना

O Seigneur, avec quelle ardeur mon aspiration monte vers Toi : donne-nous la pleine conscience de Ta loi, la perception constante de Ta volonté, afin que notre décision soit Ta décision et que notre vie soit uniquement consacrée à Ton service, et soit l'expression aussi parfaite que possible de Ton inspiration.

O Seigneur, dissipe toute obscurité, tout aveuglement, et que chacun puisse jouir de la calme certitude que procure Ta divine illumination!

ओ सईयर, आवैक कैल आरद...र मों नास्पिरासियों मोत वैर ताँआ : दोन-नू ला प्लैन कोसिआंस द ता लॉआ, ला पैरसैप्सियों कोस्तांत द ता वोलोते, आफें क नोत्र देसिजियों साँआ ता देसिजियों ए क नोत्र वी साँआ यूनीकमां कोसाक्रे आ तों सैरविस, ए साँआ लैक्सप्रेसियों ओसी पारफैत क पोसीबल द तों नेस्पिरासियों

ओ सईयर, दिसीप तु तौस्कूरिते, तु ताव...रलमां ए क शाक...अ पुइस जुईर द ला काल्म सैरतित्यूद क प्रोक्यूर ता दिवीन इल्यूमिनासियों।

हे प्रभु ! किस तीव्रताके साथ मेरी यह अभीप्सा तेरी ओर उठ रही है। तू अपने विधानका हमें पूरा ज्ञान दे, तेरी इच्छाका हमें अनवरत भान रहे, — ताकि तेरे निश्चय हमारे निश्चय हों, जीवन केवल तेरी सेवामें अर्पित हो और तेरी प्रेरणाको यथासंभव पूर्ण रूपसे प्रकट करे।

हे स्वामी ! दूर कर सब अंधकार, सब अंधता, और ऐसी कृपा कर कि हर कोई उस स्थिर निश्चयात्मक ज्ञानका आनन्द लाभ करे जो तेरे दैवी प्रकाशसे मिलता है।

— श्रीमां नकनीकी

अध्ययन

प्रिय बालक,

सच्ची बुद्धिमत्ता है किसी भी स्रोतसे आनेवाले ज्ञानको सीखने-
लिये तैयार रहना।

हम फूलसे, पशुसे, एक वच्चेसे चीजें सीख सकते हैं वशर्ते कि हमेशा अधिक जाननेके लिये उत्सुक हों क्योंकि संसारमें केवल ही 'शिक्षक' है — परम प्रभु, और वे हर चीजमेंसे अभिव्यक्त हैं।

मेरे समस्त प्रेमके साथ।

(१-३-१९६७)

*

अच्छा काम करनेके लिये अच्छी रुचि होनी चाहिये।

रुचि अध्ययन और सुरुचिपूर्ण लोगोंकी सहायतासे शिक्षित की
सकती है।

सीखनेके लिये, पहले तुम्हें यह अनुभव होना चाहिये कि तुम
जानते।

(१५-१२-१९६५)

*

तब तुम्हें लगे कि तुम कुछ नहीं जानते तब तुम सीखनेके लिये
रहोते हो।

(दिसंबर, १९६५)

*

तकनीकी पाठ्यक्रमके उद्घाटनके समय दिया गया संदेश।

सारा प्रश्न यह है कि क्या विद्यार्थी अपना ज्ञान बढ़ाने और अच्छी तरह रहनेके लिये, जो जानना जरूरी है उसे सीखनेके लिये विद्यालय जाते हैं— या वे दिखावा करनेके लिये और अच्छे अंक लेनेके लिये विद्यालय जाते हैं ताकि वे इस बारेमें घमंड छांट सकें।

‘शाश्वत चेतना’ के आगे, सचाई और निष्कपटताकी एक बूंदका मूल्य दिखावे और आडंबरके समुद्रसे बढ़कर है।

*

हे मां, मैं आपकी इच्छाके अनुसार चलना चाहता हूं, और कुछ नहीं चाहता।

तो जल्दीसे वह रास्ता छोड़ दो जो तुमने अपना रखा है— अपना समय मटरगश्ती और लड़कियोंके साथ बातचीतमें न गंवाओ, फिरसे गंभीरताके साथ काम करना शुरू करो, पढ़ो, अपने-आपको शिक्षित बनाओ, अपने मनको रुचिकर और उपयोगी चीजोंमें लगाओ, व्यर्थकी बकवासमें नहीं और अपने प्राणिक आकर्षणोंके लिये झूठे बहाने न बनाओ। अगर सचमुच यह तुम्हारी सच्ची (निष्कपट) इच्छा है तो विश्वास रखो कि मेरी शक्ति विजय पाने में तुम्हें सहायता देगी।

(२७-९-१९३४)

जिन दिनों मैं पढ़ाई नहीं करता, मुझे बुरा लगता है। लेकिन जब मैं पढ़ना शुरू कर देता हूं तो प्रसन्नता वापिस आ जाती है। मैं यह प्रक्रिया नहीं समझ पाता।

प्रक्रियासे तुम्हारा क्या मतलब है? यह कोई प्रक्रिया नहीं है बुरा लगनेका अंत स्वाभाविक रूपसे मनको पढ़ाईपर एकाग्र करने-

शिक्षा सितंबर १९८१

५

और स्वाभाविक परिणाम है। पढ़ाई एक ओर, मनको एक स्वस्थ
 लिये व्याशीलता देती है और दूसरी ओर उसकी एकाग्रताको छोटे-से
 शैतिक अहंकारके रुग्ण चित्तनसे दूर हटाती है।

(३-१२-१९३४)

मैंने स्वप्नमें देखा कि आपने लिखा है: "मेरे बच्चे, तुमने पढ़ना
 क्यों छोड़ दिया?" आपने और भी बहुत कुछ लिखा था। मैं
 चाहूंगा कि अगर संभव हो तो आप वह यहां लिख दें।

हां, वास्तवमें कल रात मैंने तुमसे पूछा था कि तुम क्यों नहीं
 पढ़ते, और मैंने तुमसे कहा था कि प्राणिक आवेगोंके आगे इस
 तरहसे झुक जाना, निश्चित रूपसे, उन्हें बशमें करनेका तरीका नहीं
 है—। अगर तुम प्राणिक दुर्भावना और मानसिक अवसादको खतम
 करना चाहते हो तो तुम्हें अपने लिये अनुशासन नियत करना
 चाहिये, और चाहे किसी कीमतपर क्यों न हो, उसे अपने ऊपर
 लागू करना चाहिये। अनुशासनके बिना आदमी जीवनमें कुछ
 कर्षणोंके ही कर सकता और समस्त योग उसके बिना असंभव है।

जब मुझे बुरा लगता है तो शारीरिक काम करना तो कठिन
 नहीं होता, पर पढ़ाईमें अनुशासनके अनुसार चलना कठिन हो
 जाता है। फिर भी, मैंने निश्चय किया है कि जब मैं पढ़ाई-
 लिखाई नहीं करूंगा तो खाना नहीं खाऊंगा।

लेकिन कैसा अजीब-सा विचार है तुम्हारा! प्राणके अपराधके लिये
 शरीरको दंड देना! यह उचित नहीं है।

(२२-१२-३४)

आज सवेरेसे बहुत अवसाद छाया है और इसलिये पढ़ना-लिखना
 संभव हो गया है।

६

यह नहीं चलेगा ।

तो माताजी, मैं क्या करूँ ?

अपने-आपको पढ़नेके लिये बाधित करो और अवसाद माग जायगा । क्या तुम यह कल्पना कर सकते हो कि कोई छात्र विद्यालयमें जाकर अध्यापकसे कहे : "महाशय, आज मैंने गृहकार्य नहीं किया क्योंकि मैं अवसादग्रस्त था" ?

अध्यापक निश्चय ही उसे कड़ी सजा देगा ।

(१६-१-१९३५)

मेरा ख्याल है कि एक बात आपको बहुत पसंद नहीं है -- कि मैं पढ़ाई-लिखाई लगकर नहीं करता ।

पढ़ाई मनको मजबूत बनाती है और उसकी एकाग्रताको प्राणके आवेगों और कामनाओंसे हटाती है । मन और प्राणपर काबू पानेके तरीकोंमेंसे पढ़ाई-लिखाईपर एकाग्र होना एक बहुत शक्तिशाली तरीका है ; इसीलिये पढ़ना-लिखना इतना जरूरी है ।

(२८-१-१९३५)

मेरा मन शांत नहीं होता, शायद इसलिये कि मैं पढ़ाईमें मेहनत नहीं करता । पढ़ाईमें मुझे बहुत मजा नहीं आता ।

आदमी मजेके लिये नहीं पढ़ता -- वह पढ़ता है सीखने और अपने मस्तिष्कको विकसित करनेके लिये ।

(१-२-१९३५)

मेरे लिये पढ़ना एकदम असंभव है, क्योंकि जड़ता आ जाती है ।

सितंबर १९८१

७

अगर तुम नहीं पढ़ोगे तो जड़ता बढ़ती जायगी।

(४-३-१९३५)

समझमें नहीं आता, समय कैसे काटूं, समझमें तो कुछ आता नहीं।

पढ़ो, समझनेका सबसे अच्छा तरीका यही है।

आप कहती हैं, पढ़ो, लेकिन मुझे पढ़ना अच्छा नहीं लगता।

तुम पढ़ाईमें काफी समय नहीं लगाते, इसलिये तुम्हें मजा नहीं आता। आदमी सावधानीके साथ जो भी करे वह निश्चय ही मजेदार हो जाता है।

(१०-४-१९३५)

तो मैं कौन-सा रास्ता अपनाऊं? प्रयास करनेका ठीक और सच्चा रास्ता कौन-सा है?

वही करो जो मैंने कल बतलाया था — नियमित और सुव्यवस्थित ढंगसे पढ़कर अपने मस्तिष्कसे काम करवाओ; तब उन घंटोंमें जब तुम पढ़ न रहे होगे, तुम्हारा मस्तिष्क काफी काम कर चुकनेके कारण आराम कर सकेगा और तुम्हारे लिये यह संभव होगा कि अपने हृदयकी गहराईमें एकाग्र हो सको और वहां चैत्य प्रेतको पा सको; वहां तुम कृतज्ञता और सच्चे सुख, दोनोंके बारेमें सचेतन हो सकोगे।

(२२-५-१९३५)

सतत अवसादके कारण मेरी पढ़ाई खटाईमें पड़ी है।

८

मैं तुम्हें बता चुकी हूँ कि पढ़ाईके द्वारा ही तुम अवसादपर विजय पा सकते हो।

अग्निशिखा

(२७-७-१९३५)

मैं यह जानना चाहता हूँ कि क्या नियमानुसार छोटे बच्चोंके लिये सारे समय खेलते रहना अच्छा है ?

बच्चोंके लिये काम और पढ़ाईका एक समय होना चाहिये और खेलका भी समय होना चाहिये।

(१६-११-१९३६)

क्या आपका ख्याल है कि मेरा मन विकसित हो रहा है ?

नियमित पढ़ाई उसे विकसित किये बिना न रहेगी।

(७-१२-१९३६)

मैं पढ़ाईकी ओर अधिकाधिक झुक रहा हूँ और साधनाकी ओर कम ध्यान देता हूँ। पता नहीं यह वांछनीय है या नहीं।

यह ठीक है; पढ़ाई साधनाका अंग बन सकती है।

(८-१२-१९३६)

अगर कोई मुझे पढ़ाता है तो क्या यह जरूरी है कि वह मेरे ऊपर एकाग्र होनेके लिये मेरे साथ तादात्म्य स्थापित करे ?

एकाग्रताके बिना कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता।

(१८-५-१९३७)

सितंबर १९८१

९

क्या आपका ख्याल है कि बहुत ज्यादा मानसिक कामकी वजहसे थकान आती है ?

नहीं, वह मानसिक तमस्के कारण आती है।

(२१-१-१९४१)

*

(किसी अध्यापकने लिखा कि मेरे विद्यार्थी मेहनत नहीं करते।)

धीरज बनाये रखो — यह किसी प्रकारका मानसिक तमस् है; एक दिन वह जाग उठेंगे।

*

अपनी किताबें होते हुए भी विद्यार्थी अपने पाठ नहीं सीख सकते।

छोटे बच्चोंके साथ बहुत धीरज होना चाहिये और एक ही बात बार-बार दोहराते जाओ, तरह-तरहसे समझाते जाओ। धीरे-धीरे वह उनके मनमें प्रवेश करेगी।

*

काममें नियमित होनेकी अपेक्षा बुद्धि और समझनेकी क्षमता निश्चित रूपसे ज्यादा महत्वपूर्ण है। स्थिरता वादमें प्राप्त की जा सकती है।

*

माताजी, आलस्यसे कैसे छुटकारा पाया जा सकता है ?

आलस्य दुर्बलता या रसके अभावसे आता है। पहली चीजका

उपचार करनेके लिये — तुम्हें मजबूत होना चाहिये।

दूसरी चीजको ठीक करनेके लिये — कुछ रुचिकर काम करना चाहिये।

*

मधुर मां,

आपने मुझसे कहा है कि दुर्बलताको दूर करनेके लिये मजबूत बनना चाहिये। माताजी, क्या आप मुझे बतायेंगी कि मजबूत कैसे बना जाता है?

पहले तुम्हारे अंदर समग्र संपूर्ण रूपसे उसके लिये चाह होनी चाहिये और फिर जो कुछ जरूरी है वह करना चाहिये

परीक्षा

मुझे लगता है कि परीक्षा यह जाननेका दकियानूसी और व्यर्थ उपाय है कि विद्यार्थी समझदार, इच्छुक और एकाग्र हैं या नहीं।

यदि स्मरण-शक्ति अच्छी हो तो एक मूढ़, यांत्रिक मन भी परीक्षामें अच्छी तरहसे उत्तीर्ण हो सकता है और निश्चय ही भावी मनुष्यके लिये इन गुणोंकी जरूरत नहीं है।

पुरानी आदतोंके प्रति सहिष्णुताके कारण मैं इस बातके लिये राजी हो गयी थी कि जो परीक्षा जारी रखना चाहें वे रख सकते हैं। लेकिन मैं आशा करती हूं कि आगे चलकर यह सुविधा जरूरी न रहेगी।

अगर परीक्षाएं हटा दी जायं, तो यह जाननेके लिये कि क्या विद्यार्थी अच्छा है, अध्यापकको जरा अधिक आंतरिक संपर्क और मनोवैज्ञानिक ज्ञानकी जरूरत होगी। लेकिन हमारे अध्यापकोंसे

सितंबर १९८१

११

यह आशा की जाती है कि वे योग करते हैं, अतः उनके लिये यह कठिन न होना चाहिये।

(२२-७-१९६७)

*

निश्चय ही अध्यापकको यह जाननेके लिये कि विद्यार्थीने कुछ सीखा है, कोई प्रगति की है, विद्यार्थीको परखना होगा। परंतु यह परख व्यक्तिगत और हर विद्यार्थीके अनुकूल होनी चाहिये, सबके लिये एक ही यांत्रिक परख नहीं। वह एक सहज और अप्रत्याशित परख होनी चाहिये जिसमें कपट और दिखावेका स्थान न हो। यह भी स्वाभाविक है कि अध्यापकके लिये यह बहुत ज्यादा कठिन है लेकिन साथ ही बहुत ज्यादा जीवित-जाग्रत् और मजेदार भी।

तुमने अपने विद्यार्थियोंके बारेमें जो टिप्पणियां लिखी हैं उनमें मुझे मजा आया। इससे प्रमाणित होता है उनके साथ तुम्हारा व्यक्तिगत संबंध है — और अच्छी पढ़ाईके लिये यह अनिवार्य है। जो कपटी हैं वे सचमुच सीखना नहीं चाहते, वे केवल अच्छे नक या अध्यापककी शावाशी चाहते हैं — मुझे उनमें रस नहीं है।

(२५-७-१९६७)

अज्ञानके मूलमें

भागवत चेतना अपने आधार और तत्त्वमें एक और अभिन्न है। इसके अन्दर चार सहज गुण होते हैं जो विकसित होकर चारों ओर या व्यक्तित्वोंमें प्रकट होते हैं। वह हैं: प्रकाश, शक्ति, आनन्द और ज्ञान। अपने परम पदमें, मूलमें यह चारों एक ही हैं इनमें भेद नहीं किया जा सकता, वह भगवान्के शुद्ध तत्त्व और

परम ऐक्यके साथ घुले-मिले रहते हैं। अक्षर ब्रह्ममें परिवर्तन और भेदभाव मानों छिपे रहते हैं। उस स्तरपर एक और बहु मिलकर एक बनते हैं, एक ऐसी सत्ता जिसका विभाजन नहीं हो सकता, वह समग्र है। वहां एक बहुमें रमा रहता है, एक बहुकी ही लीला है। बहुका अर्थ होता है एकके अन्दर गतिकी स्वाधीनता। दूसरे शब्दोंमें कहें तो परिवर्तनशीलतामें यह आवश्यक है कि परिवर्तनशील तत्त्वोंको पूरी-पूरी स्वाधीनता प्राप्त हो। वह अपने बारेमें अपने साथियोंके बारेमें और विभिन्न इकाइयोंके चुनावके बारेमें पूरी तरह स्वतंत्र हो। अगर मानव भाषामें कहा जाय तो इस स्वाधीनताका परिणाम बिल्कुल अप्रत्याशित था यानी, उस बिन्दुपर, चेतनाके उस क्षेत्रमें स्पष्ट नहीं था। स्वतंत्र गतिका वेग इतना बढ़ा कि उसने एक खाई पैदा कर दी और स्पष्ट अलग-गाव ले आयी। सबके साथ ऐक्य और तादात्म्यका भाव गायब हो गया। वह अधिकाधिक अलग होती गयी, उसने अपने-आपको अपने ही घेरेमें, अपनी ही शक्तिमें सीमित कर लिया। यहां इस बातका ध्यान रहे कि मनुष्यकी बनायी कहानियां चाहे कुछ क्यों न कहें परंतु आरंभमें यह अलगाव किसी विकृति, विद्रोह, आज्ञा-भंग आदिके कारण नहीं आया। हम यूं कह सकते हैं कि स्वाधीनता और व्यक्तित्व-निर्माणकी गति आगे बढ़ती गयी, बढ़ती गयी, यहां तक कि सुरक्षाकी लक्ष्मणरेखाको पार कर गयी। जैसा कि मैंने कहा, इसके पीछे कोई दुर्भावना या मनमें चोर नहीं था, यहां कोई आदिम पाप न था। यहां सत्ताके अत्यधिक उत्साह और स्वयं अपने ऊपर ही केंद्रित होनेकी भावनाने उसे परम पदसे दूर कर दिया। यह आदिम पाप न होकर भागवत विश्वमें पूर्ण स्वाधीनताकी एक अभिव्यक्ति है।

फिर भी इसका परिणाम विचित्र और क्रांतिकारी है। एक बार जब खेल शुरू हो जाता है तो उसके अपने ही रूप और नियम बनते चलते हैं। स्वाधीनताकी ओर बढ़ाये गये उस निर्णायक प-

ने ही मूल
कार या
और कष्ट
बन गया,
तो आत्मा
लेकिन
उसमें बहु
सृष्टिकी र
पानी, स्वयं
एक प्रकार
पूर्ण मार्ग
वस्तुत्वको
नूतन रूप

यह बात
की आवश्य
गह मनुष्य
इसी समस्य
तो उसे
और पूरी
ने बाहरी
हैं, ए
स्वस्थ
और होना

सितंबर १९८१

१३

ने ही मूल गुणोंको, विलकुल बदल दिया। इस प्रकार प्रकाश अंध-
कार या निश्चेतना बन गया, जीवन मृत्यु बन गया, आनन्द दुःख
और कष्ट बन गया, शक्ति अक्षमतामें बदल गयी और ज्ञान अज्ञान
बन गया, सत्य असत्यमें परिवर्तित हो गया। दूसरे शब्दोंमें कहें
तो आत्मा शुद्ध जड़तत्त्वमें बदल गयी।

लेकिन जो चीज एक अकस्मात् दुर्घटना जैसी मालूम होती थी
उसमें बहुत गहरा अर्थ और भाव भरा है। वास्तवमें भगवान् ने
सृष्टिकी रचना तमाशेके लिये नहीं की है। आत्मा जड़तत्त्व
जानी, स्वयं अपना निषेध बन गयी — यह दिखानेके लिये कि निषेध
एक प्रकारकी स्वीकृति है। यह आत्माके समर्थनका एक अधिक
पूर्ण मार्ग है। आत्माकी एक और ही गतिको प्रकट करनेके लिये
जड़तत्त्वको जन्म दिया गया है। इसमें आत्मा एक ठोस और
वर्तमान रूप लेती है।

हकीम साहब, पहले अपना इलाज करो

यह बात नहीं है कि मानवजाति अपने अन्दर आमूल परिवर्तन-
की आवश्यकताको नहीं जानती या महसूस नहीं करती। सब
मनुष्य इस बातके प्रति सचेतन हैं कि अगर उसके सामने
बड़ी समस्याओं और कठिनाइयोंको संतोषजनक रूपमें हल करना
तो उसे अपने दृष्टिकोण और प्रकृतिकी बारीकीके साथ जांच
और पूरी मरम्मत करनी चाहिये। केवल किसी अवयवके रोग-
को बाहरी लक्षण देखकर शामक दवाइयोंके द्वारा ठीक करना काफी
नहीं है, एक बड़ी चौरफाड़ करनी चाहिये। निश्चय ही अगर
ह स्वस्थ होना चाहे तो उसे अपनी वर्तमान प्रकृतिसे भिन्न कुछ
और होना होगा।

फिर भी वह बदलता नहीं। उसमें बदलनेका सच्चा संकल्प नहीं है। कम-से-कम वह गलत तरीका अपनाता है। इसका कारण यही है कि वह उस तरीकेको पूरे मनसे नहीं अपनाता जिसके बारेमें वह जानता है कि यही सच्चा तरीका है। वह अपनी सत्तामें बंटा हुआ है : एक अंशको निश्चय ही मालूम है लेकिन दूसरा, बड़ा, गतिशील भाग इस ज्ञानका लाभ नहीं उठाता, वह उसकी अवहेलना करके उल्टे प्रथका अनुसरण करता है और अज्ञान और 'जो होता है होने दो, की पुरानी लीकपर चलता रहता है।

वह अपने-आपको सान्त्वना देता है और कुछ कम कठोर आदर्श लेकर अपनी आत्माकी मरहम-पट्टी करता है, मानों बिना कष्टका विकल्प निकाल लेता है। इसीलिये वह बाहरकी तरफ देखता है, समाजको सुधारनेकी, उसके कानूनों और संगठनको बदलनेकी कोशिश करता है और यह विश्वास करना चाहता है कि इस तरह समाजको सुधारा जा सकता है और मानवजातिका रूपांतर हो सकता है।

अबतक यह बात संदेहसे परे हो जानी चाहिये कि बात ऐसी नहीं है। बाहरी जगत्को रोगमुक्त करनेका एकमात्र तरीका है सबसे पहले अपने-आपको अन्दरसे रोगमुक्त करो। वह पुराना मुहावरा अब भी सत्य है : ब्रह्माण्ड, पिण्डका एक बड़ा रूप है और पिण्ड ब्रह्माण्डका एक छोटा रूप। विश्व एक प्रतिलिपि है, अन्दरके व्यक्तिगत स्वभावका बड़े पैमानेपर प्रक्षेपण। जो वहां है यहां भी है। जो यहां नहीं है, वहां भी नहीं है। जब तुम जगत्में कोई भूल देखते हो, कोई ऐसी चीज जिसे ठीक करना चाहिये, तो दौड़कर उसे बाहरी क्षेत्रमें सुधारनेकी जगह अगर तुम अपने-आपको रोककर अपने अन्दर ताको तो तुम निश्चित रूपसे यह देखोगे और शायद तुम्हें यह देखकर आश्चर्य होगा और यह पता लगेगा कि समाज और प्रकृतिमें जो अनजानी गतिविधियां दिखायी देती हैं उन्हींके जैसी या अक्सर ठीक उन्हींकी प्रतिकृति तुम्हारी अपनी चेतनामें भी उपस्थित है। अब यह मानना पड़ेगा कि अपने

सितंबर १९८१

१५

स्वभावपर व्यक्तिका नियंत्रण नहीं होता या न के बराबर होता है। बाहरी जगत् हमारी पहुंचके बाहर है इसलिये हम उसे अपनी इच्छाके अनुसार नहीं गढ़ सकते। लेकिन वह छोटा-सा जगत्, जो हम स्वयं हैं, हमारे लिये बहुत दूर या बहुत बड़ा नहीं है। हमारा व्यक्तिगत स्वभाव और चरित्र हमारा अपना है। और उसे सुधारने, नया बनाने और पुनः गढ़नेके लिये हमें पर्याप्त शक्ति और स्वतंत्रता दी गयी है। यही रहस्य है, यद्यपि यह एक बड़ा सरल-सा स्वयंसिद्ध सत्य लगता है।

और यदि हम अपने अन्दर बैठे इस छोटे-से जगत्को अपनी इच्छाके अनुसार सुधार या गढ़ नहीं सकते तो हम बाहरके विशाल जगत्को सुधारने या बदलनेकी आशा कैसे कर सकते हैं? अपने-आपको ज्यों-का-त्यों छोड़कर दूसरोंको बदलनेका प्रयास करना ही एक बेतुका और असंगत सुझाव है। इसके विपरीत, अगर व्यक्ति सबसे पहले अपने-आपको सुधारे तो उसे यह देखकर आश्चर्य और संतोष होगा कि जगत्में सुधारनेके लिये बहुत ही कम बच गया है। सब कुछ पहलेसे ही अपने-आप सुधार दिया गया है।

हर एक मनुष्यको उसके अपने अन्दर एक छोटा-सा क्षेत्र दिया जाता है। और वह उस क्षेत्रका स्वामी होता है। किसीको उससे कम या अधिक नहीं दिया जाता, केवल उतना ही जितना वह सफलतापूर्वक संभाल सके। ठीक क्षमताके अनुसार जिम्मेदारी सौंपी जाती है। अगर व्यक्ति चाहे तो आलसी बन सकता है; लेकिन यह मनुष्यकी अनिवार्य नियति नहीं है। वह सचमुच राज्य करनेवाला राजा बन सकता है और पूरी तरह अपना अधिकार जमा सकता है। यह तो एक साधारण-सा सत्य है कि मनुष्यमें एक संकल्पशक्ति होती है और वह उसे काममें ला सकता है। वह इस संकल्पशक्तिको सचेतन रूपसे विकसित और बड़ा कर सकता है, काम करनेके लिये एक अजेय नहीं तो बहुत ही शक्तिशाली यंत्र तो बना ही सकता है। संकल्प दोहरी शक्ति है : वह ऊर्जा है और प्रकाश भी है, जब

कोई व्यक्ति बिल्कुल सच्चा हो और अपनी सचाईके अनुसार चलने-के लिये दृढ़ निश्चय कर ले तो उसका सच्चा संकल्प ठीक दिशा-में बढ़ाता है और अचूक रूपसे प्रेरित करता है। उसमें ठीक चीज करनेकी चेतना होती है और उसे अनिवार्य रूपसे कर सकने-के लिये ऊर्जा भी समायी रहती है।

निम्नतर मनका संकल्प इच्छाका ही दूसरा रूप होता है। उसी-के संबंधमें कहा जाता है कि आत्मा भले तैयार हो, शरीरमें बल नहीं। यह संकल्प एक प्रकाश है लेकिन जीवन देनेवाली अग्नि-से रहित। और यह इसलिये है क्योंकि चेतनामें एक विभाजन है (एक प्रसिद्ध उपन्यासकारके शब्दोंमें: "व्यक्ति प्रेम करते हुए भी विश्वासघात कर सकता है।")

लेकिन जैसा कि हम पहले कह चुके हैं: यह जरूरी नहीं है कि आदमीका मन बंटा रहे, वह स्वभावसे दो-मना नहीं है। अपने आंतरिक वास्तविक रूप और सच्ची चेतनामें वह संपूर्ण और अखंड है। और वह अपनी संपूर्णताको बनाए रख सकता है। उसे बनाए रखनेके लिये वह स्वतंत्र है और उसके पास शक्ति भी है। चूंकि यह केवल संभावना ही नहीं, बल्कि एक ऐसी अनिवार्यता है जिसका क्रमविकासमें आना निश्चित है, इसलिये उसे यह करना होगा और वह करेगा भी।

और जब वह यह कर चुकेगा तो वह अपने-आपको मुक्त कर लेगा और साथ-ही-साथ अपने चारों ओरके जगत्को भी मुक्त कर लेगा। बाहरी सफलता आंतरिक सफलताके अनुपातमें होगी।

स्वाभाविक शरीर

मनुष्य जो भोजन खाता है, उसके संबंधमें दो बातें हैं जो उसका निश्चय करती हैं। सबसे पहली चीज है शरीरकी सच्ची आव-

सितंबर १९८१

१७

शरीरकी आवश्यकता। यानी, शरीरको अपने-आपको बनाये रखनेके लिये भोजनकी जरूरत होती है, इसी तरह शरीरके अन्दर होनेवाले रासायनिक परिवर्तनोंकी दृष्टिसे कुछ चीजोंकी आवश्यकता होती है। यह एकदम भौतिक और ठोस चीज है जो भोजनके प्रकार और मात्राको निश्चित करती है। लेकिन साधारणतः शरीरकी यह सच्ची आवश्यकता किन्हीं दूसरी विजातीय शक्तियोंकी मांगोंसे ढक जाती है। वे हैं: १) प्राणिक कामनाएं, २) मानसिक धारणाएं। वस्तुतः, हमारे भोजनका नब्बे प्रतिशत इस दूसरी श्रेणीकी मांगोंको पूरा करनेके लिये पकाया जाता है। असलमें जिस चीजका ध्यान सबसे ज्यादा रखना चाहिये उसकी ओर अंतमें ध्यान दिया जाता है। इस समय शरीर मन और प्राणका दास है; ठीक मात्रा और प्रकाशमें अपनी आवश्यक चीजोंको चुननेके लिये उसे मुश्किलसे कोई छूट दी जाती है, इसीलिये सब जगह शरीर कष्ट पाता है और अपने भौतिक जीवनमें अधिकांश समय बीमार रहता है। मानव शरीरमें इन दोनों अत्याचारियोंके बीच वह एक असंगत जगह लेनेको बाधित होता है। प्राण अपने लोभ, आकर्षण-विकर्षण और अतिके प्रति आवेगके अनुसार चलता है। वह जिस चीजका आदी है, जिसका उसे शौक है वह उससे चिपका रहता है। और अगर शरीरके पास वह चीज न हो जिसकी वह मांग करता है तो वह शरीरमें यह सुझाव डाल देता है कि वह बीमार पड़नेवाला है। मनके साथ भी यही बात है। शरीरकी आवश्यकताओंके संबंधमें भौतिक मनकी अपनी धारणाएं और योजनाएं होती हैं: उसकी अपनी सनकें और अपने अभिप्राय होते हैं जो गायद किताबोंसे पढ़कर या लोगोंसे सुनकर बनाये जाते हैं। वह मोचता है कि यदि अमुक आदेशका पालन न किया गया तो शरीरको कष्ट होगा। इस तरह शरीरपर शासन करनेमें मन और प्राण बहुत ही घनिष्ठ मित्र और सह-अपराधी हैं। वे शरीरपर अपनी मांगों और पूर्वधारणाओंको लाद देते हैं। और वह बेचारा

उनमें उलझ जाता है और अपना जन्मजात सहजबोध खो बैठता है। अगर शरीरको स्वतंत्र छोड़ दिया जाय तो वह अद्भुत रूपसे अपने बारेमें सचेतन होता है। वह सहज और अचूक रूपसे जानता है कि उसके स्वास्थ्य और शक्तिके लिये कौन-कौनसी चीज हितकर है। सामान्यतः जानवरमें, विशेष रूपसे जंगलके जानवरों में शारीरिक सहजबोध अभीतक सुरक्षित बना हुआ है। कारण, शरीरपर अत्याचार करनेके लिये उनमें न मन है न शरीरकी स्वाभाविक मांगोंके प्रतिकूल जानेके लिये प्राण। अगर शरीर मन और प्राणसे अलग हो तो वह बड़ी आसानीसे ठीक मात्रामें ठीक प्रकारका भोजन चुन सकता है। इतना ही नहीं, वह अपनी बदलती अवस्थाओंके साथ-साथ मात्रा और प्रकारको बदल भी सकता है। सहज बुद्धि शारीरिक चेतनाका एक अन्तर्निहित गुण है। वह कभी अति और असंयम या विकृतिके पक्षमें नहीं भटकती। प्राण नाटकीय है, मन कल्पनाशील लेकिन शरीर मानों साक्षात् समझदारी होता है। लेकिन यह उसकी निश्चेतनता या तमस्का चिह्न नहीं है। उसे कभी-कभी जिस सुस्ती और गूंगी निश्चलताका दोषी ठहराया जाता है वह शायद आखिर मन और प्राणकी प्रबल सनकोसे, जिनकी सहायताके लिये उसे जोतनेकी बहुधा कोशिश की जाती है, अपनी रक्षा करनेका एक तरीका ही है। यह बहुत संभव है कि शरीरके विरुद्ध लगाया जाने वाला दुर्बलताका अभियोग केवल एकमत या सुझाव है जो मन और प्राणके द्वारा उसपर थोपा जाता है। वे अपने दोषसे वच निकलनेके लिये सारा दोष उसपर मढ़ देते हैं। प्राण अधीर और कोलाहलपूर्ण है। अगर शारीरिक तृप्तिकी बहुत तीव्र इच्छा हो तो वह सामान्यतः धुंधला, विक्षुब्ध और अन्धकारपूर्ण होता है। और जब वह मनकी सलाह और सहायता पा लेता है तो दुगुना, टेढ़ा-मेढ़ा, संकरा और कृत्रिम हो जाता है। वह दो पग आगे नहीं देख पाता, अपनी गलत, औरोसे ली हुई धारणाओंके ढांचेमें बंधा रहता है।

सितंबर १९८१

१९

शरीरको जब मन और प्राण पीड़ित न कर रहे हों तो उसका स्वभाव नकारात्मक होता है जिसे जड़ तमस् कहते हैं। उसका कोई अपना स्वार्थ नहीं होता, उसमें सनक और आवेग नहीं होते, योजनाएं और परियोजनाएं नहीं होतीं जिनपर वह गर्व कर सके और बच्चे जैसी निर्दोषताके कारण उसमें अद्भुत लचीलापन और शांत स्थिरता होती है। वास्तवमें, जो-जो दिव्य गुण शरीरमें छिपे हुए हैं, जिन्हें शरीर बनाए रखना और अभिव्यक्त करना चाहता है, वे हैं सुस्मित सामंजस्य और संतुलन जो चेतनाके उच्चतम शिखरोंसे लेकर गहरी-से-गहरी खाइयोंतक सब स्तरोंके भारको सहारा दे सकते हैं, जैसे शरीर भौतिक रूपमें सारे वातावरणके भारको जरा भी भार अनुभव किये बिना सह सकता है।

कालका मानदण्ड

जब यह कहा जाता है कि सिद्धिके लिये आदेश हो चुका है तो क्या इसका मतलब यह भी है कि समय भी निश्चित हो गया है? अगर ऐसी बात है, तो हर प्रकारके व्यक्तिगत प्रयास और क्रियाकी स्वतंत्रता निरर्थक जायेंगे और असंगत लगेंगे क्योंकि उनके कारण सिद्धिकी प्रक्रिया न तेज होगी न धीमी। लेकिन बात कुछ और ही है, इतनी सरल और पैनी नहीं।

यह एक साधारण धारणा है, और इस धारणामें सत्य बहुत कम है, कि हर चीज पहलेसे ही निर्धारित है, कि वैश्व योजना पहले कालसे ही निश्चित है और उसमें कोई हेर-फेर नहीं हो सकता और व्यवस्थित की गयी कोई चीज उसे बदल नहीं सकती, कि सब कुछ योजनाके अनुसार ही होता रहता है। यह केवल एक मानवी धारणा है। यह मनकी रचना है, एक ऐसे तथ्यका बुद्धिमें गलत अनुवाद जो कहीं और किसी और प्रकारसे विद्यमान है।

जहां विभाजन नहीं है वहां मन विभाजन करता है, जहां संगति और पूर्ण सामंजस्य है वहां चीजोंको परस्पर-विरोधी बना देता है। और नियतिवाद और अनियतिवाद, स्वतंत्र-संकल्प और यंत्रवाद मनके रचे हुए विरोध हैं। वास्तविकतामें उनका कोई अपना अस्तित्व नहीं होता। अमुक दृष्टिकोणसे, चेतनाके अमुक स्तरसे ऐसा प्रतीत होता है कि चीजें यांत्रिक नियतिवादके कठोर ढांचेमें चल रही हैं। दूसरे दृष्टिकोणसे, दूसरे स्तरपर ऐसा प्रतीत होता है कि चीजें पूर्ण रूपसे स्वतंत्र हैं। चीजोंके उच्चतर स्तरसे देखा जाय तो स्वयं काल ही भ्रम प्रतीत होता है। वास्तविक हैं केवल वे परिस्थितियां जिनमें शक्तियां काम करती हैं, और परिस्थितियोंकी इस रचनामें काल (और देश भी) संबंधका सुनिश्चित और निरपेक्ष संकेत नहीं देता, जैसा कि सामान्यतः माना जाता है। वह चाहे बिल्कुल गौण और प्रासंगिक चीज न भी हो तो भी अपने-आपमें एक बदलती पृष्ठभूमि है। जगत्में क्रियाशील सचेतन शक्ति, परिस्थितियोंके परिवर्तनको ही अपना लक्ष्य बनाती है। मुख्य रूपसे वह पुनर्गठन और सुव्यवस्थाका काम होता है। प्रकृतिकी, यथार्थताकी अज्ञानपूर्ण और तामसिक अवस्था, अव्यवस्थाकी है। पृष्ठभूमिमें खड़ा भागवत संकल्प, वहां उपस्थित चैतन्य इस अव्यवस्थामेंसे एक सृष्टि रचता है। चीजें इधर-उधर, गलत तरीकेसे, बिखरी हुई हैं। उन्हें चुनना होता है, सुव्यवस्थित और संगठित करके, हर एक वस्तुको अपनी-अपनी जगहपर रखना होता है। उदाहरणके लिये, हमें मालूम है कि जड़ पदार्थके कणों में जो कोषाणु हैं वे कटकर, इकट्ठे होकर रहते हैं। हर कोषाणु एक अलग ही दिशामें मुंह किए रहता है। लेकिन जब उन्हें इस प्रकार सुव्यवस्थित किया जाता है कि आधे एक दिशामें हों और बाकीके विपरीत दिशामें तो ऐसी चीज रूप लेती है जिसे चुंबित वस्तु कहते हैं।

जब चीजोंको इस प्रकार, सुव्यवस्थित करके रखा जाता है, जब

सितंबर १९८१

२१

ठीक चीज ठीक जगहपर होती है। तब दिव्य पूर्णता यानी, जड़ भौतिकमें सिद्धि, चरितार्थ होती है। हमारे साधारण जीवन और क्षेत्रनामें, अव्यवस्थाके इस क्षेत्रमें, यह पूर्णता सिद्ध करनेके लिये जो पद्धति अपनायी जाती है उसमें अधिकाधिक ऊंची शक्तियां हमारे साधारण जीवनमें, इस अव्यवस्थाके क्षेत्रमें प्रवेश करती जाती हैं। इसमें जो समय लगता है वह केवल यही दिखाता है कि पद्धतिके अनुसार काम चल रहा है; यह कार्यपद्धतिकी लयकी अभिव्यक्ति है। लेकिन भगवान्‌के लिये, उस परम चेतनाके लिये जो कार्य कर रही है, कालका कोई अलग अर्थ या आंतरिक मूल्य नहीं होता। उसके लिये हजारों या करोड़ों वर्ष वैसे ही हैं जैसे हमारे लिये क्षण भर; उससे बढ़कर कुछ नहीं। वास्तवमें, कालकी मन्दगति सृष्टिकी निम्नतर श्रेणियोंमें घटनाओंका सोपान दिखाती है। जैसे-जैसे हम ऊपर उठते हैं, वैसे-वैसे वहांकी शक्तियां निम्नतर क्षेत्रमें उतरती हैं और घटनाओंकी गति बढ़ती है। आखिर जब उच्चतम शिखर प्राप्त हो जाता है और उसकी शक्तियां उतरकर निम्नतम स्तरोंके संघटनमें हस्तक्षेप करती हैं, तब, जो परिवर्तन लाया जा रहा है और जो व्यवस्था की जा रही है वह तुरंत और बिना विलंबके सिद्ध हो जाती है। तब 'विलंब' नामकी चीज एकदम हट जाती है। कालकी तुलना एक लचीले बंधनसे की जा सकती है जो सभी मध्यवर्ती क्षेत्रोंसे गुजरते हुए उच्चतमको निम्नतमसे जोड़ता है। जैसे-जैसे हम ऊपरकी ओर उठते हैं वैसे-वैसे वह सिकुड़ता जाता है और जब शिखरतक पहुंचता है तो मानों टेलीस्कोपकी तरह धंसकर बहुत पतला रह जाता है।

अशुभकी भूमिका

जगत्में अशुभके आगमन या उपस्थितिके कारण, मानव जीवनमें कुछ ऐसे तत्त्वोंने प्रवेश पाया है जिन्होंने अशुभको बहुत ज्यादा समृद्ध बना दिया है, यहांतक कि उसके मूल्यको भी बढ़ा दिया है।

अगर यह अन्धकारमय छाया न होती तो अमुक अनुभूतियां, आंतरिक और रहस्योद्घाटन करनेवाली अनुभूतियां भी न हो पातीं। इसमें कोई शंका नहीं कि मनुष्य अगर चाहे तो वृद्धि और विकासके एक ऐसे मार्गकी कल्पना कर सकता है जिसमें केवल प्रकाश ही प्रकाश और आनन्द ही आनन्द हो, जहां सब कुछ हितकर हो और हितके लिये ही हो। लेकिन तब अनुभूति और सिद्धिका एक पूरा क्षेत्र अछूता रह जाता। कुछ अनुभूतियां ऐसी होती हैं जिनसे व्यक्ति कभी वंचित न रहना चाहता, भले उनकी भारी कीमत क्यों न चुकानी पड़े।

अशुभ अशुभ है। इसमें कोई शंका नहीं। वह न दिव्य है और न भ्रांति है। वह सृष्टिके मनोहर आननपर एक कलंक है। उसका अस्तित्व इस अर्थमें उचित सिद्ध नहीं किया जा सकता, कि चूंकि वह वैश्व सामंजस्यका एक अंश है इसलिये वह ठीक चीज है, उसका स्वागत करना चाहिये, उसे बनाए रखना चाहिये। इस अर्थमें भी नहीं कि वह भगवान्द्वारा धार्मिक लोगोंके लिये रखी गयी एक परीक्षा और कसौटी है ताकि वे अपनी योग्यता प्रमाणित कर सकें। वह किसी निश्चित उद्देश्यके लिये नहीं रखा गया है। लेकिन चूंकि वह एक बार आ गया है इसलिये वह एक चमत्कारका सुअवसर बना है। वह किसी अनोखी, महान्, देदीप्यमान, अद्भुत और सुन्दर चीजकी अभिव्यक्तिके लिये एक सुअवसर था। अशुभकी उपस्थितिने भगवान्के मर्मको छू लिया और भागवत कृपाका जन्म हुआ। अलग-थलग रहनेवाले परात्पर भगवान्, अपनी पूरी करुणा,

सितंबर १९८१

२३

अपने पूरे प्रेमके साथ इस आंसुओंकी घाटीमें उतर आये : उच्चतम और निम्नतमके बीच अनगिनत सोपानोंमें कहीं भी रुके बिना, वे सीधे नीचे उतर आए; अज्ञानमें डूबी आत्मासे, अशुभकी जकड़में किसी घरती मातासे, किसी भी शर्तके बिना ही, वे उच्चतम ऊंचाई-से निम्नतम गहराईमें उतर आए। इस प्रकार मृत्युके गृहमें जीवने अपना आसन जमाया; अन्धकार और निश्चेतनाकी गहन गुफाओंमें प्रकाशने प्रवेश पाया, कण्ट और पीड़ाके हृदयमें आनन्द खिल उठा। आशा की लौ लगा दी गयी, एक ऐसी लौ जो घने अन्धकारसे उषाकी ओर उठती है। अगर यह नकारात्मक तत्त्व न होता तो हम दयामयी जगन्माताका यह अन्तरंग और गहरा रूप न देख पाते।

यही वह दिव्य चमत्कार है जो मनुष्यको कृपापूर्वक प्रदान किया गया है। यही वह दृश्य है जिसमें स्वयं भगवान् पार्थिव जन्तुका रूप धारण करके मिथ्यात्व और अक्षमताको, अन्धकार, अज्ञान और कण्टके इस मानव ढाँचेको अपना हाड़-मांसका शरीर बनाते हैं। यही वह क्रूस है जिसे उन्होंने स्वीकारा है, अपने देवत्वकी वह बलि है जो उन्होंने इसलिये दी है ताकि अदिव्य भी खुशीसे भगवान्की सेवा कर सके ताकि भगवान् उसे अपनाकर फिरसे उस सद्वस्तुमें बदल दें जिससे वह गिरा था, जिसका वह भ्रष्ट रूप है।

इस कार्यकी महिमा और सौन्दर्यको देखने, अनुभव करने, उसके साक्षी बनने और उसमें भाग लेनेसे कोई भी वंचित न रहना चाहेगा।

सच्ची उदारता

उदारता या दानशीलताका सामान्य अर्थ लिया जाता है अपने साथी मनुष्योंकी भौतिक रूपसे मदद करना, गरीबोंको भीख, रोगियोंको दवा, -जिन्हें आवश्यकता है उन्हें धन या चीजें देना और जहां

जरूरत हो वहां शारीरिक सेवा भी करना। यह सब बहुत अच्छा है। जगत् बीमारियों, अभावों और विपदाओंके बोझके नीचे दबा जा रहा है। और अगर उन्हें हटानेके लिये कुछ किया जा रहा है तो यह ठीक है और होना चाहिये। उस दिशामें किये गये सभी प्रयासोंको पूरा प्रोत्साहन मिलना चाहिये। लेकिन यह काफी दूर नहीं जाता, समस्याके मूलको नहीं छूता। यह तो चीजोंके साथ बरताव करनेका मानवी ढंग है। इसलिये स्वभावतः अपने कार्य-क्षेत्र और क्षमतामें बहुत ही सीमित है। भौतिक बीमारियोंके इलाजका केवल उपशमन ही नहीं, एक और उच्चतर और दिव्य तरीका भी है — वह है आत्माका तरीका। मसीहा और बुद्धके संदेशके पीछे यही रहस्यमय प्रेरणा थी।

यह सत्य नहीं है कि जब व्यक्तिकी मांगें पूरी हो जायं तो वह हमेशा सुखी हो जाता या सुखी रहता है। सभी गरीब दुःखी नहीं हैं और न ही सब अमीर बिना अपवादके सुखी हैं। सुख एक ऐसा गुण है जो किसी और चीजपर निर्भर है और कहीं और से आता है। वह सीधा भौतिक धन-संपत्तिके अनुपातमें नहीं होता। दुःख भी एक मनोवैज्ञानिक अस्तित्व है जो आंतरिक व्यक्तित्वके मूलमें, स्वयं चेतनामें एक विकृतिके कारण मन और प्राणके — और फलस्वरूप शरीरके भी — एक विशेष स्पंदनमें रचा गया है। भौतिक परिस्थितियां केवल उसे अभिव्यक्त करने, बनाए रखने या बढ़ानेके काम आती हैं, वे उसे बनाती नहीं हैं। सच्ची बात तो यह है कि वे खुद उससे बनती हैं। इसीलिये आध्यात्मिक चिकित्सक शारीरिक रोगोंके लिये, यहांतक कि बीमारियों, दुःख और मृत्युके लिये भी आत्माके आनन्दको एकमात्र औषध समझते हैं। और इन दुःखी मनुष्योंको संकट कालमें हमेशा, केवल भगवान्की ओर मुड़नेके लिये ही कहा जाता है — भजस्व माम्।

सच्ची उदारता है उस घावपर उपशामक मलहम लगाना जो सभी बाहरी वेदनाओं और दुःखोंके पीछे छिपा है। वही उनका

सितंबर १९८१

२५

तोत है और वही उनका पोषण करता है। और यह काम केवल
 उसीके लिये संभव है जिसे आत्माका आनन्द प्राप्त हो गया हो
 और जो सदा उसीमें रहता हो। ऐसे व्यक्तिको चिकित्सा और
 सात्वनाके लिये बाहरी साधनोंकी जरूरत नहीं होती। ऊपरी
 तौरसे उसे कुछ करनेकी जरूरत नहीं। वह उदासीन और अलग-
 धलग प्रतीत हो सकता है, लेकिन उसकी उपस्थिति ही अपने-आप-
 में एक चिकित्सक शक्ति है: रोगी उसे अनुभव करता है और
 आश्चर्यचकित होकर सोचता है कि यह सुख-चैन कहाँसे आ रहे
 हैं? बहुत-से चिकित्सकोंके पास इस प्रकारकी रोग हरनेवाली शक्ति
 होती है। वास्तवमें, इस शक्तिके बिना केवल निधंतु लिये
 चिकित्सक चिकित्सक ही नहीं होता। यह भले जानी-मानी बात
 न हो लेकिन यह तथ्य जरूर है कि औषधोंका अधिकांश प्रभाव
 उस सूक्ष्म प्रभावमें, उस प्राणिक स्वास्थ्यमें होता है जिसे चिकित्सक
 औषधद्वारा या सीधा ही अपने मरीजके शरीरमें डालता है। और
 जहां आध्यात्मिक भिषकका सवाल हो वहां तो इस शक्तिकी कोई
 सीमा ही नहीं। यहां तक कि यह भी जरूरी नहीं कि चिकित्सक
 भौतिक रूपसे मरीजके पास आये। उसका प्रभाव किसी भी दूरी-
 से काम कर सकता है। और ऐसा होना काफी स्वाभाविक और
 अनिवार्य है, क्योंकि रोग हरनेवाली शक्ति आध्यात्मिक चेतनामें,
 आत्माके ऐसे आनन्दमें जिसे अलग नहीं किया जा सकता, विद्य-
 मान रहती है। व्यक्ति अपनेमें, अपनी सच्ची सत्ता और सच्चे
 सारमें, हर एक वस्तुके साथ तादात्म्य पा लेता है चाहे वह व्यक्ति
 हो या वस्तु। और उसका प्रकाश और आनंद एक निःस्वार्थ धारा-
 में बहकर दूसरोंके पास जाता है जो सचमुच दूसरे न होकर एक
 ही सत्ताके समग्र अंग और अंश हैं। यह अवस्था तभी पूर्ण
 और सर्वश्रेष्ठ रूपसे प्राप्त होती है जब अहंकारका नितांत अभाव
 हो, जब किसी अलग व्यक्तिकी सहायक और सहाय्यकी, सुधारक
 और सुधार्यकी, चिकित्सक और मरीजकी द्विविध चेतना न हो।

सामान्य मानवके मूल्यांकन इसी प्रकारके विभाजन, अहंपर — ममत्वपर — आधारित होते हैं। परोपकारी मनुष्य सहानुभूतिके भावसे दूसरोंकी सहायता करता है। लेकिन फिर, इससे कर्तव्य और अहसानका भाव उत्पन्न होता है। सहानुभूतिकी, दयाकी यह भावना खतरनाक होती है, क्योंकि वह तुम्हें एक ऐसी मनोदशामें डाल देती है जिसके कारण तुम अपने दयापात्रको नीची दृष्टिसे देखने लगते हो। तुम अपनी निम्नतर सत्ताके द्वारा इस बातके प्रति सचेतन हो जाते हो कि तुम दूसरोंकी मदद कर रहे हो, जगत्की भलाई कर रहे हो, एक ऐसा काम कर रहे हो जिससे तुम्हारा मूल्य बढ़ गया है। इस आत्म-प्रशंसाका यह भाव मिथ्याभिमानका ही दूसरा नाम है। सहानुभूतिसे जो परोपकारी भावना उत्पन्न होती है उसके पीछे प्रेरक शक्तियां हैं मिथ्याभिमान और महत्त्वाकांक्षा। साधारणतः हम 'सहानुभूति' का जो अर्थ समझते हैं उससे कुछ अलग अर्थ देनेके लिये आधुनिक मनोवैज्ञानिकोंने एक दूसरा शब्द ढूँढ़ निकाला है 'परानुभूति'। कहा जा सकता है कि सहानुभूति-का मतलब है दो अहमोंका संबंध या संपर्क। दो अलग-अलग और स्वतंत्र अस्तित्वोंके बीच यह एक कड़ी या सेतु है, दूसरी ओर 'परानुभूति' का अर्थ है दूसरेकी सत्ता और चेतनामें पैठना, वही बन जाना। वह है तादात्म्य और ऐक्य। यह केवल आध्यात्मिक चेतना ही कर सकती है। सहानुभूति हमें परोपकारकी ओर ले जाती है, परानुभूति है सच्चे दानका स्रोत — बुद्ध या मसीहाकी आध्यात्मिक करुणा। परोपकार मानव है लेकिन दान दिव्य।

धार्मिक अनुभूतिकी विविधता

ऐसे भी धर्म, भगवान्की ओर ले जानेवाले मार्ग रहे हैं, जो मनुष्यके देवत्वमें विश्वास नहीं करते थे। उदाहरणके लिये कैल्डियन

सितंबर १९८१

२७

और सेमेटिक धर्म । इनके अनुसार स्रष्टा और सृष्टि स्वरूप और सत्तामें अलग हैं । किसी भी बनी हुई चीजको स्वयं भगवान् कहना घोर पाप था । पुरातन कालके मिस्री, यहूदी या मुसलमान भगवान्को स्वर्गमें स्थापित करते थे । और उनकी दृष्टिमें मनुष्य उनका सेवक या दास, कार्यकर्ता या सैनिक ही हो सकता है । भगवान्के साथ तादात्म्य पानेके लिये मनुष्य बहुत ही लघु और बहुत ही पार्थिव है । वह केवल एक आराधक ही बन सकता है । ज्यादा-से-ज्यादा मनुष्य भगवान्से अपनी प्रेमिकाके रूपमें प्रेम कर सकता है । लेकिन इस प्रकारकी भक्ति तो बहुत दूरकी चीज है, वैसी ही जैसे तारेके लिये पतंगेकी कामना । और उन दोनोंको बराबर मानना या एक कर देना दो सद्वस्तुओंको उलझा देना है । आराधक और भक्तके रूपमें मनुष्य अमुक दिव्य गुणोंको प्राप्त कर सकता है । लेकिन वे सीमित, थोड़े-बहुत परिवर्तित और हमेशा बड़ी हदतक मानवीय होते हैं । भगवान् कभी मनुष्य नहीं बन सकते । वे अपने प्रतिनिधि, पुजारी या नबीको भेजते हैं जो उनके लिये कार्य करता है और जिनमें तथा जिनके द्वारा वे कार्य करते हैं, लेकिन वे खुद नीचे उतरकर नहीं आते, हाड़-मांसका शरीर धारण नहीं करते । विश्व भगवान्की कलाकृति है और उनके चमत्कार और महिमाका प्रमाण है । लेकिन विश्व अपने-आपमें भगवान् नहीं है । घड़ी और घड़ीसाजके बीच हमेशा एक रिक्तता और असमानता होती है ।

लेकिन क्या हम कह सकते हैं, "हम भगवान्से जन्मे हैं फिर भी, मैं भगवान् नहीं हूँ ?" इसलिये भारतीय बहुत साहसके साथ दावा करता है कि यह सब परमेश्वर है, ईश्वरके सिवाय किसी चीजका अस्तित्व ही नहीं है — सर्वम् खलु इदम् ब्रह्म । मैं वह हूँ, तू भी वह है, या फिर, वह जो मेरे अन्दर है और वह सचेतन सत्ता जो सूर्यमें है एक और अभिन्न हैं । भगवान्ने मनुष्य और जगत्को बनाया है, वे मनुष्यमें और जगत्में विद्यमान हैं, वे ही

मनुष्य हैं और वे ही जगत् हैं। इतना ही नहीं, भगवान् अपनी शक्तिको शून्यतक घटाते हुए न केवल अपने-आपको मिट्टीके ढेले-में बदल देते हैं बल्कि बहुधा अपनी ही सत्ता और चेतनामें, किसी खास कार्यके लिये, खास उद्देश्यके लिये मानव रूप धारण कर इह-लोकमें अवतार लेते हैं। यही अवतारोंके बारेमें भारतीय धारणा है।

ऐसा लगता है कि ईसाई धारणाका स्थान इन दोनोंके बीचका है, वह उन दोनोंको जोड़ती हुई एक प्रकारकी कड़ी है। मसीह न केवल भगवान्के पुत्र हैं बल्कि भागवत मानव भी हैं। वे बहुत स्पष्ट रूपसे निश्चितताके साथ घोषणा करते हैं कि मैं और स्वर्गमें विराजमान पिता एक हैं और कि सभीको स्वयं भगवान्के समान पूर्ण होना चाहिये। फिर भी, एक फर्क बना रहता है। सबसे पहले, जन्मके संबन्धमें : वह भगवान्-मानव साधारण मानवकी तरह पापसे पैदा नहीं हुए थे। एक पवित्र कुमारीने उनको जन्म दिया था। और फिर पिता और पुत्रकी एकता या तादात्म्य पूर्ण नहीं है। मनुष्यसे भगवान्के समान पवित्र और पूर्ण बननेके लिये कहा जाता है। लेकिन वह उस तरहका बन सकता है, वह नहीं। जो आत्माएं पवित्र और पूर्ण हो चुकी हैं वे स्वर्गमें भगवान्के पास बैठती हैं, लेकिन वे अपने-आपको उनमें खो नहीं देतीं। भारतमें वैष्णव धारणा भी कुछ ऐसी ही थी। उसके अनुसार मुक्त आत्मा भगवान्के साथ एक ही जगत्में वास करती है, उसे भी दिव्य गुण प्राप्त होते हैं — लेकिन यह ऐक्य सालोक्य और साधर्म्यका है, सायुज्यका नहीं। यानी, वह भगवान्के गुण प्राप्त कर सकती है, पर भगवान् नहीं बन सकती।

सूफीवादका स्थान भी ईसाई धर्मकी तरह कैलिडियन और वेदान्तिक सिद्धांतोंकी तरह बीचका है। सूफी अनुशासनकी उन प्रधान अनुभूतियोंमेंसे एक है मानव प्रेमी और दिव्य प्रेमिकामें निरपेक्ष तादात्म्य, चेतनाके एक विशिष्ट स्तर या समयपर दोनोंमें पूर्ण सायुज्य। लेकिन वह एक अन्तरतम अवस्था है, यह जीवन और

सितंबर १९८१

२९

क्रियाकलापमें स्वाभाविक या सामान्य नहीं है। जहां आराधक और आराध्यके बीच उस अन्तरको, उस विभाजनको खेलके आनंद-के लिये ही बनाए रखा जाता है। लेकिन भारतमें अवतारवाद द्वैतकी कमीको पूरा कर देता है। वह मूलतः मानव और भगवत्-के अन्तरको मिटा देता है। उसके अनुसार, भगवान् केवल एक बार ही मनुष्य नहीं बनते, जैसा कि ईसाई मानते हैं, बल्कि अवतार लेते रहना उनके निरंतर कार्यमेंसे है। वस्तुतः भारतीय परंपरा कहती है कि भगवान् हमेशा भौतिक क्रमविकासके नेता होते हैं। हर संकटमें, पथ-प्रदर्शनकी आवश्यकताके हर क्षणमें, वे हाड़-मांसका भौतिक प्राणीका रूप धारण करके मार्ग दिखानेके लिये, यह दिखानेके लिये कि कैसे जीना, चलना और कार्य करना चाहिये, आते हैं।

कैलडियन जातिकी साधनाका विशेष योगदान एक और ही दिशामें है। वे आध्यात्मिक सिद्धिके उच्चतर स्तरोंको न लेकर, कहा जा सकता है कि केवल मध्यवर्ती गुह्य जगत्के क्षेत्रोंमें ही लगे रहे। यह भौतिक जगत् उन भौतिक, प्राणिक या मानसिक शक्तियोंसे संचालित नहीं होता जो स्पष्ट और दीखनेवाली हैं, इसे कुछ दूसरी गुप्त और सूक्ष्म शक्तियां ही चलाती हैं। वास्तवमें, यही प्रेरक शक्तियां हैं, सच्चे कार्यकर्ता जो प्रकृतिमें गतिका आरंभ करती और उन्हें चलाती हैं। जब कि प्रत्यक्ष शक्तियां केवल बाहरी आकार हैं, यहांतक कि मुखौटे ही हैं। इस गुह्यज्ञानका अभ्यास पुरातन मिस्रमें बहुत प्रचलित था। यूनानियोंने वहींसे कुछ चीजें लीं। यूनानके आर्फिक और एल्यूसिनियस रहस्यवादियोंने बहुत ही गुप्त और सीमित क्षेत्रमें इस परिपाटीको विकसित किया। यह परंपरा ईसाई धर्ममें भी जारी रही और उसके भीतर एक छोटा दल बन गया जो इस पुरातन विज्ञानका अभ्यास करने और उसे सजीव रखनेका प्रयास करता था। संप्रदायके बाहरी मतों और सिद्धांतोंने उसे नहीं स्वीकारा। वे उसे सह भी न सके, उसे काला जादू या असुरका विज्ञान माना गया। इसका सुस्पष्ट

कारण यह था कि अगर किसी व्यक्तिने गुह्य ज्ञानके इस मार्गका अनुसरण किया या किसीको उससे मिलनेवाली शक्तिका रस मिल गया तो वह उस संकरे और सीधे पथसे भ्रष्ट हो सकता था जो आत्माकी या आध्यात्मिक मुक्तिकी ओर ले जाता है। भारतमें भी, सच्चे आध्यात्मिक लोग हमेशा इन सिद्धियों या गुह्य शक्तियोंसे दूर रहते थे, यद्यपि बहुत-से आध्यात्मिक जीवनको अपनातेवाले इनकी मांग करते थे — और परिणाम प्रायः हमेशा ही भयावह होते हैं। ईसाई धर्ममें भी, प्रधान सन्तोंके अतिरिक्त हमेशा एक ऐसा दल रहा है जो इस गुह्य सिद्धांतका अनुसरण करता था यद्यपि बाहरी रूपमें वे औपचारिक धर्मको ही मानते थे। यह अजीब बात है कि जहां बाइबलके मूल पाठमें भगवान्‌का बहुवचनमें प्रयोग हुआ है, जिसका इशारा देवताओं या गुह्य शक्तियोंकी ओर है वहां प्रामाणिक अनुवादोंमें आवश्यक ईश्वरवादी मूल्य और वातावरण देनेके लिये भगवान्‌को एक वचन कर दिया गया है लेकिन अगर गुह्यज्ञानके दुरुपयोग और उससे हो सकनेवाले संकटोंके कारण उससे दूर रहना चाहिये तब तो आध्यात्मिकताको भी उसी दृष्टिसे देखना होगा। जगत्‌में सभी अच्छी चीजोंकी अपनी विकृति और अपना खतरा होता है। लेकिन यह कोई कारण नहीं कि व्यक्ति उनसे पूर्ण रूपसे कतराए। आवश्यक चीजें हैं सच्ची मनोवृत्ति और विवेक, प्रशिक्षण और साधना। ठीक दृष्टिकोणसे देखा जाय तो गुह्यवाद क्रियाशील आध्यात्मिकता है। दूसरे शब्दोंमें सूक्ष्म भौतिक और प्राण और मनकी सूक्ष्म शक्तियोंद्वारा वह आत्माकी शक्तियों और सिद्धांतोंको भौतिक जीवनमें उतारने, अभिव्यक्त करने और क्रियामें उतारनेकी कोशिश करता है। जो अनुभवातीत आत्माको, स्वर्गमें विराजमान भगवान्‌को अनुभव करने, उनकी आराधना करनेका प्रयास करते हैं वे स्वभावतः गुह्यवादसे दूर रहते हैं, लेकिन जो लोग भगवान्‌को ठोस रूपमें अभिव्यक्त करनेका प्रयत्न करते हैं उनके लिये वह एक अनिवार्य यंत्र है।

१८५
और जै
लड़ेंगे।
सेनापति
एक
उन्होंने
भी नहीं
में भाग
मेजी।
समझाने
इसलिये
क्षितने
जानेका
चरखारी
पास अ
किया
अंधेरी
पर हम
हमले म
परीक्षित
राज पर
एक सम
हमसे ल
तुम्हें मि

महाराज परीक्षित

१८५४ के स्वाधीनता संग्रामके समय चरखारी, टीकमगढ़, दतिया और जैवपुरके महाराजाओंने ठीक किया कि वे भी अंग्रेजोंके विरुद्ध लड़ेंगे। सर्व सम्मतिसे यह तय हुआ कि जैवपुरके महाराज परीक्षित सेनापति बनेंगे। सभीने मिलकर आगेकी योजना बनानेका निश्चय किया।

एक महाराजने महाराज परीक्षितको चिट्ठी भेज दी। उसमें उन्होंने कहा कि अंग्रेजोंकी सेनाके सामने हम थोड़े-से आदमी कुछ भी नहीं कर सकेंगे। इसलिये हमने ठीक किया है कि हम गदर-में भाग नहीं लेंगे। एक और महाराज न स्वयं आये न चिट्ठी भेजी। चरखारीके महाराज आकर स्वयं महाराज परीक्षितको समझाने लगे कि अंग्रेजोंके साथ लड़ना अपना सर्वनाश करना है। इसलिये चलिये हम चुपचाप वापिस चले जायें। महाराज परीक्षितने उत्तर दिया कि अन्य साथी जा सकते हैं मैं स्वयं वापिस जानेका नाम न लूंगा। अब तो भइया! मारेंगे या मर मिटेंगे। चरखारीके महाराज भी वापिस लौट गये। महाराज परीक्षितके पास अब सिर्फ अपनी सेना बच गयी। महाराज परीक्षितने ठीक किया कि वे नये गांवकी छावनी पर धावा बोलेंगे। देर-सवेर अंधेरी रात, किसी भी समय महाराज परीक्षितका लश्कर अंग्रेजों-पर हमला कर बैठता था। अंग्रेजोंने पता लगा लिया कि ये हमले महाराज परीक्षितकी सेना करती है। अंग्रेजोंने महाराज परीक्षितको उनका पूरा राज्य वापिस देनेका प्रलोभन दिया (महाराज परीक्षितके पास कुछ ही इलाका बच रहा था। उनका पूरा राज्य एक समय बहुत-से गांवोंका था) और कहा कि अगर इस समय हमसे लड़ना छोड़ दोगे तो हम वचन देते हैं कि तुम्हारा राज्य तुम्हें मिल जायगा। महाराज परीक्षितने उनकी इस शर्तको अस्वी-

(शेष आवरण ३ पर)

Courage and love are the only indispensable virtues; even if all the others are eclipsed or fall asleep, these two will save the soul alive.

Sri Aurobindo

079497



INDIAN TEA STORAGE AGENCY

24, Ganesh Chandra Avenue, Calcutta-700 013

कार कर दिया और उनकी सेना लड़ती रही। अब सेना सावधान
 हो जाय उसके पहले ही महान् परीक्षितकी सेना इस-बारहको मोत-
 के घाट उतारकर चलती वनती थी। इस तरह धीरे-धीरे अंग्रेज
 कम होने लगे। उन्होंने ठीक किया कि नये गांवसे छावनी उठाने-
 से ही हम बच पायेंगे। महाराज परीक्षितने जब छावनी खान्दी
 देखी तब वे समझ गये कि अब उन्हें बहुत बड़े लश्करके साथ
 मुकाबला करना पड़ेगा। महाराजके अन्य अधिकारी अंग्रेजोंसे
 लड़ना बेकार समझते थे, खासकर उनका कारभारी। महाराज
 अपने लोगोंको लेकर एक किलेमें जाकर रहे। अंग्रेजोंने महाराज-
 की सेनाको फोड़नेकी चेष्टा की। कारभारी उनकी बातोंमें आ
 गया और उसने विश्वास दिलाया कि महाराजकी सेना उनसे नहीं
 लड़ेगी। एक दिन बँड बजाते हुए अंग्रेजी सेना किलेकी ओर
 बढ़ी। महाराज अंग्रेजोंका यह ढंग देखकर विचारमें पड़ गये।
 फौरन महाराजने कारभारीको बुला भेजा। बोले — कारभारी
 जी! यह क्या बात है? हम अंग्रेजोंसे लड़ रहे हैं कि नहीं?
 वे बँड बजाते हुए क्यों आ रहे हैं? कारभारीने पूरी निदोषताका
 दिखावा किया और उसने कहा कि वह गोलंदाजोंको तोप चलानेका
 हुक्म दे देगा। महाराज ऊपर चढ़कर सारा दृश्य देखने लगे।
 कारभारीके साथ मिले हुए गोलंदाजोंने तोप चलायी किन्तु उनमें
 बारूद नहीं भरा। इस कारण तोपकी आवाज बड़ी तेज होनी
 थी किन्तु एक भी गोला छूटकर अंग्रेजी सेनामें जाता नहीं था।
 महाराजकी सेनामें इससे घबराहट फैल गयी। सब कहने लगे
 कि अंग्रेजी सेनामें वीर देवता है जिसकी शक्तिसे अंग्रेजको गोला
 नहीं लगता। ऊपर बैठे महाराज यह तमाशा देखकर बड़े अगम-
 जसमें पड़े। उन्होंने अपने एक सरदार पहलवानसिंहको बुलाया।
 महाराजने उससे पूछा — क्यों पहलवान सिंह, यह ठीक है कि
 हमारे गोलोंको वीर लेकर भाग जाता है? पहलवानसिंहने ऊपर
 दिया कि वे तलाश करके देखेंगे। सीधे नीचे उतरे और दो गोलं-
 दाजोंके पास जाकर खड़े रहे। देखा कि वे तोप चला ही नहीं

रहे थे। पहलवान सिंहने पूछा तो उन्होंने बताया कि तोपका चक्कस (तोप रखनेकी गाड़ी) खराब हो गया है। पहलवान सिंहने कहा—ओ, इतनी ही बात है। चलो मैं ठीक करता हूँ। पहलवान सिंह अपने नामको सार्थक करते थे। बड़ा सशक्त, लंबा, तगड़ा, शरीर था। झट तोपको अपनी पीठपर उठा लिया। गोलंदाजोंको तोप चलानेका हुक्म दिया। गोलंदाज बड़े धवराये किंतु और कोई उपाय नहीं था। उन्होंने तोप चलायी। गोला मजेसे आते हुए जलूसमें गिरा। इस अप्रत्याशित हमलेसे सेना धक्का मारी। यह देखते ही अन्य सैनिक उत्साहमें आकर हथियार चलाते लगे। अंग्रेजी सेनामें भगदड़ मच गयी और सभी खत्म हो गये। जब कारभारीने यह हाल देखा तो वह चुपकेसे भाग निकला। पहलवानसिंहकी हड्डी-पसलीतकका पता न चला। जब तोपें दागी जाती हैं तो वह कई गज पीछे खिसक जाती हैं। अब चूँकि तोपका चक्कस ढीला था और गोलंदाजोंका कहना था कि चक्कसके ढीले होनेके कारण ही तोपें काम नहीं कर रही हैं। इसीलिये पहलवान सिंहने अपनी पीठ चक्कस पर अड़ा दी। गोले तो दगे बेशक किंतु पहलवान सिंहका शरीर झुलस गया और कई गज पीछे चक्कस खिसकनेके कारण उनकी हड्डी पसली चकनाचूर हो गयी। उसके बलिदानने महाराज परीक्षितकी आन रखी। किंतु भारतका दुर्भाग्य है कि जहां ऐसे रत्न पैदा होते हैं वहींपर मगरमच्छ भी होते हैं। तीन महीनोंके बाद अंग्रेजोंने उसी विश्वासघाती कारभारीकी मददसे सफलतापूर्वक हमला किया। महाराज परीक्षितको लोगोंने किलेमेंसे अंग्रेजी सेनाके प्रवेशसे पहले बाहर भेज दिया। काफी समयतक वे अंग्रेजोंको परेशान करते रहे। अन्तमें वे पकड़े गये, बिठूरके जेलमें बन्दी बनाये गये और बादमें उन्हें सामान्य अपराधीकी भांति फांसी पर लटका दिया गया।

(अजितसिंहजैसे सुनी हुई कहानीके आधारपर)

— अनुब्रजन

मका
सिंह
हं ।
वत,
या ।
किंतु
जैसे
वरा
लाने
ये ।
ला ।
हागी
पका
ढीले
हल-
शक
पीछे
यी ।
रत-
वच्छ
कार-
तको
या ।
कड़े
मान्य
मुबेन

Compiled
1999-2000

